पुराणों में वैदिक सन्दर्भ

विपिन कुमार

पुराणों में वैदिक सन्दर्भ विपिन कुमार

वेद और पुराणों के ज्ञाता प्रसिद्ध विद्वान् डॉ. फतेह सिंहसे वार्तालाप के समय श्री विपिन कुमारजी ने पुराणों के अनेक विषयों को उसके मूल-भूत स्त्रोत वेदों से किस प्रकार जोड़ा जा सकता है इस विषय पर उनसे अनेक प्रकार की वैदिक सम्पति को ग्रहण कर उसके मौलिक स्वरूप को वेदों से जोड़ते हुए उन्हें यथातत्थ पुराण-जिज्ञासुओं के सामने रखने का सफल प्रयास किया है। पुराणों में प्राप्त व्यक्तिवाचक, जातिवाचक व देववाचक शब्दों के वैदिक स्त्रोतों की जानकारी देते हुए पौराणिक कथानकों में उसकी सार्थक परिणति का उल्लेख भी यहाँ किया गया है। वेद-पुराण के अध्येताओं एवं शोधकर्ताओं को इससे पर्याप्त सामग्री प्राप्त होगी, इसमें संदेह नही।

पुराणों में वैदिक सन्दर्भ
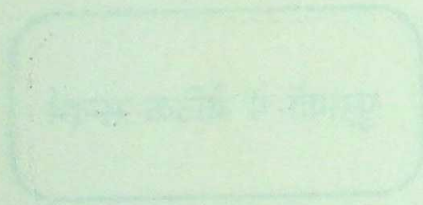
पुराणों में वैदिक सन्दर्भ

(डॉ० फतह सिंह के व्याख्यानों और लेखों के अंश)

संकलनकर्ता

विपिन कुमार

परिमल पब्लिकेशन्स

दिल्ली

डॉ० फतहसिंह का संक्षिप्त परिचय

वेद तथा पुराणों के मर्मज्ञ विद्वान् एवं प्राचीन भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान में योगीस्वरूप डॉ० फतहसिंह का जन्म विक्रम संवत् १९७० में गुरुपूर्णिमा के दिन ग्राम— भदेंग कब्जा, जिला पीलीभीत के अन्तर्गत हुआ। उन्होंने एम. ए. तथा डी. लिट् की उपाधि वाराणसी से प्राप्त की। तदनन्तर आगरा एवं कोटा के महाविद्यालयों में कई वर्ष तक संस्कृत एवं हिन्दी के अध्यापन में जीवन व्यतीत किया। इसके अनन्तर राजस्थान के अनेक शहरों — श्रीगंगानगर, व्यावर तथा कालाडेरा के महाविद्यालयों में प्राचार्यत्व का पदभार संभाला। सेवानिवृत्ति के बाद राजस्थान प्राच्य-विद्याप्रतिष्ठान के निदेशक पद पर कार्य किया। तदनन्तर वेद-संस्थान नई दिल्ली के शोध-निदेशक के रूप में भी कई वर्ष तक कार्यरत रहे।

डॉ० फतहसिंह की वेदो में गहरी रूचि थी। वे अपने लेखो में सामाजिक एवं राष्ट्रीय मुद्दो को लेकर अपनी शोध-जिज्ञासा को प्रस्फुटित करते थे। डॉ० फतहसिंह सिंधु घाटी की लिपियो को समझने का एक यंत्र थे। जिससे उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की। उन्होंने लगभग तैंतीस हस्तलिखित ग्रंथो के संपादन के अतिरिक्त साहित्य संस्कृति, तुलनात्मक भाषा-विज्ञान, धर्म-विज्ञान, समाज-शास्त्र, पुरालिपि शास्त्र तथा दर्शन से संबद्ध अनेक ग्रंथ और शोध-लेखो का प्रणयन किया। उन्होंने अपने ग्रंथों में देश के सिंधु, महासिंधु, दिव्यसिंधु, वर्ष, भारत, इरावर्त, आर्यावर्त, ब्रह्मावर्त और ब्रह्मर्षिदेश जैसे नामो की पृष्ठभूमि में विद्यमान एक अद्भुत जीवन-दर्शन की और संकेत किया जिसने हमें अनेकता और विविधता में एकात्मता तथा एकरसता को प्राप्त करना सिखाया है।

डॉ० फतहसिंह के प्रसिद्ध प्रमुख ग्रंथों में वैदिक दर्शन, सिंधु घाटी लिपि, एटिमोलोजी ऑफ यास्क, मानवता को वेदों की देन, ढाई अक्षर वेद के, दयानन्द और उनका वेद-भाष्य, भावी वेद भाष्य के संदर्भ सूत्र, वैदिक एकेश्वरवाद और ॐकार आदि है।

पुराणों में वैदिक सन्दर्भ

(भाग १)

डॉ० फतह सिंह के व्याख्यानों और लेखों के अंश

संकलनकर्ता

विपिन और माधुरी

भूमिका

इस संग्रह में प्रस्तुत सामग्री का संकलन डॉ० फतहसिंह के वर्तमान दैनिक व्याख्यानों, श्रीमती माधुरी साहू द्वारा पिछले पाँच वर्षों में संकलित किए गए उनके दैनिक व्याख्यानों के नोटों, वेद सविता मासिक पत्रिका में प्रकाशित लेखों, उनकी पुस्तकों और उनके साथ व्यक्तिगत वार्तालाप से प्राप्त वैदिक सम्पत्ति के आधार पर किया गया है। सामग्री संकलन का कष्ट उठाने के पीछे मुख्य उद्देश्य डॉ० फतहसिंह द्वारा अपने दैनिक व्याख्यानों के माध्यम से वितरित किए जा रहे वैदिक धन का अपने परिवार के प्रियजनों में वितरण करना था, जो लगातार उस धन की माँग कर रहे थे और जिसे प्रत्येक के पास व्यक्तिगत रूप से लिखकर भेजना संभव नहीं था। इस वैदिक और पौराणिक धन को शीघ्रातिशीघ्र वितरित करने के लिए सामग्री के प्रमाणीकरण की बलि दे दी गई है और डॉ० फतहसिंह को सामग्री का एक बार पुनरीक्षण करने का भी अवसर नहीं दिया गया है (मिल सका है)। इस सामग्री के माध्यम से वेदों के बारे में लगाए गए आरोप कि वेद एकदम शुष्क हैं, का आंशिक उत्तर दिया जा सकता है। दूसरा तथ्य यह है कि वेद देवपूजा के अंत में आरती की तरह से हैं जिसे भक्त आर्त स्थिति में होकर गाता है। यदि आरती का महत्व समझ लिया जाए तो वेदों की आभासी शुष्कता भी समझ में आ जाएगी।

प्रस्तुत संग्रह की सामग्री को सूक्ष्मतम आकार देने का प्रयास किया गया है। पूरी जानकारी के लिए वेद सविता पत्रिका में प्रकाशित लेख पढ़ने चाहिएँ। इसी प्रकार पुराणों की कथाओं के जो सूत्र छूट गए हैं, उनकी व्याख्या का प्रयास करना चाहिए।

पूरी संकलित सामग्री को समझने के लिए मनुष्य व्यक्तित्व के विभाजनों को हृदयंगम करना आवश्यक है। मनुष्य व्यक्तित्व के सबसे स्थूल स्तर का नाम है अन्नमय कोश। इसके कण-कण में व्याप्त है प्राणमय कोश। प्राणमय कोश के भी कण-कण में व्याप्त है मनोमय कोश। यहाँ तक मानुषी त्रिलोकी है। मनोमय के कण-कण में व्याप्त है विज्ञानमय कोश। विज्ञानमय कोश के भी कण-कण में व्याप्त है हिरण्यय कोश। अंत के तीन कोश मिलकर दैवी त्रिलोकी कहे जाते हैं। यदि आगमों में तुलना करना चाहें तो हिरण्यय कोश में तीन कोश हैं— सत्, चित् और आनन्द।

डॉ० फतहसिंह का कहना है कि पुराणों की कुंजी वेद में है, लेकिन वेद की कुंजी कहाँ है ? वह योग में है।

विपिन कुमार

१४.२.१९८९ ई०

पुराणों में वैदिक सन्दर्भ सूत्र

अगस्त्य (ऋ० १.१६६)- पौराणिक कथा के अनुसार मित्रावरुणौ का उर्वशी के कारण जो वीर्य कुम्भ में गिरा, उससे वसिष्ठ उत्पन्न हुए, जो कुम्भ के बाहर गिरा उससे अगस्त्य और जो जल में गिरा उससे मत्स्य उत्पन्न हुए। अगस्त्य अर्थात् जो चले नहीं (अग अर्थात् अगति) फिर भी उसका विस्तार (स्त्यान) हो जाए। जीवात्मा का सामाजिक पक्ष। इसके विपरीत आंगिरस व्यक्तिगत पक्ष है। पुराण कथा के अनुसार अगस्त्य अपनी पत्नी लोपामुद्रा (देव मन की मनीषा या बुद्धि) का वरण तभी करते हैं जब वह अहंकार रूपी विन्ध्याचल को धराशायी कर चुकते हैं (द्रष्टव्य-विन्ध्याचल)। अगस्त्य और वातापि राक्षस के लिए द्रष्टव्य-वातापि।

अग्नि- (क) वेद में अग्नि की स्तुति में बहुत से सूक्त हैं। अग्नि का तत्त्व समझाने के लिए ब्राह्मण ग्रंथों में कुछ आख्यान रचे हुए हैं। अग्नि पृथिवी पर था। देवताओं ने अग्नि से कहा— तुम स्वर्ग में चलो, हम तुम्हें अपना दूत बनाएंगे। तुम्हें तरह-तरह की आहुतियाँ मिलेंगी। यम से, जो स्वर्ग में था, पितरों ने कहा— तुम पृथिवी पर चलो, हम तुम्हें राजा बनाएंगे। इस आख्यान का निहित अर्थ है कि इस समय जो अग्नि कायाग्नि, जाठराग्नि आदि के रूप में उपस्थित है, जो पृथिवी पर रहने वाली है इसका असली स्थान ऊँ लोक है। साधना का लक्ष्य है इस अग्नि को पृथिवी से उठा कर ब्रह्मलोक में पहुँचा देना। यह तब हो सकता है जब पितर शक्तियों के रूप में उपस्थित हमारे आवेगों जैसे भूख, प्यास, निद्रा आदि (जो हमारा पालन करते हैं) के ऊपर यम का आधिपत्य हो जाए, यह आवेग अनियंत्रित न रहकर हमारे नियंत्रण में आ जाएँ।

(ख) पहली ज्ञानाग्नि का शरीर में रूप आसुरी रूप है, यह गर्भ रूप है। इसका नाम है तनू-नपात— जहाँ शरीर नहीं गिरता। ज्ञानाग्नि का दूसरा रूप प्राणमय कोश में है जिसे नराशंस अग्नि कहते हैं। नर अर्थात् प्राण, शंस अर्थात् कहना, प्रशंसा करना। ज्ञानाग्नि का तीसरा रूप मनोमय कोश में है जिसका नाम है मातरिश्वा। मात, अर्थात् हमारी पश्यन्ती वाक्, श्वा अर्थात् जिसमें गति और वृद्धि दोनों हैं। पश्यन्ती बढ़कर परा तक पहुँचती है। ज्ञानाग्नि का चौथा रूप ज्योति के रूप में है जो वात की सृष्टि के रूप में सरकने वाली हो जाती है, ध्यान में लहरों के रूप में दिखाई देती है। (ऋ० ३.२९.११)

(ग) जब मानुषी त्रिलोकी में उपस्थित देवता (मर्त्यासः) अपना बलिदान दे देते हैं, ध्यान धारणा समाधि के द्वारा तो अमृत अग्नि उत्पन्न होता है। यह अग्नि कंपन रहित है, क्षय रहित है, शिवलिंग की भांति ऊपर बढ़ता चला जाता है। हमारी जो दस इन्द्रियाँ तरह-तरह के भोगों में लिप्त रहने वाली थीं, अब अंगुलियों की तरह कुमारी कन्या हो

जाती हैं, सब मिलकर एक हो जाती हैं, इन्द्रियों का व्यापार समाप्त हो जाता है। (ऋ० ३.२९.१३)

(घ) अग्रं नयति इति अग्नि। जो अग्र भूमि पर देश और काल से भी परे की स्थिति में ले जाए वह अग्नि है। सारा ऋग्वेद अग्नि को इडा के पद में प्रज्वलित कर देने की कथा है।

(ङ) जातवेदस अग्नि वह है जो भीतर पैदा हुए वेद को जानता है। क्रव्याद अग्नि चिन्ता, वासना, क्रोध आदि में प्रकट होने वाली है। साधारण अर्थ में शव को, मांस को खाने वाली अग्नि क्रव्याद अग्नि कहलाती है। अध्यात्म में यम-नियम-संयम से रहित अग्नि क्रव्याद अग्नि है। यह अनियंत्रित अग्नि है, मनुष्य के मांस को खाने वाली है। इससे बचना है। इसके विपरीत द्रष्टव्य-जमदग्नि, गार्हपत्य और आहवनीय अग्नि के लिए द्र० गृह और गार्हपत्य अग्नि।

अग्निमीडे पुरोहितं (ऋ० १.१)— आज्ञाचक्र शिवनेत्र है, ज्ञानाग्नि है। इस पुरोहित अग्नि को उस स्थान पर ईडन करने से हम स्वयं पुरोहित बन जाते हैं। आज्ञाचक्र से लेकर सहस्रार चक्र तक २१ गिरि हैं (गृ०- अभिव्यक्ति)। २१ प्रकार की अभिव्यक्तियाँ हैं, उन सबकी संहिता, केन्द्र बिन्दु आज्ञाचक्र में है।

अहंकार + मन + पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ = ७

अहंकार + मन + पाँच कर्मेन्द्रियां = ७

अहंकार + मन + पाँच प्राण = ७

यह २१ तत्त्व ऐसे हैं जो सर्वत्र घूमते रहते हैं चंचल गति से। यह २१ तत्त्व वास्तव में परमेश्वर की ब्राह्मी शक्ति के २१ रूपांतर हैं। इन सबका बहुत बड़ा बल है। वह बल हमारे व्यक्तित्व का, शरीर का, अंग बन जाए, यही साधना का लक्ष्य है। उस ब्राह्मी शक्ति का नाम वाक् है जिसका पति वाचस्पति है। आत्मा को अभिव्यक्त करने वाली यह वाक् या पुराणों की शक्ति यदि स्थिरता को प्राप्त हो जाए तो तब कहते हैं स्थितप्रज्ञता, आत्मा की आवाज, वेद का श्रुतम्।

अग्निषोमीय पशु (अथर्व० ९.६.६)- हमारे भीतर ही जो ऊर्जा नीचे से ऊपर को जाती है वह है अग्नि। ऊपर से नीचे को आने वाली ऊर्जा सोम कहलाती है। इन दोनों के मिलने से एक ज्योति उत्पन्न होती है जिस पर ध्यान केन्द्रित करने से सारी चितवृत्तियाँ समाहित हो जाती हैं, बंध जाती हैं। यही अग्निषोमीय पशु है।

अङ्गुष्ठ (अथर्व० २०.१३६.१६)- अंग + उष्ठ-सब अंग ऊँ में स्थित हैं। ध्यान में जब ज्योति दिखाई पड़ती है तो वह अङ्गुष्ठ मात्र ही होती है, बाद में यह विराट होकर सारे शरीर में फैल जाती है। अङ्गुष्ठ रूप वामन रूप है।

अजा (अथर्व ९.५)- सत्, रज और तम से युक्त प्रकृति अजा है। जीवात्मा रूपी एक अज इस अजा का भोग करता है। परमात्मा रूपी एक दूसरा अज निष्काम भाव से अजा को देखता रहता है।

अत्रि (ऋ० मण्डल ५)- (क) जब तक हम मनोमय कोश तक सीमित रहते हैं तब तक हमारी चेतना के तीन रूप होते हैं— भावनामय, क्रियामय और ज्ञानमय। मनोमय से ऊपर उठ़ने पर, विज्ञानमय में पहुँचने पर चेतना सिमट कर एकाकार हो जाती है, वही अत्रि है।

(ख) अत्रि का मूल अर्थ अ + त्रि प्रतीत होता है। स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरों में इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया अथवा सोम, इन्द्र तथा अग्नि तीनों तत्त्व व्याकृत (अलग-अलग) अवस्था में रहते हैं। परन्तु विज्ञानमय कोश में यह तीनों एकीभूत होकर अ + त्रि रह जाते हैं। दूसरे शब्दों में, अत्रि में सारी नानात्वमयी सृष्टि समा जाती है। अत: एक कृत्रिम विवेचन द्वारा अत्रि को सबका अत्ता (खाने वाला) भी कहा जाता है और उसकी निष्पत्ति अद् धातु से की जाती है।

अथर्वा (अथर्व० १.१ आदि)- (क) विज्ञानमय कोश में आत्मा का रूप **अथर्वा** कहलाता है। मनोमय से लेकर अन्नमय कोश तक आत्मा का रूप **आथर्वण** कहलाता है। वह आथर्वण अपने सच्चे स्वरूप अथर्वा को भूला हुआ है।

(ख) आत्मा के दो रूप हैं— पिता और पुत्र या गुरु और शिष्य। अहंकार को धारण करने वाला मन पुत्र है और उससे सूक्ष्म अथर्वा। या मनोमय कोश का आत्मा शिष्य है और विज्ञानमय कोश का आत्मा गुरु। या मनोमय का आत्मा वत्स है और विज्ञानमय का संवत्सर। अथर्वा अर्थात् अथ अर्वाक्— अब विज्ञानमय से नीचे के कोशों में अवतरण आरंभ हो गया।

अदिति और दिति (ऋ० ४.१८)- मनुष्य व्यक्तित्व की अखंड इकाई का नाम अदिति, तो खंडित, आसुरी इकाई का नाम दिति है।

अध्वा (ऋ० ३.३०.१२)- आज्ञा चक्र से सहस्रार चक्र तक का मार्ग अध्वा है। यह मार्ग परब्रह्म परमात्मा तक ले जाता है। उस मार्ग पर चलने वाले को अध्वर कहते हैं। यम-नियम से लेकर समाधि तक जो क्रियाएँ की जाती हैं, वे सब अध्वर हैं क्योंकि वे उस ईश्वर तक ले जाती हैं। अध्वर यज्ञ दैवी त्रिलोकी-मनोमय से लेकर आनंदमय कोश़ में चलता है। द्रष्टव्य-यज्ञ। अध्वर उस यज्ञ को भी कह सकते हैं जिसमें हिंसा न हो (अ + ध्वर)। ऐसा दैवी त्रिलोकी के यज्ञ में ही संभव है। निचले स्तर के यज्ञ में काम क्रोध आदि पर विजय प्राप्त करने के लिए हिंसा करनी पड़ती है, अत: वह अध्वर नहीं कहा जा सकता।

अनड्वान् (अथर्व० ४.११)- संसार रूपी, शरीर रूपी गाड़ी को हांकने वाला, परब्रह्म परमात्मा।

अनुष्टुप् छन्द- कारण-सूक्ष्म-स्थूल स्तरों पर अष्टविध स्तूप है जिसको अनुष्टुप् कहा जाता है। गायत्री और अनुष्टुप् दोनों के पद में आठ अक्षर होते हैं। लेकिन अनुष्टुप् स्थूल व्यक्तित्व के बाहर-बाहर चलता है, गायत्री सूक्ष्म शरीर के अन्दर-अन्दर चलती है (दृष्टव्य-गायत्री)। जगती छन्द सारे विश्व को व्यापता है (द्र०-जगती)।

अन्न (ऋ० १.१८७)- प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान यह सब अन्न के ही रूप हैं। ययाति— पुत्र अनु भी अन्न से संबंधित है। यह सब अन्-प्राणने धातु से बने हैं।

अपराजिता पुरी (अथर्व० १०.२.३३)- ब्रह्मा जी का निवास अपराजिता पुरी में है। समाधि अवस्था का दूसरा नाम अपराजिता पुरी है। वहाँ किसी की भी पहुँच नहीं है— न इच्छा की, न द्वेष की। इस कारण से वह अपराजिता पुरी है।

अपाला (ऋ० ८.९१)— अपाला अत्रि की कन्या है जो अत्यंत कुशाग्र बुद्धि है लेकिन चर्म रोग से पीड़ित है। उसका विवाह कृशाश्व से हुआ। कृशाश्व द्वारा परित्यक्त होने पर अपाला ने सोम रस द्वारा इन्द्र को प्रसन्न किया और इन्द्र ने अपाला को रथ के छिद्र से तीन बार निकाला। तीन बार त्वचा उतरी। पहली अपहृत त्वचा शल्यक बनी, दूसरी गोधा और तीसरी कृकल। अत्रि का अर्थ है जहाँ इच्छा, ज्ञान, क्रिया का त्रैत समाप्त हो जाए। अपाला— जो दिव्य आपः का लालन करे, या जो दिव्य आपः द्वारा लालित हो। कृशाश्व— जहाँ घोड़े कृश, दुर्बल पड़ गए हों, अन्नमय, प्राणमय और मनोमय कोशों का प्रतीक है। जब अपाला नीचे की इस त्रिलोकी में आएगी, दिव्य आपः का मानुषी त्रिलोकी में अवतरण होगा तो स्वभावतः वह रोगग्रस्त हो जाएगा। इन्द्र द्वारा अपाला को रथ के छिद्र से तीन बार निकालने का तात्पर्य यह है कि इन्द्र की तीन छलनियाँ हैं— एक अन्नमय से प्राणमय कोश के बीच, एक प्राणमय से मनोमय के बीच और एक मनोमय से विज्ञानमय के बीच। इन तीन छलनियों से छनने पर जीव के रोग दूर हो जाते हैं। (वेद सविता अगस्त ८४)

अप्सरा (अथर्व० ४.३७)- (क) माधुर्य भाव से जुड़ी वे प्रवृत्तियाँ जो उस भाव को अभिव्यक्ति देती हैं, अप्सरा कहलाती हैं। प्राण रूपी आपः के अधीक्षक गंधर्व हैं तो अप्सरा है प्राण रूपी आपः की उठती हुई लहर। आपः की सृष्टि को स्तब्ध करके काम गन्धर्व कहलाता है।

(ख) आध्यात्मिक आनन्द को सोम कहते हैं जो व्यक्तित्व के आनन्दमय कोश में विद्यमान रहता है। इस सोम की एक बूंद की प्राप्ति के लिए सारे मनीषी, भक्त तरसा करते हैं। इस सोम की धाराएँ अप्सरा कहलाती हैं। ये धाराएँ इस सोम से निकलकर सर्वप्रथम विज्ञानमय के शुद्ध आपः में मिलती हैं। यह धाराएँ अथवा अप्सराएँ पाँच सौ

हैं। आनन्दमय में, जहाँ से यह उदित हुई, वहाँ एक सौ, विज्ञानमय में एक सौ, इसी प्रकार मनोमय, प्राणमय और अन्नमय में भी एक-एक सौ। मनोमय, प्राणमय और अन्नमय के स्थान पर प्राण, ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ भी रख सकते हैं। अप्सराओं में उर्वशी प्रमुख है। (द्रष्टव्य-उर्वशी, गंधर्व)

अमावस्या (अथर्व० ७.८४)- अमावस्या विज्ञानमय कोश का प्रतीक है। पूर्णिमा हिरण्यय कोश का।

अयोध्यापुरी (अथर्व० १०.२.३१)- यह शरीर देवों की अयोध्या पुरी है। देवता प्राण हैं। इन्द्रिय द्वार झरोखा नाना। जहं तहं करि बैठे सुर थाना। अष्ट चक्रा नव द्वारा देवानां पूरयोध्या।

अरणि मंथन (ऋ० ३.२९.२)- यज्ञ में अग्नि को प्रकट करने के लिए दो लकड़ी की अरणियों को परस्पर रगड़ कर उनसे अग्नि उत्पन्न की जाती है। यह मनुष्य के अंदर की अग्नि को प्रकट करने का प्रतीक है। मनुष्य स्तर पर तीन प्रकार की अरणियाँ हैं— स्थूल शरीर के स्तर पर श्वास का आना जाना ही दो अरणियाँ हैं। सूक्ष्म शरीर स्तर पर मन का अंदर जाना, बाहर आना ही अरणियाँ हैं। विज्ञानमय कोश के स्तर पर उन्मनी और समनी शक्तियाँ ही अरणियाँ हैं।

अरुण (ऋ० १०.९१, अथर्व० १३.२.३६)- प्रकाश का नाम है रुण अर्थात् कष्टकर। लेकिन ब्रह्म का प्रकाश भीतरी चक्षु से देखने पर अरुण, लाल-लाल दिखाई देता है जो कष्टहारी है। पुराण कथा के अनुसार अरुण सुपर्ण गरुड़ का बड़ा भाई और विनता का पुत्र है। उसका जन्म अंडे को अपक्वावस्था में ही फोड़ देने से हुआ है। इस कारण वह अनूरु, पैर रहित है। वह सूर्य के रथ का सारथी है। इन सारी कथाओं का रहस्य यह है कि ध्यान में जब प्रकाश दिखाई देना आरंभ होता है तो वह अरुण रंग लिए होता है। यह वह अवस्था है जब ध्यान पका नहीं है।

अर्जुन (अथर्व० ५.२८.९)- अर्जुन इच्छाओं के, इन्द्रियों के स्वामी इन्द्र का पुत्र है। वह स्वायम्भुव मनु, ऊर्ध्वमुखी मन है (गर्ग संहिता)। इस ऊर्ध्वमुखी मन का सारथी भगवान श्रीकृष्ण हैं। अर्जुन का जन्म फाल्गुन नक्षत्र, फाल्गुन मास में होता है। फल्गु अर्थात् व्यर्थ— जहाँ अब कर्मों पर फल लगना बंद हो चुका है। अर्जुन रूपी ऊर्ध्वमुखी मन बहुत से उच्चतर लोकों पर विजय प्राप्त करता है। अन्य सब पाण्डव उसी के बल पर निर्भर हैं।

अर्वा- (क) अर्वा घोड़े का नाम है। अर्वा उस अश्व को कहते हैं जो असुरों के प्रभाव में है। जो व्यक्तित्व आसुरी शक्ति से युक्त होता है, वह अर्वा बन कर अपने ऊपर असुरों को ढोता है।

(ख) साधारण भाषा में घोड़ा। जिसे अभी सीखने की आवश्यकता है— अभी वह अनाड़ी है। अर्वा को अश्व बनाना है। अर्वा संचारी भाव है, अश्व स्थाई भाव है। अर्वा को अश्व बनाने पर हमारा भाव पक्ष मेध्य, शुद्ध बनता है।

अवध– मुमुक्षु जन, जो मोक्ष पाने के इच्छुक हैं, उनकी दृष्टि से जो नष्ट नहीं हो सकता, जो अवध्य है, वह अवध है। हमारी आत्मा का वह रूप जो परमात्मा से अभिन्न है, अवध है।

अश्व (ऋ० १.१६२)– मानव की ज्ञान, क्रिया और भावनात्मक चेतनाओं में से चेतना का भावनात्मक रूप जो सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त होने में समर्थ है, अश्व कहलाता है। जब अश्व के बदले अश्वाः शब्द होगा तो वह केवल शरीर में व्याप्त होने में समर्थ होगा। अश्व बहिर्मुखी इन्द्रियों के द्वारों से बाहर को दौड़ लगाता है और काम क्रोधादि मलों से अमेध्य पशु बन जाता है। उसे मेध्य बनाने के लिए अश्वमेध यज्ञ की आवश्यकता होती है।

अश्विनौ (ऋ० १.३४ आदि)– नासत्य और दस्र, दो अश्विनीकुमार हैं। इनके बहुत से अद्भुत कार्य हैं जो वेद में वर्णित हैं। दस्र का अर्थ है जो कार्य में दक्षता लाता है। नासत्य का अर्थ है जो असत्य नहीं है। समाधि लग जाने पर अश्विनौ दिखाई नहीं पड़ते।

अश्विनौ शब्द वेद में सदा द्विवचन में प्रयुक्त है। यह एक देवमिथुन है। इन्हें देवभिषजौ कहा जाता है। वृद्ध से युवा कर देना, टूटी जांघ के स्थान पर लोहे की जांघ लगा देना, अंधकार से प्रकाश में ले आना, समुद्र से डूबते को बचा लेना आदि उनके चमत्कार बताए जाते हैं। महाभारत के नकुल-सहदेव और रामायण के नल-नील इन्हीं अश्विनौ के अवतार माने जाते हैं। अश्विनौ मूलतः अश्व नामक व्यापनशील चेतना की पराक् और अर्वाक् गति के प्रतीक हैं। इसी दृष्टि से ब्राह्मण ग्रंथों में इन्हें प्राणापानौ कहा जाता है। यह द्विविध गति ही अन्नमय, प्राणमय आदि कोशों को जोड़ने वाला मानो सेतु तैयार करती है। अश्विनौ का रथ तीन पहियों वाला है। दो पहियों को तो ब्राह्मण लोग ऋतुथा जानते हैं, लेकिन तीसरे को सत्य की खोज करने वाले योगी ही जान सकते हैं। दो पहिये स्थूल और सूक्ष्म देह के स्तर के हैं। तीसरा पहिया कारण देह के स्तर का है।

अश्वत्थ (अथर्व० ३.६)– अश्वत्थ वृक्ष सृष्टि, सृजन का प्रतीक है। इसका मूल ऊपर और शाखाएँ नीचे की ओर रहती हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि यह सदैव हिलता रहता है, इस कारण इसके नाम की निरुक्ति सार्थक है— अ + श्व (चल) + तिष्ठति। जहाँ व्यक्तित्व में विचारों का जन्म होता रहेगा, वह स्थिर नहीं रह सकता।

अश्वत्थामा (अथर्व० ६.७७.१)– अश्वत्थामा द्रोणाचार्य का पुत्र है। द्रोण का सारा प्रयास इसलिए है कि उसके पुत्र अश्वत्थामा को दूध मिल जाए। जहाँ अश्वत्थ अस्थिरता, या गति का प्रतीक है, अश्वत्थामा स्थिरता का प्रतीक है— जहाँ अश्व थम गए हैं, अर्थात्

मन स्थिर हो गया है। अश्वत्थामा द्रौपदी के पाँच पुत्रों का नाश इसलिए करता है कि जब तक शची वाक् रूपी द्रौपदी की शक्ति इसके पुत्रों रूपी पाँच ज्ञानेन्द्रियों को मिलती रहेगी, मन स्थिर नहीं हो सकता। मन के ऊर्ध्वमुखी होने पर अश्वत्थामा के सिर में मणि, मन की उच्च अवस्था, विकसित हो जाती है। अश्वत्थामा को शंकर का अवतार कहा गया है। अश्वत्थामा को सदा रोग ग्रस्त रहने का श्रीकृष्ण का शाप संभवत: मन के सदैव रोगग्रस्त रहने की वास्तविकता का प्रतीक है।

असुर– असुर प्रजापति के बड़े बेटे कहे जाते हैं और देवता छोटे। मनुष्य के पैदा होते समय उस पर अहंकार का राज्य होता है। उसे अपनी रक्षा के लिए बहुत से मोर्चों पर काम करना पड़ता है। इसलिए असुर राज्य प्राप्त करने के लिए देवताओं से लड़ाई करते हैं। इस राज्य को असुरों के हाथ से निकाल कर देवों के हाथ में दे देना ही योग है। तब असुरों का रूपान्तर हो जाता है, यह देवों के सहयोगी बन जाते हैं और उनके साथ मिलकर प्रसिद्ध समुद्र मंथन करते हैं।

अस्थि (ऋ० १.८४.१३)– अस्थि शब्द अस्ति का द्योतक है। दधीचि की अस्थियों का वज्र बनाया जाता है। हरेक जीव की चेतना शक्ति अस्थि (अस्ति) है। द्रष्टव्य- दधिक्रा।

अहल्या– गौतम ऋषि की पत्नी। आत्मा का सर्वश्रेष्ठ ज्ञान रूप गौतम कहलाता है। मन के ऊर्ध्वमुखी होने पर, पश्यन्ती वाक् प्रकट होने पर व्यक्तित्व सहस्राक्ष (हजार आँख वाला इन्द्र) बन जाता है। यदि सहस्राक्ष व्यक्तित्व अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करता है, अंतर्दृष्टि से काम नहीं लेता तो इन्द्रियों से काम लेने वाला जीवात्मा सहस्राक्ष नहीं रह पाएगा। सहस्रयोनि बन जाएगा और उसकी बुद्धि भी अहल्या-पत्थर बन जाएगी। अहल्या रूपी बुद्धि जब तक गौतम के पास है, तब तक तो ठीक है, लेकिन जब जीवात्मा रूपी इन्द्र उसका उपयोग करना आरम्भ कर देता है तो वह पत्थर बन जाती है।

आकूति (अथर्व० १९.४.२)– आ- समन्तात्, चारों तरफ से, कु-शब्दे, अभिव्यक्ति करना। चारों तरफ जिसका शब्द एक साथ होने लगे, बाढ़ की तरह, वह आकूति है। हमारे अन्दर तीन प्रकार की शक्तियाँ हैं– भावना शक्ति, ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति। क्रिया शक्ति के कारण क्रिया केवल एक दो अङ्गों में ही हो सकती है, सारा शरीर एकदम क्रियाशील नहीं हो सकता। इसी तरह ज्ञान भी स्थानिक है। लेकिन भावना शक्ति पूरे व्यक्तित्व को प्रभावित करती है, बाढ़ की तरह। इसका मूल है काम– वह काम नहीं जो वासना में प्रकट होता है, अपितु काम का दूसरा रूप-धर्म के अविरुद्ध काम। चित्तवृत्तियों का माता के समान पालन करने वाली, उन्हें शुद्ध करने वाली, आकूति है। हरेक नर नारी के लिए यह सुलभ नहीं है। यह सुलभ तब होगी जब हम बाह्य वृत्तियों से, काम-क्रोध-लोभ आदि से ऊपर उठें। यह परमात्मा की आह्लादिनी

शक्ति है, राधा है। आकूति को गीता में बुद्धि कहा गया है, ऐसी बुद्धि जहाँ सारे संशय मिट जाते हैं। द्रष्टव्य-राधा।

आग्रायण (इष्टि, यज्ञ में) समाधि में अग्र अर्थात सबसे ऊपर की चोटी, हिरण्मय कोश में पहुँचना।

आदम और शैतान- कुरान का आदम आत्मन और शैतान स्तेन (चोर) से बना है।

आदित्य (ऋ० २.२७ आदि)- आदित्य अदिति के पुत्र हैं। यह आदान का काम करते हैं। विषयों का आदान करने वाले प्राण। ये आदान करके सबको विज्ञानमय कोश में डालते रहते हैं। वेद में सात या आठ आदित्य वर्णित हैं जबकि पुराणों में १२। वेद में आदित्य शब्द के कुछ सूक्ष्म भेद हैं। पहले बाहर से कान, नाक, आँख आदि से शक्ति का आदान करने वाले प्राण आदित्यास: कहे जाते हैं। चित्तवृत्तियों का निरोध करने पर, चित्त को अन्दर की तरफ ले जाने पर आदित्यास: आदित्या: हो जाते हैं। फिर यह आदान अन्दर से करते हैं। अंत में केवल एक आदित्य रह जाता है। ऐसी ही स्थिति विश्वेदेवा, देवा और जन शब्दों के साथ समझनी चाहिए।

आप: (ऋ० १०.९)— शुद्धः आप: आत्मा का पानी, आबेरूह है। यह शुद्ध आप: इन्द्र कहलाने वाली जीवात्मा को पाँच प्रकार की शक्तियों के रूप में पाँच कोशों अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और हिरण्यय में प्राप्त होता है। हिरण्यय कोश में यह ओज बनता है जिससे वाणी ओजस्वी बनती है। विज्ञानमय में यह सह रूप में प्रकट होता है जिससे सहयोग की भावना उत्पन्न होती है। मनोमय में यह बल रूप में प्रकट होता है— मनोबल। प्राणमय कोश में वीर्य के रूप में और अन्नमय में नृम्ण के रूप में। यदि जीवन धारा अशुद्ध होती है तो यह शुद्ध आप: पाप: बन जाते हैं।

आहुति- स्थूल शरीर के स्तर पर जठराग्नि में अन्न की आहुति, सूक्ष्म शरीर के स्तर पर दर्शनाग्नि में ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से आने वाले अनुभव की आहुति, कारण शरीर के स्तर पर कारणाग्नि में संकल्प-विकल्प की आहुति।

इक्ष्वाकु- इक्ष + वाक् = इक्ष्वाकु। इक्ष् अर्थात् देखना, वाक्— देखने वाली वाणी, जिससे जीवात्मा देखता है, वह पश्यन्ती वाक् है। मन की शक्ति पश्यन्ती वाक् है। जब मन बाहर के बदले भीतर की ओर देखने लगता है तो वह पश्यन्ती वाक् कहलाती है।

इडा (ऋ० ३.२९.४)— इडा तर्क प्रधान बुद्धि है। यह भोग बुद्धि है— इन्द्रियों से भोग करने में साथ देती है। यह जड़ता, तमोगुण उत्पन्न करती है। ऐसी हालत में इसे शतहिमा कहते हैं। लेकिन यही बुद्धि अगर संयम रखा जाए, इसका कोई नियंत्रण करने वाला हो जाए तो आनन्द की ज्योति पैदा करने वाली हो जाती है। इडा का पद, केन्द्र स्थान त्रिकुटी, तीसरी आंख का स्थान है।

इन्द्र (ऋ० १.४ आदि)- एक अवर इन्द्र है, एक अपर इन्द्र। अवर इन्द्र इन्द्रियों का स्वामी है, अपर इन्द्र महेन्द्र आत्मा का वाचक है। इसके अतिरिक्त इन्द्र शब्द परमात्मा के

लिए भी प्रयुक्त होता है। इन्द्र के पर्यायवाची शब्द जैसे वासव, शक्र, पुरन्दर, पाकशासन इत्यादि इनमें से किसी भी इन्द्र के लिए हो सकते हैं।

इन्द्रजाल (अथर्व० ८.८.५)– हमारे भीतर बड़ा भारी दिव्यशक्तियों का जाल फैला हुआ है। कितने ही ज्ञानतंतु, क्रियातन्तु और भावनातन्तु फैले हुए हैं। यह इन्द्रजाल है। इन्द्र अर्थात् आत्मा, उसका जाल।

इन्द्रयोनि– मस्तिष्क में केशान्त भाग में एक तालु, स्तन के समान लटकता है। वह इन्द्रयोनि है। उसके नाश होने से अन्य सभी इन्द्रियाँ भी नष्ट हो जाएंगी क्योंकि यह सबका केन्द्र है। इसी से सभी इन्द्रियों को शक्ति मिलती है।

इन्द्राग्नि (ऋ० १.२१ आदि)– इन्द्र क्रियापरक प्रमति है और अग्नि ज्ञानपरक प्रमति। इन्द्रियों के क्रिया कलाप इन्द्र द्वारा होते हैं और जानना पहिचानना अग्नि द्वारा।

इन्द्र पुरी (अथर्व० ३.२५)– इन्द्रपुरी से ऐन्द्र बना, ऐन्द्र से आन्ध्र।

इष् आदि (अथर्व ४.३९)— इष्- ज्ञानवृत्ति, ऊर्ज-कर्मवृत्ति, काम-आनन्द वृत्ति, पोष-सोम नामक आह्लादक तत्त्व के पोषण का मानसिक स्तर पर अवतरण।

रयि— कारण देह के स्तर पर धृति, ऋतंभरा प्रज्ञा आदि की सम्पदा।

इषु (तीर) (अथर्व ३.२५)– इष्- इच्छा। परमात्मा का जो तीर हमारे भीतर काम करता है वह इच्छा शक्ति के रूप में होता है। इसी के द्वारा वह संहार भी करता है और पालन भी। यह रुद्र का बाण है। यदि हम इच्छा शक्ति का दुरुपयोग करते हैं तो वह हमारे विनाश का कारण बनता है।

उक्थ– जो भी हमारे अन्दर उठता है— इच्छा, भावना, चिन्ता, नाद, प्रकाश— यह सब उक्थ हैं।

उक्थम्– यज्ञ के छिपे स्तम्भ को ऊपर उठाने की प्रक्रिया उक्थम् कहलाती है। स्तम्भ के कई उक्थ (उक्थानि) हैं जिनका पाँच भागों में वर्गीकरण पुरुष के पाँच स्तरों से संबंधित है: आरोहण क्रम से— पृथिवी, वायु, आकाश, आपः और ज्योतींषि। उक्थों का पुनः विभाजन द्वैध प्रकार्य के आधार पर किया जाता है— पवमान उक्थ और गृह उक्थ। सोम का आनन्दमय से अन्नमय कोश को अवतरण पवमान उक्थ है। निचले स्तर से शीर्ष स्तर तक विभिन्न स्तरों पर सोम को धारण करने के लिए पात्रों का प्रावधान गृह उक्थ कहलाता है।

उक्षान्न (ऋ० ८.४३.११ आदि)– उक्ष अर्थात् बैल या सिंचन करने वाला। उक्ष + अन्न। स्थूल शरीर में इन्द्रियों के विषय।

उदान– जब शरीर के अङ्गों से शक्ति ऊपर को चढ़ना आरम्भ करती है तो वह सिर के पिछले हिस्से से चढ़कर तब ललाट में (सिर का अग्रभाग) आती है। यह नाग प्राण है। इसका अधिक महत्व नहीं है। जब शक्ति सिर के अग्र भाग से चढ़ कर तब सिर में

आए वह बहुत महत्वपूर्ण है। यह प्राण उदान प्राण या कूर्म प्राण कहलाता है। क्योंकि यह **कूर्म** की तरह धीरे-धीरे चलता है। उदान से ओदन बनता है।

उत्तरायण- जो जीवात्मा मन को ऊर्ध्वमुखी करता है, वह उत्तरायण के मार्ग को प्राप्त करता है। यह देवयान मार्ग है। इसमें तप, ब्रह्मचर्य, श्रद्धा, विद्या द्वारा आत्मा की खोज करते हैं। तब आदित्य को प्राप्त करते हैं। द्रष्टव्य-दक्षिणायन।

उर्वशी (ऋ० १०.९५)- पुराणों की अप्सरा जो बहुत व्यापक होकर व्याप्त हो रही है। यह हमारे आत्मा की आवाज है, हम जिसमें रहते हैं, हमारा वह व्यक्तित्व है। यह उरु वासना है अर्थात् अन्य सब वासनाएँ शान्त हो चुकी हैं, केवल परमात्मा को प्राप्त करने की वासना बाकी है। जब ध्यान में गंधर्व प्रकाश उत्पन्न कर देंगे (भागवत पुराण में उर्वशी-पुरूरवा की कथा देखें) तो उर्वशी भी समाप्त हो जाएगी।

उशना-कवि (ऋ० ९.८७ आदि)- कवि-परमात्मा। उशना-इच्छा शक्ति।

उषा (ऋ० ७.७७)— जब परमात्मा की ज्योति का आविर्भाव होता है तो उसे वेद में उषा कहते हैं। उषा के प्रकट होने पर सारे व्यक्तित्व में सोई शक्तियाँ जाग उठती हैं— जैसे प्रभात की उषा आने पर। जैसे चोर रात में अपना काम करते रहते हैं और उषाकाल होते ही भागने लगते हैं, इसी प्रकार ब्राह्मी उषा के प्रकट होने पर तन मन के रोग दूर भाग जाते हैं।

उषा काल के बाद जैसे दिन निकलता है, वैसे ही ध्यान में एक के बाद एक तरह-तरह के रंग वाले प्रकाश बदलते रहते हैं। रंग बदलने पर दिन बदलता है। इस प्रकार १२ दिन का प्रायः उल्लेख मिलता है। अंत में सूर्य के समान ज्योतिपुंज को वहन करती हुई उषा अपनी किरणों द्वारा व्यक्त होती दिखाई पड़ती है। ध्यान में उषा दिखाई पड़ने का भौतिक लाभ यह है कि आयु बढ़ती है।

उषा-अनिरुद्ध- बाणासुर की पुत्री उषा ने स्वप्न में अनिरुद्ध को देखा। उसकी योगिनी सखी चित्रलेखा ने अनिरुद्ध को द्वारका से उठाकर उषा के पास पहुँचा दिया। बाणासुर ने अनिरुद्ध को बंदी बना लिया। इस पर कृष्ण ने बाणासुर के साथ युद्ध करके उसकी हजार भुजाओं में से चार को छोड़कर शेष सब काट दीं (भागवत पु० १०.६२)। इस कथा में बाणासुर महत् तत्त्व का प्रतीक है। महत् देवानाम् असुरत्वमेकम्— वह देवताओं का निम्नतर स्तर है जो असुर है, उसके बिना देवताओं का काम नहीं चल सकता। इसलिए कृष्ण उसको मारते नहीं हैं। बाणासुर की चार भुजाएँ विज्ञानमय कोश, मनोमय, प्राणमय और अन्नमय कोशों की प्रतीक हो सकती हैं। उषा पुत्री के रूप में महत् शक्ति के यहाँ परा शक्ति का जन्म हुआ है। जब तक अनिरुद्ध बाणासुर की कैद में हैं, तब तक निरुद्ध कहा जाएगा। मुक्त होने पर ही अनिरुद्ध बनेगा। वासुदेव, संकर्षण,

अनिरुद्ध और प्रद्युम्न के चतुर्व्यूह को वेदों का वसु, रुद्र, आदित्य और विश्वेदेवा कहा गया है। इस प्रकार ध्यान में पहले उषा प्रकट होगी, फिर अनिरुद्ध रूपी आदित्य।

उस्रिया (ऋ० ४.५.९ आदि)- यह गोनामानि में एक है। हमारी ज्ञान की समस्त प्रवृत्तियाँ उस्रिया हैं। यह ब्रह्मज्ञान की ज्योति, किरणें हैं।

ऋत और सत्य (ऋ० १०.१९०.१)- किसी एक समय विशेष पर व्यक्ति जैसा देखता है, अनुभव करता है, वह ऋत कहा जाता है। ऋत समय के अनुसार बदलता रहता है, जैसे ऋतु बदलती रहती है। इसके विपरीत सत्य सर्वदा एक ही रहता है, बदलता नहीं। साधक की चेतना का ज्यों-ज्यों विस्तार होता जाता है, उसका ऋत भी बृहत् बनता जाता है, उसकी इन्द्रियाँ विभिन्न आयामों में काम करने लगती हैं। उदाहरण के लिए, शतावधान पुरुष एक समय में कई लोगों को पत्र लिखा सकता है। दूर श्रवण, दूर दर्शन की शक्ति आ सकती है।

ऋभु-विभु-वाज (ऋ० १.१६१)— (क) ऋभु-विभु-वाज तीनों भाई सुधन्वा के पुत्र हैं और त्वष्टा के शिष्य हैं। एक महाचमस, बड़ा प्याला था जिसमें देवता लोग सोम पान करते थे। इन भाइयों ने उस महाचमस के तीन टुकड़े करके उसके तीन चमस बना दिए। इस कार्य से इनके गुरु त्वष्टा इन पर अत्यन्त क्रोधित हुए।

(ख) ऋग्वेद का यह सूक्त इस प्रकार आरम्भ होता है— तीनों भाई परस्पर पूछ रहे हैं— यह जो हमारे पास आया है, यह कौन है? क्या यह श्रेष्ठ ओंकार है, क्या सबसे छोटा है? क्या यह रहस्य जानने के लिए दूत बन कर आया है? अंत में पता लग गया कि यह तो दूत है और यह अग्नि है। हे भ्राता अग्ने, यह जो चमस है, जो महाकुल का है, हमने इसकी निन्दा नहीं की। हमने तो इसकी भूति (उत्पत्ति) बताई है। यह द्रुण, लकड़ी (द्रु-द्रुत गति से चलने वाला, न-नय, ले जाना) से बना है (अथवा यह सदा परिवर्तनशील प्रकृति से बना है)। हमारा शरीर ही चमस या प्याला है। यह महाकुल का, प्रकृति के कुल का है। अग्नि कहता है— देवता कहते थे कि तुम लोगों ने एक प्याले के चार कर दिए, यह तो एक का एक बना हुआ है। इस बात को जानने के लिए हम आए हैं। यदि तुमने यह कमाल कर दिया तो हे सुधन्वा के पुत्रों, तुम देवताओं के साथ यज्ञ में भाग पाने वाले हो जाओगे, यह निन्दा की बात नहीं है।

(ग) ऋभु, विभु, वाज क्रमशः ज्ञान शक्ति, भावना शक्ति और क्रिया शक्ति के द्योतक हैं। तीनों आत्मा के त्रिविध रूप हैं जो मनोमय, प्राणमय और अन्नमय कोशों में व्यक्त होते हैं। इससे परे विज्ञानमय कोश है। इससे भी परे हिरण्यय कोश है जहाँ इनका पिता सुधन्वा (सु है धनुष जिसका) रहता है। सुधन्वा आत्मा का वह रूप है जो परमात्मा का साक्षात्कार कर रहा है जिसके पास सुन्दर, प्रणव का धनुष है। जब यह सुधन्वा-पुत्र उत्पन्न हो जाते हैं तो साधारण तीन शक्तियों को चार में बाँट देते हैं— जब

इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्ति में ब्राह्मी शक्ति आ जाती है तो यह तीनों मिलकर पराशक्ति बनती हैं। उसे ही अदिति, अखण्ड शक्ति कहते हैं।

(घ) तीनों भाइयों ने अग्नि से कहा— चार करना पर्याप्त नहीं, एक अश्व, एक धेनु, एक रथ बनाएंगे। अपने माता-पिता को जवान बनाएंगे। हम सफल कारीगर होना चाहते हैं। अश्व— जिसका कल नहीं है, आज है। जो सदा वर्तमान है, ऐसा अश्व है। एक अन्य मन्त्र में कहा गया है कि अश्व में से अश्व बनाया। पहला अश्व परमात्मा है। उस परमात्मा की शक्ति को लेकर जीवात्मा को अजर अमर कर देना है, उसे याद दिला देना है कि तुम अजर अमर हो। यह दूसरा अश्व है। रथ भी यहीं बनाना है। रथ के तीन पहिए हैं— एक स्थूल शरीर में, एक सूक्ष्म शरीर में और एक कारण शरीर में। तीनों में एक ही चेतना एक साथ चलेगी। जब तक जीवात्मा अश्व नहीं बनता तब तक वह अधिक से अधिक मन तक पहुँच सकता है। तब तक रथ के दो ही पहिए हैं— स्थूल और सूक्ष्म शरीर। मन ऊर्ध्वमुखी होने पर तीन पहिए का रथ बन जाता है। तीनों भाई एक धेनु बनाते हैं। धेनु— गाय जो दूध देती है, प्रसन्न करती है। वाक् वै धेनुः। आत्मा परमात्मा से जुड़ने पर वाक् शक्ति धेनु बन जाती है, आत्मा की आवाज बन कर निर्देश देती है। अथर्ववेद की विराज वाक् बनती है जो जहाँ जाती है, वहाँ लोग उसे दुहकर इच्छानुसार फल प्राप्त करते हैं। तीनों भाई माता-पिता को जवान कर देते हैं। माता के गर्भ से प्राप्त व्यक्तित्व पूर्व या पुराना व्यक्तित्व कहलाता है। साधना द्वारा इसे नया बनाना है। माता के गर्भ से तन और मन प्राप्त होते हैं। यही दोनों पुराने माता-पिता हैं।

(ङ) अरे, वह दूत कहां चला गया, अग्नि। जब त्वष्टा ने देखा कि एक के चार चमस हो गए तो त्वष्टा स्त्रियों (ग्नासु) के भीतर विशेष रूप से प्रकाशित हो गया, छिप गया। अग्नि ब्रह्माग्नि है। वह ऋभु-विभु और वाज तीनों को प्रेरित करता है। तीनों शक्तियाँ ब्रह्माग्नि से प्रेरित होने पर एक चमस के चार कर देती हैं। त्वष्टा अर्थात् प्रकृति, वाक्, विश्वकर्मा जिसने पाँच भूतों का निर्माण किया, वह इन्द्रिय शक्तियों या किरण रूपी स्त्रियों (ग्नासु) में छिप गया। योरोपियन भाषा का शब्द गाइनाकोलोजी ग्नासु से बना है। त्वष्टा कहता है कि मैं इन्हें मार डालूँगा जिन्होंने देवपान चमस की निन्दा की है। मनुष्य व्यक्तित्व देवताओं का प्याला है जिसमें वे सोमपान करेंगे। तब इन तीनों भाइयों ने भी छिपने के लिए कन्या नाम कर लिए। अब इनके नाम ऋक्, साम और यजु या ज्ञान, इच्छा और क्रिया शक्ति हो गए।

(च) अन्नमय कोश प्रथम चमस है, उसके कण-कण में छिपा शक्ति का कोश स्थूल प्राणमय कोश है जो द्वितीय चमस है, प्राणमय के कण-कण में छिपा शक्ति का कोश मनोमय कोश है जो तीसरा चमस है। मनोमय कोश के भी कण-कण में छिपा शक्ति का कोश विज्ञानमय कोश है जो चतुर्थ चमस है। इनके गुरु त्वष्टा के कुपित होने

का कारण यह है कि चार चमस होने पर व्यक्तित्व में विष बढ़ने की संभावनाएँ अधिक हो जाती हैं। व्यक्तित्व एक इकाई बना रहे तभी उसमें सोम रूपी अमृत रह सकता है।

इन तीनों भाइयों ने अपने माता-पिता को पूर्णतया युवा बना दिया। इनके माता-पिता हैं— व्यष्टि भावना और समष्टि भावना। यह अपने पुराने ढर्रे पर चलते रहें तो इन माता-पिता का वृद्ध होना है। लेकिन जब आनन्दमय कोश की प्राप्ति के पश्चात् अश्विनौ के अचक्र-रथ में बैठ कर वहाँ से लौटते हैं तब पुराने विचारों को यह व्यष्टि और समष्टि छोड़ देते हैं। तब एक नया व्यक्तित्व उत्पन्न होता है जिसे कहते हैं नवीन ऋषि।

(छ) त्वष्टा मूलत: आत्मा की वाक् शक्ति है। वही प्रकृति का रूप धारण करती है। ज्ञानाग्नि के प्रभाव से त्वष्टा, प्रकृति में तेज की किरणें फैल गई, वह किरण रूपी स्त्रियों में देदीप्यमान हो गया। देवपान चमस के तीन से चार होने पर, ध्यान करने पर मनोमय से ऊपर जाने पर त्वष्टा गुरु समाधि में जाकर जगमगाने लगता है।

(ज) समाधि अवस्था में जब देवपान चमस बनाया तो चर्म में से गाय निकल पड़ती है। चर्म का अर्थ है चरम अवस्था, पराकाष्ठा। जब आत्मा को ज्योतिर्मय शक्ति मिलने लगी, उससे ज्ञान शक्ति रूपी गाय निकाल ली ध्यान के द्वारा। ज्ञानशक्ति रूपी गाय ऋतंभरा प्रज्ञा है।

(झ) हे सौधन्वनो! तुम जल पिओ। और जो मुंज को पवित्र करने वाला सोम है उसे पिओ। अगर तुमको यह पसन्द नहीं है तो तीसरे सवन में आनन्द से पीना। उदक— जो ऊपर को चले। कण-कण में छिपी शक्ति ध्यान बढ़ने पर ऊपर को उठती जाती है। यह प्रथम सवन है। दूसरा सवन— यह शक्ति चलकर जब हमारे शीर्ष स्थान में पहुँचती है तो उस आनन्द का नाम मुंजवान पर्वत का सोम है। मुंज घास से मेखला बनती है। ऐसे ही रेशे मस्तिष्क में भी फैले हैं। इनसे तरंगित आनन्द का नाम मुंजवान है। तीसरे सवन में शीर्ष स्थान में आनन्द नया रूप धारण करके नीचे को अवतरण करता है, सबको सबल करता हुआ।

(ट) अब तीनों ने तीन अलग-अलग सत्य कहे। एक ने कहा हम तो आप:-चारों ओर व्याप्त सोम पिएंगे। दूसरे ने कहा हमारा तो अग्नि ही सबसे श्रेष्ठ है। उसे लेना चाहता हूँ। तीसरे ने कहा— वह रूप लेना चाहता हूँ जो बहुतों का वर्धन करे। इस प्रकार सबने चमसों को अलंकृत कर दिया। तीसरा भाई कर्म को व्यापक रूप में निखारना चाहता है। इसका अर्थ है कि साधक ने न केवल अपने को अलंकृत किया, अपितु अपने सम्पर्क में आने वाले सबको सुशोभित कर दिया।

(ठ) ऋभुगण तीन काम करते हैं। शब्दार्थ के अनुसार, रक्तवर्णा गाय के लिए उदक लाते हैं, मांस को सजाते संवारते/छुरी से काटते हैं, सूर्यास्त होने पर गाय का गोबर हटाते हैं। गाय के लिए उदक ला` का अर्थ है कि ऋतम्भरा बुद्धि,परमेश्वर से प्राप्त

बुद्धि के लिए एक भाई आचरण जन्य अनुभव को प्रस्तुत करता है जिससे बुद्धि अलंकृत होती है। छुरी द्वारा मांस काटने (सूनया स्वधिति) के शब्दों का रूपांतर सु-सुन्दर, न-नीति। व्यवहार अर्थ लेने पर, दूसरा भाई सुन्दर व्यवहार से भाव लोक रूपी मांस को सजाता है। सूर्यास्त होने पर गोबर हटाने का तात्पर्य आत्मज्ञान समाप्त होने के कारण फैले अन्धकार को दूर करना है।

(ड) मनोमय, प्राणमय और अन्नमय कोश रूपी तीन पुत्रों की माता-पिता रक्षा करते हैं। कैसे? अगोह्य घर में पहुँच कर ऋभुगण फिर वापस नहीं आते। अगोह्य घर, जीवात्मा का वह स्वरूप जो छिपाया नहीं जा सकता, समाधि में होता है। जब तक समाधि लगी रहती है, ऋभुगण वापस नहीं आते। इसके अतिरिक्त दो स्थितियाँ और हैं– आरोहण और अवरोहण। पहली अवस्था में इस जीवात्मा को भोजन मिलता है। वह इसका तृण है, अन्न है, आनन्द है। व्युत्थान की अवस्था में इसे आपः, शुद्ध आपः मिलता है।

ऋषभासः (ऋ० ६.१६.४७)– मानुषी त्रिलोकी (अन्नमय से मनोमय कोश तक) में ज्ञान शक्तियाँ।

ओज, सह, बल, वीर्य, नृम्ण– (क) इन्द्र कहलाने वाले जीवात्मा को शुद्ध आपः पाँच प्रकार की शक्तियों के रूप में प्राप्त होते हैं। हिरण्यय कोश में ओज शक्ति जिससे वाणी ओजस्वी बनती है। विज्ञानमय कोश में सह शक्ति जो नीचे के कोशों में उतरने पर संगठन के लिए प्रवृत्त करती है। विज्ञानमय कोश गोष्ठ है, श्रीकृष्ण की व्रजभूमि है। यहाँ चित्तवृत्तियाँ आकर बैठ जाती हैं। अहंकार पर विजय प्राप्त करने पर विज्ञानमय कोश में पहुँचने के अधिकारी हो जाते हैं। मनोमय कोश में बल जिसे मनोबल कहते हैं (बाहुबल नहीं)। प्राणमय कोश की शक्ति का नाम वीर्य है। और इन प्राणों का नाम वीर है। शुद्ध आपः या प्राण अन्नमय कोश में आने पर नृम्ण कहलाते हैं। नृ + मन = नृम्ण। नृ अर्थात् नर प्राणों से शरीर के अंग गति करते हैं। इनके साथ एक और सूक्ष्म प्राण है मन, जो मनोमय और विज्ञानमय कोश से आता है। तब यह दोनों मिलकर नृम्ण बनते हैं। जिस व्यक्तित्व की प्राणधारा विषाक्त हो गई है, उसमें भी नृम्ण प्राण होते हैं लेकिन उस नृम्ण में मन का भाग, सूक्ष्म प्राण, कम होता है। नृम्ण जितना बढ़ेगा, त्वचा की संवेदनशीलता भी उतनी ही बढ़ती जाएगी। त्वचा की संवेदनशीलता को परकार ही दो नोकों को त्वचा पर रखकर माप सकते हैं। यदि दो नोकों के बीच दूरी कम होगी तो दोनों नोक एक ही जगह छूती मालूम पड़ेंगी। यह दूरी ही संवेदनशीलता का पैमाना है।

(ख) ओ से जन्मा हुआ तत्त्व ओज कहलाता है। ओ = अ + उ। अ = स्थूल शरीर, उ = सूक्ष्म शरीर। सूक्ष्म शरीर की शक्तियों के विकास से स्थूल शरीर को जो प्राप्ति होती है वह ओज है। (वेद सविता मार्च ८४)।

ओदन (भात) (अथर्व वे० ११.२)– उदान प्राण (द्र० उदान) की साधना से जो ज्योति प्राप्त होती है वह ओदन कहलाती है। वेद में एक अज ओदन है, एक ब्रह्मोदन और एक बार्हस्पत्य ओदन है। ब्रह्मोदन साधक के भीतर बनता है और साधक की शक्ति को बढ़ाता है। बुद्धि को श्रेष्ठ बनाना बार्हस्पत्य ओदन का काम है। पंचोदन (पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ) को बल देने का कार्य अज ओदन का है।

अदिति साध्य देवों के लिए ब्रह्मोदन पकाती है और उसे खाकर चार आदित्यों को जन्म देती है। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार, यह चारों आदित्य बन जाएँ, देवता बन जाएं। अन्यथा यह चारों आसुरी प्रवृत्तियों में लीन रहते हैं।

ओषधि (ऋ० १०.९७)– ओष अर्थात् जलाना। ओष को, प्रकाश को धारण करने वाली ओषधी कहलाती है। प्रकाश को, ज्ञान को धारण करने वाली बुद्धि, वह चेतना शक्ति है जो ज्ञान से निकलती है जिससे हम सब कुछ देखते हैं। यह पश्यन्ती वाक् है।

कण्व ऋषि (ऋ० १.३६ आदि)– कण्व शब्द की निष्पत्ति कण् धातु से है जिसका अर्थ छोटा होना है। अत: कण्व द्वारा वाक् या सूक्ष्मतम रूप अभिप्रेत है। पाणिनीय धातु पाठ के अनुसार कण् का शब्दार्थ निमीलन तथा गति भी है। अत: कण्व शब्द से वाक् के सूक्ष्मतम रूप के अन्य लक्षण भी सरलता से व्यक्त हो सकते हैं। द्र० शकुन्तला (वैदिक दर्शन)

कद्रू और सुपर्णी (विनता) (ऋ १०.१८९ आदि)– कद्रू और विनता की कथा पुराणों में प्रसिद्ध है। सर्पो की माता कद्रू और गरूड़ माता विनता में होड़ लगती है। कद्रू कहती है कि उच्चै:श्रवा घोड़े की पूंछ काली है। विनता कहती है सफेद है। सर्प घोड़े की पूंछ पर लिपट जाता है और पूंछ काली दिखाई देने लगती है।

कद्रू स्थिर पृथिवी तत्त्व है। शिव पुराण के अनुसार कद्रू महामोहात्मक है। सुपर्णी नाना रूप में प्रकाश करने वाली द्यौ तत्त्व है। सुपर्णी का अर्थ है जिसके पंख लगे हों। यह उड़ कर बहुत दूर तक जा सकती है। सूर्य रूपी अश्व की किरण रूपी पूंछ (मानुषी त्रिलोकी) को स्थिर पृथिवी तत्त्व नहीं देख सकता। उसे तो वह काला ही प्रतीत होगा। ऐसी स्थिति में विनता को कद्रू की दासी के रूप में कार्य करना होगा।

ब्राह्मण ग्रंथों में इस कथा का रूपान्तर इस प्रकार है कि कद्रू अश्व की पूंछ को गतिशील देखती है जबकि सुपर्णी स्थिर। (वैदिक दर्शन के आधार पर)

कन्या (ऋ० १.१२३.१० आदि)– जो दूसरों में कामवासना उत्पन्न नहीं करती, न ही स्वयं काम के वशीभूत होती है, वह कन्या है।

कपिल ऋषि (ऋ० १०.२७.१६)– कपिं लालयतीति कपिल– जो कपि या बन्दर (मन) का लालन-पालन करता है, ऐसा जीवात्मा कपिल कहलाता है।

कबन्ध (अथर्व० ६.७५)- (क) क अर्थात् प्रजापति जो अनिर्वचनीय है। जिसने क को बांध रखा है वह कबन्ध है। हमारा यह स्थूल देह ही कबन्ध है। क अक्षर बड़े महत्त्व का है जिसके लिए वेद सविता सितम्बर ८४ देखना चाहिए। रामायण के कबन्ध का मुख उसके उदर में है। पेट, भक्षण ही उसके लिए सब कुछ है। क अक्षर का पूर्वरूप क्रास + था। वेद में इसकी दो क्षैतिज भुजाएं ऋत और अनृत का प्रतीक हैं जिन्हें दो घोड़े कहा जाता है। कं ब्रह्म खं ब्रह्म तभी बनेगा जब कबन्ध रूपी देह को राम-लक्ष्मण अग्नि में जला देगें। तब यह सीता प्राप्ति का उपाय बताएगा। (वाल्मीकि रामायण अरण्य काण्ड)

(ख) कबन्ध का उल्टा है कवष, जो ब्रह्म के वश में हो गया, ब्रह्म से एकाकार हो गया। ऋग्वेद के कुछ सूक्तों (१०.३०) का ऋषि कवष ऐलूष है। इलूष का अर्थ है जिसने इला, तर्कशक्ति को भी जला दिया।

कबन्धी कात्यायन (प्रश्नोपनिषद्)— कबन्धी अर्थात् देह में रहने वाला। अत: देह की दृष्टि से प्रश्न पूछता है कि प्रजाएं कहां से उत्पन्न होती हैं। प्रजा का अर्थ सन्तान है लेकिन यहाँ प्रजा से तात्पर्य इच्छा, भावना, विचार, संकल्प-विकल्प आदि हैं।

क०ाभूषण- पुराणों में अदिति देवी कानों में दिव्य कुंडल धारण करती है। सुदास की पत्नी मदयन्ती भी दिव्य कुण्डल धारण करती है जिसकी मांग गौतम पत्नी अहल्या शिष्य उत्तंक से करती है। यह कर्णाभूषण अनाहत नाद है। (महाभारत)

कल्माष-ग्रीव (अथर्व० ३.२७.५)- आकण्ठ भौतिक सुख में लिप्त।

कश्यप (ऋ० १.९९ आदि)- (क) कश्यं पाति इति कश्यप। कश धातु प्रकाश अर्थ में है। प्रकाश में लाने योग्य वस्तु— ब्रह्मवीर्य, ब्रह्मबल, उसका पालन करने वाला कश्यप कहलाता है। इन्द्रियों को भीतर ले जाकर देखने वाला, समाधि में, पश्यक कहलाता है।

(ख) समाधि की ओर आरोहण करता हुआ जीवात्मा कश्यप कहलाता है। समाधि से व्युत्थान की अवस्था में, जब जीवात्मा समाधि से प्राप्त ब्रह्मवीर्य का कार्यक्षेत्र में उपयोग करता है, तब उसे मारीच कश्यप कहते हैं। वह मरीचियों, किरणों से युक्त होता है।

(ग) कश्यप दैवी और आसुरी, दोनों वृत्तियों का पालक, पिता है। (अदिति, दिति आदि उसकी कई पत्नियाँ हैं)।

काकभुशुण्डि- सारी रामायण जो शिवजी ने पार्वती को सुनाई है, वह सारी कथा वही है जो काकभुशुण्डि ने गरुड़ को सुमेरु पर्वत पर सुनाई है। सुमेरु पर्वत पर काकभुशुण्डि पक्षियों को एकत्रित करके ज्ञान का उपदेश करते हैं। गरुड़ मोक्षेच्छु जीवात्मा है और काकभुशुण्डि प्राप्त-मोक्ष है। इन दोनों के माध्यम से बताया गया है कि

मोह को छोड़कर मोक्ष कैसे प्राप्त किया जा सकता है, आत्मा को परमात्मा कैसे मिल सकता है। शरीर में सिर का भाग सुमेरु पर्वत है— ऊँचे से ऊँचा। सिर मेरु है, उसकी एक दण्ड है मेरुदण्ड जिसमें से ज्ञान तन्तु, क्रिया तन्तु और भावना तन्तु निकल कर सारे शरीर में फैले हैं। यह तन्तु सारे शरीर का नियंत्रण करते हैं। मेरुदण्ड में फैली यह शक्ति गरुत्मान है। गरुड़ को कभी-कभी घमण्ड हो जाता है कि मेरे बिना पालनकर्ता भगवान् विष्णु कुछ भी नहीं कर सकते। काकभुशुण्डि ज्ञान और भक्ति में रत आत्मा का वह रूप हैं जो सिर में व्याप्त है। इसको वैराग्य हो जाता है यद्यपि कर्म करना पड़ता है। यह गरुत्मान को उपदेश करता है।

काम बाण (अथर्ववेद ३.२५.२)— इषु, जिसे साधारण भाषा में तीर या बाण कहते हैं, वह कामदेव का पुत्र या पुत्री है! इषु का अर्थ इच्छा भी होता है। इच्छाएँ ही कामदेव के तीर हैं। यह तीर इन्द्रियों के माध्यम से चलते हैं। जैसे आँख पर तीर चला तो हम कोई चीज देखने के लिए व्याकुल हो जाते हैं। पुराणें में इन तीरों ने शिवजी का वेधन किया था। तब उन्होंने तीसरा नेत्र खोला और कामदेव की ओर देखा। वह भस्म हो गया। तब से कामदेव अनंग है। अब उसका तीर कहाँ चलेगा? अब तीर वेद में उत् तुद:, ऊपर की ओर चलेगा। निहितार्थ यह है कि बहिर्मुखी चित्तवृत्तियों का निरोध कर देने पर, या कामदेव को भस्म कर देने पर काम अनङ्ग हो जाता है। तब यह वही काम है जिसके लिए गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है— धर्माविरुद्ध: कामोहं-धर्म के अविरुद्ध काम हूं। (वेद सविता फरवरी ८६)

कार्तवीर्य अर्जुन (अथर्व० १७.१.२७)- कार्तवीर्य अर्जुन (जो अपने बल पर कृतवीर्य हुआ है, हमारे व्यक्तित्व का मनोमय कोश) ने दत्तात्रेय को प्रसन्न करके कई वरदान प्राप्त किए हैं कि वह किसी शत्रु से नहीं हारेगा, उसके हजार बाहुएं होंगी, वह अपने से श्रेष्ठ से शिक्षा ग्रहण करेगा आदि। ऐसा व्यक्तित्व जमदग्नि की कामधेनु का अपहरण कर लेता है, जबकि उसकी योग्यता कामधेनु प्राप्त करने की नहीं है। जमदग्नि-पुत्र परशुराम माहिष्मती पुरी में जाकर कार्तवीर्य अर्जुन का वध करते हैं और कामधेनु को मुक्त कराते हैं। कुछ समय पश्चात् कार्तवीर्य अर्जुन के दस हजार पुत्र (संभवत: दस इन्द्रियाँ) जमदग्नि की हत्या कर देते हैं। इस पर परशुराम समस्त क्षत्रिय वंश का २१ बार संहार करते हैं (चेतना की २१ धाराएँ हैं)। (द्र० नर्मदा)

कालिय नाग- यमुना में एक बड़ा कुंड है। उसमें एक कालिय नाग बैठा हुआ है जो यमुना के पानी में विष उगल रहा है। उस पानी को गायों ने पिया तो गाएँ मर गईं। कृष्ण उसे पकड़ लेते हैं। नागपत्नियाँ प्रार्थना करती हैं कि इन्हें छोड़ दो। उन्होंने कालिय-दह में आने का कारण बताया कि पहले वे रमणक द्वीप में रहे थे। वहाँ उन्हें गरुड़ तंग करता था। कृष्ण उन्हें वापस रमणक द्वीप जाने का आदेश देते हैं और कहते हैं कि अब कालिय नाग के सिर पर मेरा पद चिह्न बन गया है, अब गरुड़ नहीं खाएगा। यम-

नियम-संयम की धारा को वेद में यमुना कहा गया है। यमुना ही स्वर्ग है। यह यमुना नदी जीवन में बह रही है। इसमें अहंकार रूपी अहि, सर्प उत्पन्न हो गया है जो इस धारा को दूषित कर रहा है। यही कालिय नाग है। इस अहंकार को यदि परमात्मा को समर्पित कर दें तो फिर अहंकार पर कृष्ण के चरणचिह्न बन जाते हैं। फिर रमणक द्वीप रूपी इस रमणीय संसार में कालिय को भय प्राप्त नहीं होगा।

किष्किन्धा (रामायण)— (क) किं किं दधाति इति। न जाने इसमें क्या-क्या भरा पड़ा है। यह व्यक्तित्व।

(ख) बालि मनोबल का प्रतीक है जिसके पास किष्किंधा का राज्य है। मायावी राक्षस से बालि का युद्ध होने पर रक्त की धारा गुफा से निकलती देख सुग्रीव ने सोचा कि बालि मारा गया। रक्त की धारा ध्यान में दिखाई देने वाले लाल रंग का प्रतीक हो सकती है। लाल रंग दिखाई देने पर विज्ञानमय कोश का सुग्रीव समझता है कि अब मनोबल समाप्त हो गया है। (द्र० सुग्रीव)

(पुस्तक आत्म-रामायण (डी ए- ११३ डी, हरिनगर, नई दिल्ली-६४) में बालि को लोभ और सुग्रीव को संतोष कहा गया है)

कुष्ठ— कुष्ठ अथर्ववेद के कुछ सूक्तों जैसे ५.४ व ९.३९ का देवता है जिसका साधारण अर्थ कूठ, एक औषधि लिया जाता है जो कुष्ठ रोग में उपयोगी है। कुष्ठ अर्थात् कु- दुर्गम स्थान और स्थ-स्थित, आत्मा का वह स्वरूप जो दुर्गम स्थान में स्थित है, जहाँ परमात्मा से नित्य सम्बन्ध है।

कुशिक (ऋ० ३.३१, १०.१२७)— पुराण कथा के अनुसार कुशिक ने तपस्या करके इन्द्र को अपने पुत्र कौशिक (गाधि) के रूप में प्राप्त किया। जब मनुष्य का व्यक्तित्व एकीकृत हो जाता है तो दैवी त्रिलोकी स्तर का प्राण कुशिक कहलाता है। उससे निचले स्तर पर यह बहुत से, कुशिकाः हो जाते हैं। मानुषी त्रिलोकी के स्तर पर आने पर यह कुशिकासः कहलाते हैं। यह प्राण शरीर की प्रत्येक कोशिका में सोए पड़े हैं। इन्हें जगाने के लिए विश्वामित्र बनना पड़ेगा। कुशिक का शाब्दिक अर्थ कोशकार ले सकते हैं।

कृष्ण— संसार में कर्षण है, संघर्ष है सफलता-असफलता का, मान-अपमान का, सुख-दुख का, इत्यादि। जहाँ द्वंद समाप्त हो जाता है, वह कृष्ण है। (पुस्तक मानवता को वेदों की देन— फतहसिंह)

कृष्टि (ऋ० १.३६.१९ आदि)— कृष्टि कर्षण से बना है। कर्षण के दो रूप हैं— सत् और असत्। कृष्टि से क्राइस्ट बना है।

कुमार (ऋ० ५.२, ७.१०१ आदि)— जीवात्मा की त्रिकालातीत अवस्था। आत्मा जब अपने शुद्ध बुद्ध निरंजन रूप को पहचान लेता है तब वह कुमार बनता है।

केशिनी (ऋ० १.१४०.८)- केशिनी के स्वयंवर में प्रह्लाद-पुत्र विरोचन और ब्राह्मण-पुत्र सुधन्वा, दो पात्र थे जो अपने को दूसरे से श्रेष्ठ बताते थे। दोनों निर्णय के लिए प्रह्लाद के पास इस शर्त पर गए कि विजित व्यक्ति हारने वाले के प्राण ले लेगा। प्रह्लाद ने सुधन्वा को श्रेष्ठ बताया। प्रसन्न हुए सुधन्वा से प्रह्लाद ने विरोचन के प्राण मांगे (महाभारत उद्योगपर्व अध्याय ३५)। केशिनी परा शक्ति है। सुधन्वा आत्मा की शक्ति है जो समाधि अवस्था में प्राप्त होती है। विरोचन व्युत्थान की अवस्था है। स्वभावतः, समाधि में विरोचन प्राण समाप्त हो जाएंगे। व्युत्थान होने पर विरोचन फिर जीवित हो जाएगा।

कौशिक और पतिव्रता (अथर्व० ६.११७ आदि)- कुष्ठ रोग से ग्रस्त कौशिक ब्राह्मण को उसकी पतिव्रता पत्नी कंधे पर रखकर अपने स्वामी की इच्छा पूरी करने के लिए वेश्या के घर ले जा रही थी। रास्ते में कोढ़ी के पैर से शूली पर बैठे माण्डव्य ऋषि की शूली (अणि) हिल गई। माण्डव्य ने शाप दे दिया कि सूर्य उदित होते ही कोढ़ी मर जाएगा। पतिव्रता स्त्री ने सूर्य उदित ही न होने दिया जिससे देवता परेशान हो गए। अंत में अनसूया के अनुग्रह से सूर्य उदित होने पर कोढ़ी मर कर पुनः जी उठा और उसका कोढ़ भी ठीक हो गया (मार्क० पु० १६)।

अथर्ववेद में कुष्ठ का अर्थ कु— स्थ अर्थात् दुर्गम स्थान में स्थित लिया जाता है। तात्पर्य यह है कि किसी प्रकार साधक एक विशिष्ट स्थिति में पहुँच गया है। पतिव्रता पत्नी उसकी बुद्धि है। यह शरीर वेश्म कहलाता है और वेश्या इस वेश्म में वेशन किए जाने योग्य परमात्मा की शक्ति है।

खाण्डव वन (ऋग्वेद १०.५७)— महाभारत में अर्जुन और श्रीकृष्ण द्वारा खाण्डव वन का दाह प्रसिद्ध है। खाण्डव वन खण्डित मानव व्यक्तित्व और विखण्डित मानव समाज का द्योतक है— टुकड़ों-टुकड़ों में बंटा व्यक्तित्व। एक अन्य कथा में इक्ष्वाकु वंशी असमाति राजा खाण्डव वन में एक सत्र आरंभ करता है और अपने वास्तविक पुरोहितों (गोपायन बन्धुओं) को त्याग कर किलाताकुली नामक दो असुरों को पुरोहित बनाता है। किलाताकुली द्वारा गोपायन बन्धुओं में से एक सुबन्धु के प्राण का अपहरण किया जाता है। (द्रष्टव्य-बन्धु)

नर या जीवात्मा का अहंकार ही राजा असमाति है। अहंकार के हितैषी राग-द्वेष ही किलाताकुली नामक असुर पुरोहित हैं। यह राग-द्वेष दिव्य सु से जुड़े मन (सुबन्धु) का प्राण लेने में समर्थ हैं।

गन्ध (ऋ० १.१६२.१०)- गंध दो प्रकार की है— कच्चे मांस की गंध और पुण्य गंध। किसी भी देवता की पूजा करते समय कहा जाता है— पुष्पं समर्पयामि, धूपं समर्पयामि गंधं समर्पयामि। यह देवता को समर्पण की जाने वाली गंध कौन सी है? वेदों में जब सूर्या का विवाह होता है, अर्थात् परमात्मा की शक्ति विभिन्न रूपों में लायी

जाती है, या अवतरित होती है तभी पृथिवी की गंध, पुण्य गंध उत्पन्न होती है। तीर्थंकर महावीर के शरीर से गंध निकलती थी। यही वह पुण्य गंध है जिसका दोहन पृथु की विराज धेनु का दोहन करते समय (भागवत पु०) गंधर्वाप्सरस करते हैं। एक ही तत्त्व जब गंध को धारण करता है तो गंधर्व कहलाता है। गंध धारण करके जब गति करने लग जाता है, आप: में सर्पण करता है, तब अप्सरा कहलाता है (द्र० अप्सरा)

बाह्य स्तर का सार-तत्त्व गंध है और आन्तरिक स्तर का सार-तत्त्व आप: है। सांस अन्दर लेते समय गंध का ग्रहण होता है और सांस छोड़ते समय तेज या रूप का। प्राणापानौ के प्रतीक द्वारा अभिव्यक्त की गई यह प्रक्रिया आनन्दमय कोश से लेकर अन्नमय कोश तक चलती है जिसके विभिन्न नाम हैं।

गंधर्वों को रूप की अभिलाषा है और अप्सराओं को गंध की, किन्तु इन दोनों की सम्मिलित अभिलषित वस्तु है पुण्य गंध।

गंधर्व (अथर्व० २.२, ४.३७.७)- (क) माधुर्य अथवा सौन्दर्य का भाव। वह मूल काम है। वह अच्छा और बुरा दोनों प्रकार का हो सकता है। इच्छाओं, भावनाओं की अनुभूति को गंधर्व कहते हैं। जैसे प्रेम की अनुभूति। इसके विपरीत, भाव की अभिव्यक्ति को अप्सरा कहते हैं।

(ख) मनोमय का आत्मा गंधर्व है। गंध इसकी पत्नी है। २७ गंधर्व इसी के २७ विभिन्न रूप हैं। यह मनोमय पुरुष जब अपनी उन्मनी शक्ति द्वारा ध्यानावस्था में विज्ञानमय कोश और आनन्दमय कोश में पहुँचता है तब विज्ञानमय कोश के आत्मा अथवा आनन्दमय कोश के आत्मा के तीनों रूपों (अग्नि, इन्द्र व सोम) से एकीभाव को प्राप्त हुआ दिव्य गंधर्व बन जाता है और विश्वावसु कहलाता है। यह विराज धेनु को प्रिय है।

और जब यह मनोमय पुरुष अपनी समनी शक्ति द्वारा मनोमय, प्राणमय और अन्नमय क्षेत्रों में विचरण करता है तब यह इन्द्रियों के विषयभोगों में फंसकर, विभिन्न इन्द्रियों के अनेक रूपों को ग्रहण करता हुआ अनेक गन्धर्व बन जाता है। यह गंधर्व नाष्ट्र, भयंकर होते हैं, योषित्कामा, स्त्रीलोलुप होते हैं, ये ही सोम को चुराने वाले हैं। अप्सराएँ असाधु हैं। गंधर्वाप्सरस असाधु हैं किन्तु अकेला गंधर्व असाधु नहीं है, वह दिव्य, ऊर्ध्व है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि अप्सराओं के चक्कर में पड़कर ही गंधर्व बुरे हुए हैं।

(ग) गंधर्व महत् बुद्धि हो सकता है जिसके समनी और उन्मनी दो प्रकार हैं। समनी रूप में वह नीचे आ जाता है, सोम रक्षक गंधर्व। उन्मनी रूप में वह हिरण्यय कोश में जा पहुँचता है, तब सोम कहलाता है।

(घ) आत्मानंद सोम से गंध उत्पन्न होती है, रूप उत्पन्न होता है। उस गंध और रूप को धारण करने वाले प्राण गंधर्व और अप्सरा कहलाते हैं।

(ङ) अप्सरसों (अप्सरा) का सम्बन्ध आप: (ज़ल) अथवा रूप (अग्नि) से है। अत: गंधर्वों का तुलना में अप्सरस: अधिक सूक्ष्म हुए।

गय (ऋ० ५.९, १०.६३)– गय प्राण मनोमय से ऊपर विज्ञानमय कोश के हैं। गायत्री इन्हीं गय प्राणों का त्राण करती है।

गर्ग (ऋ० ६.४७)– गृ-विज्ञाने। गर्ग विज्ञानमय कोश के ऋषि हैं। यह ज्योतिष के ज्ञाता हैं और श्रीकृष्ण जन्म के समय नंद को उनका भविष्य बताते हैं। विज्ञानमय कोश की विशेषता यही है कि उसमें ज्योतिष स्वयं प्रस्फुटित हो जाती है। विज्ञानमय कोश तक जिसका ध्यान पुष्ट हो गया वह गर्ग है।

गायत्री– (क) गायत्री जब तक प्रकट और विकसित नहीं होती तब तक वह स्वस्ति (सु + अस्ति, सोम की अभिव्यक्ति) को आच्छादित करने वाली (छन्द) है। पर प्रकट और विकसित होने पर वही सोम को लाकर आह्लादक-आनन्ददायक (छन्द) बन जाती है। यह शक्ति तीन स्तरों के आठ-आठ प्राणों से सम्बद्ध है। अत: उसकी प्रतीक स्वरूपा वर्णरचना में तीन पाद होते हैं और हर एक पाद में आठ अक्षर।)वे० स० जून ८३)

(ख) गयं त्रायते इति गायत्री— जो गय प्राणों का त्राण, रक्षा करती है। जो प्राण शुद्ध होकर ऊपर की ओर चलने लगते हैं, वे गय प्राण कहलाते हैं। वास्तविक गायत्री से स्थूल, सूक्ष्म और कारण देह के स्तर पर आत्मा की शक्ति निरन्तर बढ़ती चली जाती है। इसके लिए स्थूल देह के स्तर पर यजु अर्थात् क्रिया जैसे नेति, धौति आदि सहायक होंगे, सूक्ष्म देह के स्तर पर और कारण देह के स्तर पर साम या भक्ति सहायक होंगे।

गविष्टि (ऋ० ८.६१.७ आदि)– गो की इष्टि, चाह, खोज। इषु (तीर) का इष् और इष्टि का इष् दोनों का एक अर्थ है— इष् अर्थात् इच्छा, चाहना। इष् (तीर) परामात्मा की अनुग्रह शक्ति है। हम उसके योग्य हो जाएं तो वह स्वयं हमें चाहने लगता है।

गविष्ठिर (ऋ० ५.१.१२. आदि)– गो में स्थिर। जीवात्मा का वह रूप जो ज्ञान में स्थिर होकर रह गया।

गिरि (ऋ० १०.४४.८)– (क) गृ-विज्ञाने। गिरा-विज्ञानमय कोश में जो आत्मा की शक्ति है, वह गिरा है। अत: विज्ञानमय कोश गिरि है। इस कोश में रहने वाले इन्द्र को गिरिशन्त या गिरीश कहा जाता है। इसी गृ धातु से गुरु बना है। विज्ञानमय कोश का आत्मा ही मनुष्य का वास्तविक गुरु है।

(ख) आज्ञा चक्र से ऊपर की चढ़ाई वेद में सानु कहलाती है। ऊपर चढ़ने में २१ पर्वत आते हैं— ७ स्थूल प्राण, ७ सूक्ष्म प्राण और ७ अति सूक्ष्म प्राण या शुद्ध आप:।

यह २१ पर्वत ऊपर चोटी (सिर के मध्य भाग) में आकर संहित हो जाते हैं। तभी चित्तवृत्तियों का निरोध होता है।

गृह और गार्हपत्य अग्नि (ऋ० १०.११९)— गृह वह है जो ग्रहण करे। हमारा शरीर गृह है जो आँख, नाक, कान आदि के द्वारा ग्रहण करता है। लेकिन मैं गृह नहीं, गृहपति हूँ। क्या मैं वास्तव में गृह का स्वामी हूँ? हमें गार्हपत्य अग्नि चाहिए, गृह का मालिकाना हक चाहिए। पूरे व्यक्तित्व को गुणों से, ऋत से, सत्य से, सजा देना है। इसके पश्चात् आहवनीय अग्नि है। यह शरीर एक देवपुरी है। शरीर के देवों को एक चीज चाहिए— हव्य। हव्य अर्थात् पुकार। देवता जिसे पुकार रहे हैं। शरीर उसका वाहन बन सके। देवता आहवनीय अग्नि को पुकार रहे हैं। परमात्मा का साक्षात्कार होने से जो आनन्द प्राप्त होता है वह है आहवनीय अग्नि। उसी की खोज जीव कर रहा है। बाहरी चीजों में सुख क्षणभंगुर है। यह वह चीज नहीं हो सकती जिसे हमारे प्राण पुकार रहे हैं। कठिनाई यह है कि हमारे प्राण जिसे पुकार रहे हैं उसे लाने वाला हमारा व्यक्तित्व नहीं बन पाता। इस सूक्त का ऋषि है लव अर्थात्, काटने-छांटने वाला। हमारा जीवात्मा हमारे व्यक्तित्व के भीतर जब झाड-झंखाड को काटने लगता है, सुन्दर सद्गुणों के फूल लगाता है, तब जीवात्मा लव कहलाता है।

गोतम– सबसे उत्कृष्ट गो। सबसे बड़ी गो प्रकृति, परब्रह्म परमात्मा की चिन्मयी शक्ति है। वह कामदुधा कामधेनु जिसके पास है, वह गौतम है।

गोधा (अथर्व ४.३.६)— अहंकार रूपी चोर से एक गोह चिपक जाती है। वह है यश की इच्छा, यशैषणा।

गोमायु और अजमायु (ऋ० ७.१०३.६)— इन शब्दों का सामान्य रूप से अर्थ गाय की तरह शब्द और अज (बकरी) की तरह शब्द किया जाता है। परमात्मा की शक्ति गौ-गमनशील है। परमात्मा स्थिर है, शक्ति सक्रिय है। अज-अजन्मा, गतिहीन। मायु का अर्थ है शक्ति का मा-निर्माण करना। परमात्मा की शक्ति अनेकविध रूप ग्रहण करती होने पर गौ है। परमात्मा से आने वाले प्राण अजमायु हैं। यह गतिहीन परमात्मा की शाश्वत सत्ता का निर्माण करने वाले हैं। गोमायु परमात्मा की शक्ति से अभिभूत जीव के अपने प्राण हैं।

गौ (ऋ० ६.२८, १०.१६९)- (क) चित्तवृत्तियों को गायों के रूप में कल्पित किया गया है। वे गाएँ ज्ञान का उदक पीती हैं, क्रिया रूपी घास चरती हैं, भावना रूपी दूध देती हैं।

(ख) आत्मा परमात्मा से बंधने पर जो ज्ञान की शक्ति प्राप्त करता है वह गौ है। द्रष्टव्य-अश्व। पुराणों में जब गौ को दक्षिणा रूप में दिया जाता है तो इसका अर्थ है चित्तवृत्तियों को अन्तर्मुखी करके दिव्य दक्षता प्रदान करना। (वेद सविता फरवरी ८६)

ग्रावाण: (ऋ० १०.७६ आदि)– यज्ञ की भाषा में सोम पीसने-कूटने के पत्थर। वेद में गृ-विज्ञाने-अभिव्यक्ति से विज्ञान की शक्तियाँ जो हमें विज्ञान के, विज्ञानमय कोश के विषय में बताती हैं। अन्तरात्मा की आवाज।

घृत (ऋ० ४.५८)– ब्राह्मण ग्रंथों में घृत शब्द को समझने के लिए एक कथानक दिया गया है। विष्णु धनुष की प्रत्यंचा पर सिर रख कर सो रहे थे। चूहों ने प्रत्यंचा काट डाली। प्रत्यंचा कटते ही विष्णु का सिर घृं.... की ध्वनि के साथ कट कर गिर पड़ा। ध्यान करने से एक ध्वनि सुनाई पड़ती है घृं.....। उसके साथ आनन्द की वृष्टि होती है जो घृत कहलाती है।

चक्र– जब ध्यान करते समय ज्योति चक्र का रूप धारण कर लेती है। तब इच्छा, ज्ञान और क्रिया, तीनों शक्तियों का समन्वय हो जाता है।

चतुष्पात् (ऋ० ४.५१.५ आदि)– चार पैरों वाला। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय कोश को लेकर चलने वाला हिरण्यय कोश चतुष्पाद कहलाता है। दूसरी ओर, अन्नमय और प्राणमय कोशों को लेकर चलने वाला मनोमय कोश द्विपात्, दो पैरों वाला कहलाता है। साधारण भाषा में चतुष्पात् का अर्थ पशु और द्विपात् का अर्थ मनुष्य लिया जाता है।

चन्द्रमा और रोहिणी– चन्द्रमा अपनी २७ पत्नियों (दक्ष की पुत्रियों) में से रोहिणी पर अधिक आसक्त रहता था। इस पर दक्ष ने शाप दिया कि तुम यक्ष्मा से ग्रस्त हो जाओ। इसके पश्चात् देवताओं ने दक्ष की उपासना करके चन्द्रमा के लिए इतनी छूट पाई कि वह १५ दिन बढ़ेंगा और पंद्रह दिन घटेगा। अध्यात्म में, आरोहण और अवरोहण चलता रहता है। यही यक्ष्मा है।

चर्म– साधारण भाषा में त्वचा, खाल। वेद की भाषा में चरम-अंतिम सीमा। विभुओं ने चर्म में से गाय को निकाला– इसका अर्थ है कि चेतना रूपी गौ को चरम स्थान से नीचे के स्तरों पर लाया जाता है।

चातक (अथर्व० १९.३४.९ आदि)– साहित्य में प्रसिद्ध है कि चातक केवल स्वाती नक्षत्र में हुई वर्षा का पानी पीता है। चातक का अर्थ है चातन करने वाला, तन मन के सब रोगों को चाट जाने वाला। जीवात्मा जब स्वाती नक्षत्र का पानी पी लेता है तब चातक बनता है। स्वाती का अर्थ है स्व, स्वयं के अस्तित्व का अतिक्रमण करके स्व के परे की अनुभूति। अन्नमय, प्राणमय और मनोमय कोशों का अतिक्रमण कर लेने पर परे की अनुभूति हो सकती है। ध्यान में प्रकाश का दिखाई पड़ना ही नक्षत्र है।

चातुर्मास– मास अर्थात् प्रकाश। चार प्रकार के प्रकाश का अन्नमय, प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय कोशों में आना।

जगती और त्रिष्टुप् छन्द (ऋ० १.३५)— (क) सविता के आनन्दमय और विज्ञानमय कोश से मनोमय कोश में अवतरण से पूर्व पाँच कर्मेन्द्रियों एवं पाँच ज्ञानेन्द्रियों सहित अहं बुद्धि एवं मन की द्वादशी जगती की तूती बोलती थी। सविता के मनोमय कोश में अवतरण के पश्चात् मनोमय भी एक द्यौ, प्रकाशमान व्योम बन जाता है। ऐसी स्थिति में गायत्री का भर्ग कहलाने वाला सवितृ तेजस् चाहे न प्राप्त हुआ हो पर गायत्री के ऊपर स्तूपरूप में रहने वाले और त्रिष्टुप् (त्रि + स्तुप) कहे जाने वाले इन्द्रिय वीर्य या क्षत्र बल की प्राप्ति तो हो ही जाती है। (वेद सविता अगस्त ८३)।

(ख) त्रिष्टुप् से संकेत मिलता है कि मनोमय से लेकर अन्नमय कोश तक की त्रिविधता से आच्छादित जीव की चर्चा है।

जङ्गिड मणि (अथर्ववेद २.४.२ आदि) जङ्गिड— हमारे व्यक्तित्व का, शरीर का वह रूप है जो सदा चलता फिरता रहता है, जिसमें सदा गति रहती है। उसे ध्यान द्वारा स्थिर करने पर मन की जो अवस्था होगी वह जङ्गिड मणि कहलाएगी।

जमदग्नि (ऋ० ८.१०१ आदि)– (क) नियंत्रण करने वाली अग्नि (यमत् + अग्नि)। जमदग्नि में नियंत्रण है, सात्विकता है।

(ख) ऋचीक ऋषि ने गाधि (प्रतिष्ठा लिप्सा) से उसकी कन्या सत्यवती को पत्नी रूप में मांगा। गाधि ने कुशिक वंश की परम्परा में एक सहस्त्र श्वेत अश्व, जिनका एक कान काला हो, की मांग रखी। ऋचीक ने वह अश्व वरुण से प्राप्त करके उन्हें दे दिए। एक काले कान वाले अश्व का अर्थ वह भावना शक्ति हो सकता है जो दैवी त्रिलोकी (मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोश) में विचरण करने के साथ-साथ मानुषी त्रिलोकी (मनोमय, प्राणमय और अन्नमय कोश) के प्रति भी उन्मुख हो (शन्तनु के प्रसंग में सत्यवती को पालने वाला अन्नमय कोश रूपी निषाद था जो सत्यवती के पुत्र के राजा बनने के रूप में अपनी प्रतिष्ठा की मांग करता है)।

(ग) ऋचीक ऋषि ने भृगु (कर्मों को भूनने वाला) को प्रसन्न करके सत्यवती और उसकी मां के लिए पुत्र प्राप्ति हेतु दो चरु प्राप्त किए तथा सत्यवती को उदुम्बर वृक्ष का और उसकी मां को अश्वत्थ वृक्ष का आलिंगन करने का निर्देश भी दिया। लेकिन चरु भी उलट गए और वृक्षों में भी उलटफेर हो गई। फलस्वरूप गाधि का पुत्र ब्राह्मण और सत्यवती व ऋचीक का पुत्र क्षत्रिय होना चाहिए। सत्यवती के अनुरोध पर उसका पुत्र (जमदग्नि) क्षत्रिय न होकर पौत्र (परशुराम) क्षत्रिय हुआ। उदुम्बर वृक्ष वनस्पतियों का सार है। वनस्पति फल नहीं देती। अश्वत्थ सदा हिलती रहने वाली सृष्टि का प्रतीक है। जन कल्याण के लिए वृक्ष उलट जाते हैं। अब क्षत्रिय वंश रूपी मनोमय कोश ब्राह्मणत्व की ओर उन्मुख हो जाता है। ब्राह्मण वंश अब नीचे की ओर, मनोमय कोश की ओर प्रवृत्त होता है। इससे एक और क्षत्रिय विश्वामित्र का जन्म होता है जो ब्राह्मणत्व प्राप्त

करना चाहता है। दूसरी ओर जमदग्नि और परशुराम का जन्म होता है जो मनोमय कोश के प्रतीक सहस्रार्जुन, उसके पुत्रों और समस्त क्षत्रियों का विनाश कर देते हैं।

(घ) कार्तवीर्य अर्जुन के दस सहस्र (जहाँ दैवी त्रिलोकी और मनोमय त्रिलोकी दोनों साथ-साथ गति करें, मिलकर चलें) पुत्रों का नाश करने के पश्चात् परशुराम जमदग्नि को संज्ञान के रूप में पुनः उत्पन्न कर देते हैं। स्वभावतः, संज्ञान तभी उत्पन्न हो सकता है जब नीचे के कोशों की अनेकता मिट जाए।

जयद्रथ और अर्जुन– वृद्धक्षत्र के पुत्र जयद्रथ ने चक्रव्यूह में अभिमन्यु का वध कर दिया। अर्जुन ने अगले दिन सूर्यास्त से पहले जयद्रथ को मारने की प्रतिज्ञा की और किसी प्रकार सूर्यास्त से पहले जयद्रथ का सिर काट कर उसे संध्या कर रहे वृद्धक्षत्र की गोदी में गिरा दिया। जब वृद्धक्षत्र संध्या करके उठा तो वह सिर भूमि पर गिर पड़ा जिससे वृद्धक्षत्र के सिर के सौ टुकड़े हो गए क्योंकि जयद्रथ को यह वरदान था कि जो उसका सिर काट कर भूमि पर गिराएगा उसका सिर सौ टुकड़ों में बंट जाएगा। ऐसा प्रतीत होता है कि वृद्धक्षत्र उस मनोमय कोश का प्रतीक है जो भोग में लिप्त है। जब उसका पुत्र जयत्-रथ बनता है तो स्वभावत : वर्चस रूप अभिमन्यु का वध हो जाएगा। ऐसे जयद्रथ का वध सूर्य अस्त होने से पहले ही किया जा सकता है।

जयन्त (ऋ० १.९१.२१ आदि)– रामायण में जयन्त कौआ बन कर सीता को चोंच मारता है। जयन्त अर्थात् जीतने की इच्छा। जयन्त जीवात्मा का प्रतीक है जो मूल प्रकृति रूपी सीता के साथ यदि तोड़फोड़ करता है तो उसका परिणाम उसे भुगतना पड़ता है। जयन्त को दण्ड के रूप में एक आँख फोड़ने का अर्थ है कि भोग की आँख फूट गई, ज्ञान की आँख बची रही। तभी जीवात्मा रूपी जयन्त का मृत्यु भय, जिसके कारण वह ब्रह्माण्ड में चक्र लगाता हुआ भागा था, समाप्त होता है और जीव परमात्मा की शरण में जाता है।

ज्योतिरग्र प्रजा (ऋ० ७.३३.७)– ज्योति जिसके आगे-आगे चले।

जरत्कारु– (क) जरत्कारु ऋषि के पितर कुएं में उल्टे लटक रहे थे। उनका कहना था कि यदि जरत्कारु के पुत्र उत्पन्न हो तभी उनका उद्धार हो सकता है। वासुकि नाग ने अपनी बहन जरत्कारु का विवाह जरत्कारु से कर दिया जिससे पुत्र आस्तीक उत्पन्न हुआ जिसने जनमेजय के सर्पयज्ञ में सर्पों की रक्षा की। यास्क के वैदिक निघंटु नामों में जरितारः (स्तोता) और कारु दोनों स्तोतृ नाम के अंतर्गत आते हैं। वासुकि नाग की बहन मानुषी त्रिलोकी का और ऋषि जरत्कारु दैवी त्रिलोकी का प्रतीक है। जब मानुषी त्रिलोकी और दैवी त्रिलोकी दोनों में जरत्कारु का सहस्रवण होगा तभी आस्तीक पुत्र रूपी आस्तिक्य बुद्धि (परब्रह्म के अस्तित्त्व वाली) उत्पन्न होगी। ऐसा आस्तीक यज्ञ की

स्तुति करेगा, सर्पों की रक्षा करेगा) तभी मनुष्य व्यक्तित्व का पालन करने वाली पितर शक्तियों का भी उद्धार हो सकता है। (महाभारत आदिपर्व)

(ख) जरत्कारु ऋषि अपनी पत्नी की गोद में सिर रखकर सो रहे थे। संध्या समय पर पत्नी ने ऋषि को जगा दिया कि कहीं सूर्यास्त होने पर संध्या कर्म का समय न निकल जाए। इससे ऋषि रुष्ट हो गए और कहा कि जब तक वह सोए हैं, सूर्य अस्त हो ही नहीं सकता। जब तक दैवी त्रिलोकी ने मानुषी त्रिलोकी का आश्रय लिया हुआ है, ज्ञान का सूर्य अस्त नहीं हो सकता।

जाह्नवी (ऋ० १.११६.१९ आदि) (गंगा)— अवांछनीय, कठिन श्रम का नाश करने वाली (वैदिक जह धातु से)। जह्नु ऋषि गंगा का पान कर जाते हैं और फिर उसे जाह्नवी के रूप में बाहर निकालते हैं। जह्नु मन का प्रतीक है जो विज्ञानमय कोश से प्रवाहित सत्य रूपी गंगा जल का पान कर जाते हैं और फिर उसे श्रुति ज्ञान के रूप में पुन: मुक्त करते हैं।

ज्ञान मार्ग (ऋ० १०.७१)– सात्विक श्रद्धा रूपी गाय जब मानव के हृदय में आती है तो वह जप, तप, यम, नियम रूपी हरी घास चरने लगती है। दूसरे शब्दों में, बुद्धि को जब ज्ञान का प्रकाश मिलता है तब वह हृदय में प्रविष्ट होकर गांठें खोलती है। माया ऋद्धि-सिद्धि का छल-बल-लोभ दिखाकर ज्ञान के जले दीपक को बुझाना चाहती है। विषयों की हवा जब हृदय में पहुँचती है तो विज्ञान का दीपक बुझ जाता है। फिर ग्रन्थियां नहीं खुल पाती। अत: ज्ञान मार्ग कहने में कठिन, करने में कठिन, पूर्णतया कठिन है— तलवार की धार पर चलना है।

तक्मा (अथर्व० ४.९.८ आदि)— मानसिक बल जो चिन्ताओं में, राग-द्वेषादि में प्रकट होता है।

तर्पण (अथर्व० १३.३.४)– ऊपर से आने वाले शुद्ध: आप:, प्राणों से ही हम तृप्त होते हैं। उसे ही तर्पण कहते हैं। यज्ञ में वेदी के चारों ओर जो जल डाला जाता है, वह उसी अन्तरिक्ष आप: का प्रतीक है जो ऊपर से हमारे भीतर आता है।

ताम्रवर्ण– ताम्रवर्ण शब्द से ताइवान बना।

तिलोत्तमा– पुराणों की भाषा में अप्सरा का नाम।

ध्यान की स्थिति में जब आँख का तिल उच्चतम स्थिति में पहुँच जाता है, उस समय उत्पन्न सौन्दर्य भावना। तिलोत्तमा पर मोहित होकर सुन्द (हमारा मन) और उपसुन्द (हमारा शरीर) उसके सौन्दर्य को वासना द्वारा भोगना चाहते हैं। लेकिन तिलोत्तमा के आने पर सुन्द और उपसुन्द की वासनामय सौन्दर्य दृष्टि उन्हें ही नष्ट कर देती है।

तोकंतनय (ऋ० १.६४.१४ आदि)- तोक-बीजावस्था, प्रारंभिक अवस्था, तनय-तना, फैलाव।

त्रिशंकु- जीवात्मा जो अन्नमय, प्राणमय और मनोमय कोश में ही विचरण करता है, त्रिशंकु है। उसमें तीन कोशों वाली तीन कीलें (शंकु) गड़ी हैं। वह सशरीर स्वर्ग जाना चाहता है क्योंकि इन तीन कोशों में रहने वाले में शरीर का अहं विद्यमान है। उसके लिए विश्वामित्र ने जो स्वर्ग बनाया वह भी स्वर्ग जैसा नहीं बना। त्रिशंकु तब तक बीच में लटकता रहेगा जब तक आंतरिक साधना नहीं करेगा। आंतरिक साधना के बिना मोक्ष नहीं मिलता। वैश्वामित्री साधना एकाङ्गी है।

त्रिणाचिकेत अग्नि (ऋ० १०.५१)— मनोमय जीवात्मा की ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और इच्छाशक्ति की त्रयी के अदृश्य होने पर त्रिणाचिकेत अग्नि उत्पन्न होती है। (वेद सविता फरवरी ८६)

दक्ष (ऋ० १.५९.४ आदि)- दक्ष वह बल है जो मनुष्य को दक्षता प्रदान करे। पुराणों में दक्ष प्रजाओं की उत्पत्ति करने वाला प्रजापति है (दृष्टव्य-प्रजापति)। दक्ष एक यज्ञ करता है जिसमें वह शिव के अतिरिक्त सब देवताओं को आमन्त्रित करता है। शिव का अपमान होने से दक्ष की पुत्री और शिव की पत्नी सती यज्ञ में जल कर भस्म हो जाती है। शिव दक्ष का यज्ञ ध्वंस कर देते हैं। उसका ६ कृत्तिकाओं वाला सिर काट कर उस पर बकरे (अज) का सिर जोड़ कर दक्ष को पुन: जीवित करते हैं। सती का हिमालय की पुत्री गौरी के रूप में पुन: जन्म होता है। वेदों में दक्ष से अदिति उत्पन्न होती है और अदिति से दक्ष उत्पन्न होता है। अदिति अखंड बुद्धि है (दिति खण्डित बुद्धि है)। अदिति रूपी आत्मा की शक्ति जीवात्मा में आए तो जीवात्मा में दक्षता आएगी और दूसरी ओर, जीवात्मा पूर्णत: दक्ष हो तभी परमात्मा की अदिति शक्ति उसे प्राप्त होगी। अत: दक्ष अदिति का पुत्र भी है और पिता भी। यदि जीवात्मा रूपी दक्ष का यज्ञ अहंकार युक्त यज्ञ होगा, जीवात्मा (दक्ष) आत्मा के शुद्ध रूप, शिव, का निरादर करेगा तो उसका यज्ञ ध्वस्त हो जाएगा। तब अदिति या सती भी नष्ट हो जाएगी। यज्ञ को शिव से जोड़ने पर दक्ष को कृत्तिकाओं के सिरों के स्थान पर अज-अजन्मा परमेश्वर का सिर प्राप्त होता है। अहंकार का यज्ञ नष्ट होने पर ही दक्ष पुत्री सती, जो परमात्मा की शक्ति पर संदेह करती है (सीता का रूप धारण करके राम के सम्मुख जाती है), का हिमवान की पुत्री गौरी के रूप में जन्म होता है। दक्ष पुत्री सती के रूप में वह काली थी, अब हिमवान व्यक्तित्व की पुत्री के रूप में वह गौरी है, उमा है, ओंकार की शक्ति है। (द्रष्टव्य-हिमवान)

दक्षिणा (ऋ० १०.१०७)- चित्तवृत्तियों को अन्तर्मुखी करके दिव्य दक्षता प्राप्त करना।

दक्षिणायन- जैसे पृथिवी पर सूर्य के सम्बन्ध से उत्तरायण और दक्षिणायन होते हैं, ऐसे ही जीवात्मा के सम्बन्ध में भी होते हैं। जब जीवात्मा बाहर दौड़ लगा रहे मन के साथ लगकर इष्ट-आपूर्त (इष्ट-मांग, इच्छा, आपूर्ति-इच्छा का पूरा करना) दो कर्मों में लग जाता है, इन्हीं को अपना लक्ष्य समझता है तो वह मुक्ति नहीं पाता, प्रकृति के सत्, रज, तम में ही फंसा रह कर बार-बार जन्म लेता है। वह चन्द्रमा के लोक को पाता है। यह दक्षिणायन का मार्ग है। संसार में जीने की कला, सामर्थ्य, दक्षता आदि इसी मार्ग से आती है।

दधिक्रावा अश्व (ऋ० ४.४०.२ आदि)- आनन्दमय कोश के आनन्द को पयः (दुग्ध) कहते हैं। जब इस पयः या आनन्द का विज्ञानमय कोश में अवतरण होता है तो यह विकृत होकर दधि बन जाता है। वहाँ जो जीवात्मा इस दधि को धारण करता है उसे दध्यङ्ङ कहते हैं। जब यह जीवात्मा विज्ञानमय से निचले— मनोमय, प्राणमय और अन्नमय स्तरों पर दधि रूपी आनन्द बिखेरता है तो वह दधिक्रावा अश्व कहलाता है। दध्यङ्ङ ही पुराणों का दधीची ऋषि है जिसकी अस्थियों से इन्द्र ने वृत्रासुर को मारने के लिए वज्र का निर्माण किया।

दधिक्रा (ऋ० ४.३८.२ आदि)- ध्यान में दधि के समान फैला हुआ चांदनी सा प्रकाश दधि कहलाता है। वह जीवात्मा जो दधिक्रा— दधि से युक्त है, उसकी अस्थियों से वज्र बनता है। अस्थि अर्थात् अस्ति। वज्रः-वर्जनात्, अर्थात् जो अहंकार की वर्जना करता है।

दम (ऋ० १०.१६)- जब मन से दुर्भावनाओं का दमन हो जाता है तब वह व्यक्तित्व दमः (घर) कहलाता है।

दर्श (ऋ० १.२५.१८)- वाक् या मनुष्य की अभिव्यंजना शक्ति जो इन्द्रियों द्वारा बाह्य जगत से सम्पर्क करती है, दर्श है।

दशरथ- (क) प्राणमय कोश का पुरुष, जो पाँच ज्ञानेन्द्रियों (श्रवण, स्वाद, देखना, सूंघना, स्पर्श करना) तथा पाँच कर्मेन्द्रियों से युक्त है, दशरथ राजा बन सकता है यदि इन दसों को उसने श्रेष्ठ बना लिया हो। जब मनोमय कोश में विज्ञानमय की शक्ति प्रविष्ट होती है, अन्य शब्दों में, जब मनुष्य की चेतना एक इकाई बन जाती है, तब वह राम रूप पुत्र की प्राप्ति के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ करता है। रामायण में इस तथ्य को ऋष्यश्रृंग मुनि और शान्ता के विवाह की कथा द्वारा समझाया गया है। आनन्दमय कोश का आत्मा राम है, विज्ञानमय कोश का आत्मा श्रृंगी (सत् और चित् उसके दो श्रृंग हैं) है। मनोमय कोश की शान्त बुद्धि राजा की कन्या शान्ता है। उसी शान्ता का विवाह श्रृंगी ऋषि से होता है जो पुत्रेष्टि यज्ञ सम्पन्न करता है। आनन्दमय कोश का ईश्वर चार रूपों में दशरथ अर्थात् मनोमय पुरुष के यहाँ अवतरित होता है— राम स्वयं साक्षात् आनन्द रूप हैं।

भरत आत्मा की वह शक्ति है जो सबका भरण-पोषण करती है। लक्ष्मण अत्याचार के विरुद्ध बोलने वाली मन्यु शक्ति है जो राक्षसों को दबाने के लिए अच्छी है। शत्रुघ्न केवल मन्यु शक्ति ही नहीं, उसमें क्रियाशक्ति का भी समावेश है।

(ख) दशरथ मनुष्य व्यक्तित्व के मनोमय कोश का प्रतीक है। ज्ञान शक्ति रूपी कौसल्या, इच्छा शक्ति रूपी कैकेयी और क्रिया शक्ति रूपी सुमित्रा के रूप में इसकी तीन रानियाँ हैं जो क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। शूद्र शब्द व्यक्तित्व के अन्नमय कोश का प्रतीक है, वैश्य प्राणमय कोश का और क्षत्रिय मनोमय कोश का। दशरथ को कैकेयी सबसे अधिक प्रिय है क्योंकि प्राणमय कोश मनोमय और अन्नमय दोनों का भरण-पोषण करता है। इसके बिना वह जीवित नहीं रह सकते। दशरथ रूपी मनोमय कोश ऊर्ध्वमुखी होकर राम को सिंहासन पर आसीन करना चाहता है किन्तु अविकसित प्राणमयकोश रूपी कैकेयी जिसके पास मन्थर गति से चलने वाली मन्थरा दासी रूपी बुद्धि है, इसमें विद्रोह करती है। कैकेयी मन के एकांगी विकास को स्वीकार नहीं करती, अपितु चाहती है कि परब्रह्म रूपी राम का लाभ सारे व्यक्तित्व को मिले।

दिशा (अथर्व० ४.४०.१, १५.२.१ आदि)- (क) वेद और पुराणों में प्रायः दिशाओं का नाम आता है। प्राची (पूर्व) दिशा कार्य ज्ञान की दिशा है— करणीय कार्य के ज्ञान की। दक्षिण दिशा कार्य में दक्षता प्राप्त करने की दिशा है। इस दिशा का स्वामी यम है। प्रतीची (पश्चिम) दिशा सत्य-अनृत, कर्त्तव्य या कार्य विवेक की दिशा है। इस दिशा का स्वामी वरुण है। उदीची (उत्तर) दिशा सोम की दिशा, कार्य में आनन्द की दिशा है। यह सब दिशाओं का स्वामी है। ध्रुवा दिशा (नीचे की ओर) सन्मार्ग, योगमार्ग या धर्ममार्ग में ध्रुव, अटल हो जाने की दिशा है। ऊर्ध्वा (ऊपर की) दिशा ऊपर बढ़ने की, मन को ऊपर और ऊपर ले जाने की दिशा है। यह बृहत् दिशा है। अनिर्दिष्टा दिशा, जिसका कोई निर्देश नहीं किया जा सकता, अनंत दिशा, परमात्मा की ओर जाने की दिशा है।

(ख) भक्ति के संदर्भ में प्राची दिशा सारूप्य भक्ति, दक्षिण अभेद भक्ति, पश्चिम एहिक फल, उत्तर सामीप्य भक्ति, ऊर्ध्व दिशा सायुज्य भक्ति, ध्रुवा दिशा लाभ, त्याग, उपकार की दिशा है (कल्याण पत्रिका से)।

(ग) रामायण में विश्वामित्र द्वारा विभिन्न दिशाओं में तपस्या करके विभिन्न फल प्राप्त करना, महाभारत में गरुड़ का गालव को विभिन्न दिशाओं का वर्णन करना, धौम्य पुरोहित द्वारा पाण्डवों को विभिन्न दिशाओं की विशेषताओं का वर्णन पठनीय है।

दुन्दुभि (ऋ० १.२८.५ आदि)- संग्राम के आरम्भ में बजाया जाने वाला एक वाद्य। साधना में जब आंतरिक नाद भी समाप्त हो जाता है, तब वास्तविक संग्राम आरम्भ होता है।

रामायण में बालि और राम ने दुन्दुभि दैत्य का शरीर पैर से उठा कर फेंका। कुमार ने क्रौंच पर्वत की गुफा में घुसे दुन्दुभि को पर्वत सहित नष्ट कर दिया।

दुर्वासा (ऋ० ७.१.१९)- जब साधक साधना में सफलता के अत्यन्त निकट होता है, उस समय कोई पुरानी वासना प्रकट हो जाती है जो बड़े कष्ट से दूर होती है। उसी का नाम दुर्वासा ऋषि है। जैसे जब राजर्षि अम्बरीष एकादशी व्रत का समापन करने को थे तो दुर्वासा आ टपके। द्रौपदी के पात्र में जब भोजन बिल्कुल समाप्त हो गया, तब दुर्वासा आ टपके।

दृषद्वती नदी (ऋ० ३.२३.४)- अनेकधा विभक्त सत्य का नाम दृषद् है। ऐसी चेतना का नाम दृषद्वती है। (वे० स० फरवरी ८६)

देवता और देव- (क) देवता विस्तार करते हैं चेतना का, वह प्राणों को देने वाले हैं। देव ज्योति करते हैं।

(ख) मानुषी त्रिलोकी से सम्बन्ध रखने वाले देव देवासः कहलाते हैं। मानुषी त्रिलोकी में देव भी मर्त्य बन जाते हैं। जब किसी शब्द के अंत में सः जोड़ दिया जाता है तो वह वेद में मानुषी त्रिलोकी से सम्बन्धित हो जाता है।

दैवी त्रिलोकी- आनन्दमय कोश, विज्ञानमय कोश और मनोमय कोश मिलकर दैवी त्रिलोकी कहे जाते हैं। (द्र०- मानुषी त्रिलोकी)। जब मन ऊर्ध्वमुखी होकर विज्ञानमय कोश से जुड़ जाता है तो दैवी त्रिलोकी का रास्ता खुल जाता है। तब इसका नाम हो जाता है पराशक्ति। तब अद्भुत चमत्कार होते हैं। मानुषी और दैवी त्रिलोकी मिलकर एकजुट हो जाते हैं। दैवी त्रिलोकी का द्वार खोलने की शक्ति मनुष्य में ही है, पशुओं में नहीं।

द्यावा-पृथिवी (ऋ० १.१५९ आदि)- (क) बाहरी मन पृथिवी है, अन्तर्मुखी मन द्यु है। बाहरी चेतना पृथिवी है, अन्तर्मुखी चेतना द्यु है। सांस अंदर लेना द्यु है, सांस बाहर करना पृथिवी है। प्रकाश का उद्भव द्यु है, उसका फैलाव पृथिवी है। ध्यान ऊपर बढ़ने पर प्रकाश होता है। प्रकाश की अनुभूति द्यौ है। उच्चतर अवस्था से नीचे को लौटने पर चेतना निम्नतर स्तरों पर फैल कर उन्हें भी प्रभावित करती है। यह पृथन्, फैलाव पृथिवी है।

(ख) लगातार बदलती रहने वाली चेतना भूमि (भवति इति भूमि— जो लगातार बन कर मिट रहा है) है, हमारा मनोमय कोश द्यौ है, द्यौ और भूमि के बीच का अंतरिक्ष हमारा प्राणमय कोश है। द्यौ से भी ऊपर उत्तर द्यौ हमारा विज्ञानमय कोश है।

(ग) प्राणापानौ द्यावा पृथिवी। अर्थात् सांस का अंदर और बाहर जाना ही द्यावा पृथिवी है। प्राण एक शक्ति है जो देखने, सुनने आदि अनेक रूपों में प्रकट हो रही है। सारे व्यक्तित्व में प्राण का प्रसार है। स्थूल शरीर के स्तर पर आदान-प्रदान की क्रिया को

द्यावापृथिवी कहा जाता है। सूक्ष्म स्तर पर इस क्रिया को मित्रावरुणौ कहा जाता है। इससे भी उच्चस्तर पर इस क्रिया को प्राणोदानौ (प्राण + उदान) कहा जाता है।

द्यूतक्रीड़ा- द्यूत दिव् धातु से बना है जिसके क्रीड़ा करना, चमकना आदि कई अर्थ हैं। इन्द्रियों के साथ जुआ खेलना, उनका, दुरुपयोग करना द्यूत कहलाता है। अतः कहा जाता है— अक्षैः मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व (ऋ० १०.३४.१३)। दूसरी ओर शिव और पार्वती की अक्ष-क्रीड़ा है (शिव पुराण) वह दिव्य है।

द्रविण धन (अथर्व० ५.३.५)— द्रविण द्रव धातु से बना है— द्रवित कर देने वाला, पिघला देने वाला धन, अर्थात् करुणा। ''त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव''।

द्रुपद (अथर्व० ६.११५.२ आदि)- वह पद जहाँ द्रुतगति है अर्थात् मनोमय कोश। यज्ञ में द्रुपद का योपन किया जाता है अर्थात् उसे यूप (यज्ञ पशु बांधने का खूंटा) बनाया जाता है।

द्रोणाचार्य और द्रुपद (ऋ० १०.१४२.३ आदि)- द्रोणाचार्य का जन्म भरद्वाज और घृताची के संयोग से हुआ है। राजा द्रुपद द्रोण को मित्र स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। द्रोण पांडवों की वीटा को कुएं से निकाल सकता है। द्रोणाचार्य का धन पाने का सारा प्रयत्न इसलिए है कि उसके पुत्र अश्वत्थामा को दुग्ध मिल जाए। द्रोणाचार्य बृहस्पति के अंश से उत्पन्न हुए हैं। द्रोण शब्द द्रुन से बना प्रतीत होता है। द्रु— शीघ्र गति, न— नहीं, जिसमें गति न हो, वह जो स्थिर रहने का इच्छुक हो। दूसरी ओर द्रुपद का अर्थ है शीघ्र पद अर्थात् शीघ्रगति। मनोमय कोश से लेकर अन्नमय कोश तक का व्यक्तित्व चंचल है। अतः द्रुपद द्रोण का मित्र नहीं हो सकता। द्रोण की ध्वजा का चिह्न कमण्डलु है। यह विज्ञानमय कोश का प्रतीक है जहाँ सारी वृत्तियाँ एकत्र होकर गोष्ठ बना लेती हैं।

द्रोण का पुत्र अश्वत्थामा वह मन है जो स्तंभित हो गया है। मन का स्तंभन समाप्त हुआ कि द्रोणाचार्य मरा। द्रोण का जन्म भरद्वाज से होता है। भरद्वाज मन की ऊर्ध्वमुखी वृत्ति का प्रतीक है। जब भरद्वाज को हिरण्यय कोश रूपी घृत प्रदान करने वाली अप्सरा प्राप्त हो जाती है तभी द्रोण का जन्म हो सकता है। यही द्रोण विज्ञानमय और हिरण्यय कोश रूपी कूप से पाण्डवों की वीटा निकाल सकता है।

द्रौपदी- ऋग्वेद में द्रौपदी का वर्णन ऋ० १०.३३.१ में खोजा जा सकता है— प्र मा युयुज्रे प्रयुजे जनानां वहामि स्म पूषणमन्तरेण। विश्वेदेवासः अध माम् अरक्षन् दुःशासु आगात् इति घोष आसीत्॥

गर्ग संहिता के अनुसार द्रौपदी शची वाक् है जो पाण्डवों का वरण करती है। वही लक्ष्मी है। राजा पाण्डु पूषा देवता, जो पशुओं का पालक माना जाता हैं, जो हिरण्यय कोश से पालन शक्ति लाकर अन्नमय कोश में वितरण करता है, का अवतार है। शची रूपी द्रौपदी के पुत्र विश्वेदेवासः का अवतार है। ऐसी द्रौपदी को जनों के बीच, सभा के

बीच खींच कर लाया जा रहा है। द्रौपदी के वस्त्र राग और विराग हैं जिन्हें दु:शासन खींचता है।

द्वैपायन व्यास– द्वैपायन अर्थात् द्वीप में रहने वाला। हर मनुष्य की देह एक द्वीप है। हरेक जीवात्मा द्वैपायन है। अलगाव की प्रवृत्ति, आत्मकेंद्रित व्यक्तित्व द्वैपायन है। जब द्वैपायन व्यक्तित्व अपना विस्तार कर लेता है जिससे सारा समाज, राष्ट्र लाभान्वित होने लगता है तो वह द्वैपायन व्यास कहलाता है।

धन्वन्तरि (अथर्व० २.३)– धन्वन रेगिस्तान को कहते हैं। रेगिस्तान से पार कराने वाला धन्वन्तरि कहलाएगा। हमारा जीवात्मा सोम, आप:, औषधि और गा: से सम्पन्न होने पर धन्वन्तरि कहलाएगा।

धूम (धुआं)— ध्यान करते समय जब ज्ञानाग्नि का प्रज्वलन होता है तो वह प्राणमय और मनोमय कोश में अस्पष्ट, ज्योतिविहीन सा होता है, धुंआ सा दिखाई देता है।

ध्रुव-उत्तानपाद (ऋ० १०.१७३, अथर्व० ६.८७)– ध्रुव की कथा भागवत पुराण में देखी जा सकती है। स्वायम्भुव मनु का पुत्र उत्तानपाद राजा है। उत्तानपाद की दो रानियाँ सुरुचि और सुनीति हैं। सुरुचि का पुत्र उत्तम है और सुनीति का पुत्र ध्रुव है। राजा का सुरुचि पर विशेष प्रेम होने के कारण ध्रुव उत्तानपाद का प्रेम पाने में असफल रहता है और तपस्या के लिए चला जाता है। स्वायम्भुव मनु का अर्थ है स्वयम् उत्पन्न, अज, परमात्मा। उत्तानपाद का अर्थ है जिसकी वृत्तियाँ अब ऊर्ध्वमुखी हो रही हैं, उसने ऊपर को कदम रखना आरम्भ किया है। उसकी सुरुचि पत्नी मन के अनुकूल इच्छा के अनुसार चलने वाली, माया, भौतिकवाद है जबकि पत्नी सुनीति सुन्दर मार्ग की ओर ले जाने वाली है। सुरुचि का फल है उत्तम-उत् तम, ऊंचा अंधकार, प्रगाढ़ अंधकार। जो भोग की जीवन पद्धति की ओर ले जाता है। सुनीति का फल ध्रुव, निश्चयात्मक बुद्धि, आनन्द, योगजीवन पद्धति है।

जब ध्रुव को राज्य मिल गया, उसके पश्चात् उत्तम वन में शिकार खेलने जाता है तो वहाँ यक्ष ने उन्हें मार डाला। यक्ष अर्थात् ब्राह्मी स्थिति में पड़ा व्यक्ति भोग प्रवृत्ति (उत्तम) को नष्ट कर देता है।

न-चिकेता (ऋ० १०.५१.४)– नचिकेता का अर्थ है न दिखाई देने वाला, अदृश्य। स्थूल भोगों से विरत होकर जब मन अंतर्मुखी होता है तो इन्द्रिय रूपी देवों के लिए अदृश्य हो जाता है, अत: नचिकेता बन जाता है। मन रूपी नचिकेता ही भोगों से विरत जीवात्मा का वह पुत्र है जो यम के पास पहुँचने की सामर्थ्य रखता है। (वे० स० फरवरी ८६)।

केतु (चिह्न, ध्वजा, ज्ञान) शब्द बहुत गूढार्थक है। कापालि शास्त्री ने इसका अर्थ अंतर्बोध के कारण उत्पन्न प्रज्ञाचक्षु किया है।

नर्मदा– वासुकि नाग (वासनाओं का प्रतीक) ने अपनी बहन नर्मदा का विवाह पुरुकुत्स (जिसकी बहुत सी कुत्साएं हैं) से कर दिया। नर्मदा का अर्थ है निचले स्तर का आनन्द देने वाली नदी। कार्तवीर्य अर्जुन की नगरी माहिष्मती पुरी नर्मदा के तट पर ही है। कार्तवीर्य अर्जुन ने अपनी बाहुओं से नर्मदा की धारा को उल्टा बहाया तो रावण का शिविर जलमग्न हो गया। धारा को उल्टा बहाने से तात्पर्य बहिर्मुखी वृत्ति को अंतर्मुखी करने से है। इससे स्वभावतः रावण का शिविर जलमग्न हो जाएगा। इसके पश्चात् रावण ने कार्तवीर्य से युद्ध किया। कार्तवीर्य ने रावण को कैद कर लिया। तब रावण के पितामह पुलस्त्यान (पुरस्त्यान, पुर का स्त्यान, फैलाव करने वाला) ने प्रकट होकर कार्तवीर्य से रावण को मुक्त करा दिया। पुरस्त्यान, पुर का फैलाव ठीक नहीं है। अगस्त्यान, अग का फैलाव होना चाहिए। पुलस्त्य के प्रकट होने पर रावण मुक्त हो ही जाएगा।

नल-दमयन्ती– नल का शाब्दिक अर्थ है बांधना। यह जीवात्मा इस शरीर में माया से बंधा है। सामान्य जीवन में नल शब्द का बहुत उपयोग होता है जैसे नाडा, नल (पानी देने वाला), नाला (हाथ में बांधने का सूत्र), अंग्रेजी का नॉट आदि। नल दमयन्ती की कथा संक्षेप में इस प्रकार है– नल के हाथ सफेद हंस लग जाते हैं जो बंधन मुक्त होने के उपकार के बदले नल को दमयन्ती से मिला देते हैं। नल दमयन्ती का स्वयंवर में वरण करता है। स्वयंवर में वरण करने से पूर्व देवता नल को आठ वरदान देते हैं जो महत्त्वपूर्ण हैं। उनमें से एक है– तुम जहाँ चाहोगे जल उपस्थित हो जाएगा। (इसी कारण पानी देने वाले यंत्र की नल संज्ञा है)। नल द्वारा दमयन्ती का वरण करने से कलि रुष्ट हो जाता है और वह जुए के पासों (अक्ष) में प्रवेश कर जाता है। नल अपना सब कुछ द्यूत में हारकर वन में चला जाता है। वन में उसका वस्त्र पक्षी लेकर उड़ जाते हैं और उड़ते हुए कहते हैं कि हम वही द्यूत के पासे हैं। तब नल दमयन्ती का आधा वस्त्र ओढ़ लेता है। पूरी कथा के लिए महाभारत का वनपर्व देखना चाहिए।

बंधे हुए जीवात्मा को भी कभी-कभी श्वेत हंस रूपी सद्विचार आते हैं जो उसे शम-दम रूपी दमयन्ती से मिला देते हैं। इसका लाभ उसे तत्काल यह होता है कि परमात्मा रूपी लोकपालों से आठ वर प्राप्त हो जाते हैं जिनका वह चाहे तो उपयोग कर सकता है। अक्ष-क्रीड़ा का तात्पर्य इन्द्रियों के दुरुपयोग से है। अक्षों में कलि प्रविष्ट होकर नल का सर्वस्व हरण करता जा रहा है। नल रूपी साधक अपने वासना रूपी वस्त्र से मनरूपी शकुन को पकड़ कर खा जाना चाहता है। दूसरे शब्दों में, मन को अपने वश में करने के लिए अपनी एकमात्र वासना की बलि चढ़ा देता है। तब मन रूपी शकुन

ऊर्ध्वमुखी हो जाते हैं। तब नल दमयन्ती का आधा वस्त्र ओढ़ लेता है। इसका अर्थ है कि साधक अभी भी वासनाओं से पूर्णतः मुक्त नहीं हुआ है।

नाभि– तीन नाभियां हैं– स्थूल शरीर की नाभि सिर में है। सूक्ष्म शरीर की नाभि मन है। कारण शरीर की नाभि हिरण्यय कोश है।

नाम-रूप (ऋ० ५.४३.१०)– बाहरी स्थूल क्षेत्र में, बाहर की ओर दौड़ने वाला मन रूप है। ध्यान में आँख बंद करने पर जो ज्योति की विविधताएँ दिखाई देती हैं वे नाम हैं। नाम का अर्थ है नमन, अर्थात् मन को नमः करने, अंतर्मुखी करने पर जो सृष्टि होती है वह।

नृग– राजा नृग ने एक ब्राह्मण को दान की हुई गौ पुनः दूसरे ब्राह्मण को दान कर दी। इस पर दूसरे ब्राह्मण ने नृग को शाप दे दिया कि तुम कूप में कृकलास (गिरगिट) बन जाओ। कृष्ण तुम्हारा उद्धार करेंगे। (भागवत पुराण)

नृग-नृन् गमयति– जो नर प्राणों को ले जाता है, हमारा आत्मा। इस नृग ने पहले अपनी गौ (निघण्टु के वाक् नाम के अंतर्गत), अपनी अभिव्यक्ति दैवी त्रिलोकी रूपी ब्राह्मण को दान कर रखी थी। अब नृग ने जब अपनी वाक् शक्ति का दान इन्द्रियों रूपी ब्राह्मण को कर दिया तो यह आत्मा इस व्यक्तित्व के कूप में पड़ा है। यह गिरगिट की तरह रंग बदलता है। कृकल प्राण वह प्राण है जो कभी यहाँ तो कभी वहाँ, कभी छींक के रूप में तो कभी जम्हाई के रूप में प्रकट होते हैं। ऐसे नृग का उद्धार कृष्ण ही कर सकते हैं।

पतंग– आत्मा की वह शक्ति जो नीचे की ओर गति करती है। इसके विपरीत द्रष्टव्यः सुपर्ण या श्येन।

परावत (ऋ० ३.४०.८)– वह व्यक्तित्व जिसमें अहंकार की प्रधानता होती है, अर्वावत कहलाता है। सामान्य कहा जाने वाला जीवन यही है। लेकिन इस व्यक्तित्व में भी परावत छिपा है। परावत आत्मा की वह शक्ति है जो सूक्ष्मतम है। वाक् की पराशक्ति से युक्त व्यक्तित्व परावत कहलाता है। द्रष्टव्य-अर्वा।

परीक्षित (ऋ० १०.६५.८ आदि)– परीक्षित राजा शिकार खेलते समय भूख-प्यास से पीड़ित हो शमीक ऋषि के पास पहुँच गया। और शमीक से पानी मांगा। उत्तर न मिलने पर उसने शमीक ऋषि के गले में मरा हुआ सर्प डाल दिया। उस समय राजा के मुकुट में कलि का वास था। शमीक ऋषि के पुत्र श्रृङ्गी ने राजा को तक्षक द्वारा डसे जाने का शाप दिया।

दुर्भावना रूपी मृगों को अपना शिकार बनाते-बनाते राजा को शमीक ऋषि-पूर्णतया शांत अवस्था प्राप्त हो जाती है। लेकिन अभी उसमें कलि रूपी आसुरी वृत्ति विद्यमान है और वह अपनी शांत अवस्था का दुरुपयोग आसुरी शक्तियों के लिए पानी भरने में करना

चाहता है जिसका शमीक ऋषि से कोई अनुकूल उत्तर प्राप्त नहीं हो सकता। मरा सर्प गले में डालने का अर्थ श्वास-प्रश्वास पर नियंत्रण पा लेने से हो सकता है। ऐसा होने के पश्चात् ही तक्षक नाग जो परब्रह्म रूपी इन्द्र का सखा है, परीक्षित को डस कर उसका उपकार कर सकता है। कश्यप में यह शक्ति है कि वह तक्षक द्वारा डसे व्यक्ति को (समाधि प्राप्त साधक को) जीवित कर सकता है, व्युत्थान कर सकता है। कश्यप को धन देकर संतुष्ट करना होता है। कश्यप के लिए द्रष्टव्य-कश्यप।

परुष्णी नदी (अथर्ववेद ६.१२.३)— ऋग्वेद १०-७५ में २१ नदियों का वर्णन आता है। यह आध्यात्मिक नदियाँ हैं। मन, बुद्धि और पाँच कर्मेन्द्रियों से ७ नदियाँ बनती हैं। मन, बुद्धि के साथ ५ ज्ञानेन्द्रियाँ जुड़ने से नदियों का दूसरा सप्तक बनता है। मन, बुद्धि के साथ ५ प्राण जुड़ने से नदियों का तीसरा सप्तक बनता है। नाद से नदी उत्पन्न होती है। आत्मा की वह शक्ति जिसमें सब नदियों का मूल है, परुष्णी नदी कहलाती है।

पर्जन्य (ऋ० ७.१०१ आदि)- साधारण भाषा में मेघ का नाम। पर्जन्य-पर + जन्य, जो पर अर्थात् व्यक्तित्व के उत्तर पक्ष, गहराई से पैदा होता है। पर्जन्य वृष्टि होने पर तपस्वी का मन प्रसन्न हो जाता है, चेहरे पर तेज, आंखों में दीप्ति, वाणी में ओज आ जाता है। पर्जन्य वृष्टिमान ही घनश्याम है।

पशु (पुरुष सूक्त, ऋ० १०.९०)— पशु धातु के दो अर्थ हैं— पाशबद्ध होना और दर्शन करना (पश्य)। दोनों अर्थ परस्पर सम्बद्ध हैं। जब मन व इन्द्रियों की दृष्टि बहिर्मुखी होती है तब वे बाह्य विषयों से आबद्ध हो जाते हैं। जब मन और इन्द्रियाँ अंदर की ओर देखती हैं तो आन्तरिक विषयों से आबद्ध हो जाती हैं। आन्तरिक विषय स्थिर चित्त है। स्थिर चित्त वायु है। वायु को शान्ति देने वाला और सबको जोड़ने वाला (योता) कहा जाता है। शरीर रूपी ग्राम में रहने वाले ग्राम्य पशु (प्राण) चंचल मन रूपी अरण्य की चंचल चित्तवृत्तियों के रूप में आरण्य पशु बन जाते हैं। उनकी वायु से सम्बद्ध करके वायव्य पशु बनाना होता है। वायु साफ करने वाली एक छलनी जैसे है। स्थिर चित्त वायु ही है। (वे० स० सितम्बर ८१)।

पाश- तीन तरह के बंधन होते हैं— उत्तम, मध्यम और अधम। स्थूल शरीर में अधम श्रेणी का बंधन होता है जैसे आसन न लगना। कारण शरीर में ज्योतिर्मय बंधन होता है। वरुण देवता की उपासना से पाश खुल सकते हैं।

पितर- ब्राह्मण ग्रंथों में एक आख्यान है। यम स्वर्ग में था। पितरों ने यम से प्रार्थना की कि तुम मृत्यु लोक में आ जाओ तो हम तुम्हारी सेवा करेंगे। हम प्रजा तुम राजा। पितर हमारा सहज वृत्तियां, हमारा पालन करने वाली वृत्तियाँ जैसे भूख, प्यास, भय, निद्रा आदि हैं। पितर शक्तियों के लिए एक राजा की आवश्यकता है। राजा है यम-यम, नियम, संयम। हमारी सहज वृत्तियों का संयम हो। द्र० अग्नि

पुरूरवा (ऋ० १०.९५)– अनेक इच्छाएं, भावनाएँ पुरूरवा कहलाएंगी। पुरूरवा का पुत्र आयु है। यह आयु जब परावाक् (परावाक् जो उसकी माता है), से मिलता है, उसमें धीरे-धीरे बढ़ता है, उसी में सांस लेने लगता है, तब उसे परब्रह्म का साक्षात्कार होता है। द्रष्टव्य-उर्वशी।

पुरोडाश (ऋ० ३.५२.३)– (क) यज्ञ में रोटी सी बनाकर उसके टुकड़े करके देवताओं को हवि दी जाती है। यह रोटी पुरोडाश कहलाती है। यह मनुष्य के मस्तिष्क का प्रतीक है। हमारे मस्तिष्क के तीन मुख्य टुकड़े हैं जो विभिन्न क्रियाओं में काम करते हैं। मस्तिष्क का दायां और बायां भाग ज्ञान और भावना शक्ति के केन्द्र हैं जबकि पिछला भाग क्रिया शक्ति का। यों तो यह टुकड़े अलग-अलग हैं, लेकिन एक नष्ट होने पर दूसरा उसका काम संभाल लेता है। इच्छा, ज्ञान और क्रिया, इन तीन शक्तियों से ही पूरा व्यक्तित्व बनता है।

(ख) दक्ष प्रजापति के यज्ञ में पूषा देवता पुरोडाश खा रहा था। शिव को देखकर वह हँसा। शिव ने उसके दांत तोड़ दिए। तब से पूषा बिना दांत वाला हो गया। पूषा पशुओं का पालने वाला है। वह हिरण्यय कोश से शक्ति प्राप्त करके उसे निचले स्तरों पर वितरित करता है। लेकिन यदि यज्ञ शिव को समर्पित न हो तो पूषा मस्तिष्क रूपी पुरोडाश को हानि पहुँचा सकता है।

पुष्प– देवपूजा के उपचारों में पुष्प चढ़ाने का बड़ा महत्त्व है। जब सब प्राण पुष्प की पंखुड़ियों की तरह से मिल कर एक हो जाते हैं तो वह पुष्प कहलाते हैं। पूजा के पुष्प इन प्राणों का प्रतीक हैं। ध्यानावस्था में प्राण जब विविध रूप धारण करते हैं तो यह प्राण विद्युत के फूल बनते हैं।

पृश्नि (ऋ० ६.४८ आदि)– जीवात्मा जब तक पाप-पुण्य के या किसी भी द्वंद में पड़ा रहता है तब तक पृश्नि, चितकबरा, काला सफेद होता है। मनोमय कोश में ऐसी स्थिति होती है। जब यह परम तत्त्व को जान लेता है तो द्वन्द्वातीत हो जाता है। द्र० वाक्

प्रजापति– प्रजाओं को उत्पन्न करने वाला। इच्छाएं-भावनाएं, विचार आदि सब प्रजाएँ हैं। इनको उत्पन्न करने वाला जीवात्मा है।

प्रह्लाद (अथर्व० ८.१३.२.)– (क) हृदय की प्रकृष्ट अवस्था, आनन्द की वृत्ति प्रह्लाद कहलाती है। प्रह्लाद हिरण्यकशिपु (हिरण्य, सोने की चटाई) से उत्पन्न होता है। पिता और चाचा हिरण्याक्ष (जिसकी आँख सोने पर रहती है) दोनों उसे पालते हैं, फिर उसके शत्रु हो जाते हैं। पिता और चाचा मन की दो वृत्तियाँ हैं। जब ध्यान करते हैं तो एक स्थिति में कण-कण स्वर्णमय हो जाता है। उससे पहले हिरण्य बिन्दु की स्थिति होती है। यदि हिरण्यधारा में ही फंसे रह गए तो प्रह्लाद, भक्ति से विह्वल मन समाप्त हो जाएगा। स्वर्ण को ही सब कुछ समझ लेना भक्ति में बाधक है।

(ख) प्रह्लाद की बुआ होलिका प्रह्लाद को जलाने का प्रयत्न करती है होलिका अर्थात् हुलहुली, साधारण हंसी। जब तक साधक को हुलहुली से प्रेम है तब तक भक्ति रूपी प्रह्लाद सुरक्षित नहीं है। प्रह्लाद का पुत्र विरोचन, अर्थात् मन भक्ति से भर गया तो भिन्न-भिन्न प्रकार की रुचि उत्पन्न होती है। भक्त भी अपनी भक्ति के अहंकार से विचलित हो जाता है। यह अहंकार रूप विरोचन है। यह ब्राह्मी शक्ति से माया दुहता है (भागवत पुराण, पृथु चरित्र)।

(ग) प्रह्लाद समाधि से व्युत्थान की स्थिति है।

(घ) अहंकार रूपी हिरण्यकशिपु कभी-कभी बिना उद्देश्य तपस्या करने चलता है और उसके कान में नारद परमात्मा का नाम डाल देते हैं जिससे भक्ति रूपी प्रह्लाद का जन्म हो जाता है। यदि प्रह्लाद को विज्ञानमय कोश रूपी समुद्र में डाल दिया जाए तो फिर वह मरता नहीं। हिरण्यकशिपु रूपी अहंकार को नृसिंह वक्ष फाड़कर विस्तारित, रूपांतरित कर देते हैं तो भक्ति प्रस्फुटित हो पड़ती है। हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापि हितम्मुखम्...।

प्राण (अथर्व० ११.४)– शरीर में पाँच स्थूल प्राण और ५ सूक्ष्म प्राण कहे जाते हैं। स्थूल प्राण हैं– प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान। सूक्ष्म प्राण हैं– नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय। योग की भाषा में सूक्ष्म प्राणों की व्यजना साधारण पाए जाने वाले वर्णन से भिन्न है। नाग प्राण सारे शरीर के अंगों से ऊपर की ओर चल कर सिर में पहुंचते हैं और सिर को ढँक सा लेते हैं (विष्णु के ऊपर शेषनाग का फन)। यह अंत में कुंडलिनी शक्ति को जाग्रत कर देते हैं। कूर्म प्राण ब्रह्मज्ञान की वृद्धि होने पर कछुए की गति से धीरे-धीरे सिर के अगले भाग में गति करते हैं। नाग और कूर्म प्राणों में प्रतिस्पर्धा रहती है जिसके लिए सर्वविदित खरगोश और कछुए की कहानी गढ़ी गई है। कृकल के लिए द्रष्टव्य-नृग। कभी-कभी ध्यान में फुरफुरी सी होना (वेपन) कृकल प्राणों का काम है। शरीर के किसी भी अंग का फड़कना स्थानीय प्राण की अभिव्यक्ति है जिसे कृकल प्राण कहते हैं। जब कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ सब मिलकर मन में लीन हो जाते हैं, सब इन्द्रियाँ जो देव हैं, अपनी शक्ति मन को दे देती हैं तो इस अवस्था का मन देवदत्त कहलाता है। अतः देवों का दिया हुआ देवदत्त। यह मन का सूक्ष्मतम प्राण है। देवदत्त प्राणों से हमारी इन्द्रियों में अधिक ज्योति, अधिक स्फूर्ति आ जाती है जैसे अच्छा देखना, नाद का सुनना आदि।

मन का आत्मा के शुद्ध रूप में लीन हो जाना, समाधि की अवस्था, धनंजय-धन को जीतने वाला कहलाता है। धनंजय प्राणों का विकास होने पर अन्दर ज्योति मालूम पड़ती है, ब्रह्म का साक्षात्कार होता है, ब्रह्म की अग्नि धीरे-धीरे बढ़ती जाती है। जातवेदस अग्नि इस प्राण की वृद्धि करता है। महाभारत में अर्जुन के लिए देवदत्त और धनंजय सम्बोधन ध्यान देने योग्य हैं। पार्थ, पृथिवी पुत्र, जीवात्मा का स्थूलतम रूप

अर्जुन जब धनुर्धर हो जाता है, साधना और संयम का धनुष चलाना सीख लेता है तब वह धनंजय कहलाता है।

प्रात: सवन– अन्नमय से आनन्दमय स्तर तक आरोहण प्रात: सवन है।

(वे० स० मार्च ८४)। द्रष्टव्य-सवन।

बन्धु– (क) शरीर और प्राणमय कोश बन्धु हैं क्योंकि प्राणमय कोश अन्नमय कोश से बंधा हुआ है। यदि मनोमय कोश सु अर्थात् ब्रह्म ज्योति से जुड़ जाए तब यह बंधु से सुबंधु बन जाता है। यही विज्ञानमय कोश में जाने पर श्रुतबन्धु हो जाता है और आनन्दमय में जाने पर विप्रबंधु हो जाता है।

(ख) अगस्त्य-पत्नी लोपामुद्रा (द्रष्टव्य--लोपामुद्रा) के चार पुत्र हैं— बंधु (प्राणमय कोश), सुबंधु (मनोमय कोश), श्रुतबंधु (आध्यात्मिक ज्ञान से सम्पन्न) और विप्रबंधु (विप्र नामक आनन्द वृत्ति में लीन मन)। ये चारों नारायण की सन्तान हैं। नारायण का एक नाम गोपा (रक्षक) है, अत: इन्हें गोपायन कहा जाता है। नर (व्यक्ति) की विविध शक्तियाँ जिस नारायणी शक्ति में लीन होती हैं उसका नाम लोपा है। वही नारायण की पत्नी लोपा है। अत: इन चारों को लोपायन भी कहा जाता है। राजा असमाति के सत्र में (द्रष्टव्य-खाण्डव वन) उसके पुरोहित किलाताकुली सुबंधु के प्राण का अपरहण करके आहुति की अन्त: परिधि में रख देते हैं। ऋग्वेद १०.५७ में शेष तीन भाई सुबंधु के प्राणों को वापस लाने का प्रयास करते हैं और अपने प्रयास में सफल होते हैं। यदि अन्नमय से सम्बद्ध बंधु, विज्ञानमय कोश से सम्बद्ध श्रुतबंधु और आनन्दमयकोश की विपन्यया बुद्धि से सम्बद्ध विप्रबंधु एक होकर मानव व्यक्तित्व को अग्नि और इन्द्र के सहयोग से अक्षुण्ण रख लेते हैं तो न केवल सुबंधु (मन) ही असमाति राजा रूपी अहंकार और उसके राग द्वेष से सुरक्षित बच जाता है, अपितु अहंकार का भी कायापलट हो जाता है। वह नारायणी शक्ति रूपी लोपा की प्रेरणा से चारों बंधुओं को वैराग्य-भक्ति रूपी रोहित अश्वों से भी युक्त कर लेता है। (वे० स० नव० ८२)

बर्हि (अथर्व० ७.१०४)– (क) यज्ञ में वेदी को बर्हि (घास) से आच्छादित किया जाता है। बर्हि बृह धातु से बना है जिसका अर्थ है वर्धन करना। यह वर्धन अन्नमय से लेकर ऊपर के सभी स्तरों पर होता है। वर्धन प्रक्रिया को दिखाने के लिए ही यज्ञ में वेदी का बर्हि द्वारा आच्छादन किया जाता है।

(ख) प्राचीनबर्हि पुराणों का एक राजा है जिसने यज्ञ करते-करते सारी पृथिवी को बर्हि से आच्छादित कर दिया था। प्राचीन का अर्थ है विज्ञानमय, आनन्दमय आदि उच्चतर कोश। इसके विपरीत, अर्वाचीन का अर्थ होगा मनोमय आदि कोश। प्रचीन गुरु है, अर्वाचीन शिष्य है।

बलराम- जो हल (मन) द्वारा शक्ति के ऊर्ध्व कर्षण में सहायता करता है वह बलराम है। वह रेवती को हल की नोक से खींचकर उत्तर द्यौ, आनन्दमय कोश में स्थपित कर देते हैं। बलराम शेषनाग का अवतार हैं। वह कृष्ण की अपेक्षा अधिक भौतिकवादी शक्ति हैं। इसी कारण कहा गया है कि उन्हें अक्ष विद्या आती नहीं है, लेकिन फिर भी वह रुक्मी के साथ खेलने में रुचि रखते हैं। दुर्योधन के पक्षधर भी हैं।

बलास: (अथर्व० ४.९.८ आदि)- वह शारीरिक बल जो दूसरों को मिटाने में, लड़ने में प्रकट होता है।

बारहसिंगा- हमारा जीवात्मा भी बारहसिंगा है— ५ ज्ञानेन्द्रियां, ५ कर्मेन्द्रियां, १ अहंकार, १ मन = १२। इन बारहों पर अहंकार नहीं करना है।

ब्राह्मणजाया- वेद में आत्मा की आवाज का इतर नाम ब्राह्मणजाया है, ब्राह्मणपत्नी या ब्रह्मगवि है।

ब्रध्नस्य विष्टप (ऋ० ८.६९.७)- ब्रध्न अर्थात् बढ़ने वाले, विष्टप अर्थात् छत, अनंत, पराकाष्ठा। बढ़ने वाली वस्तु प्राण है। इस प्राण की छत, वर्धन की पराकाष्ठा, अनंत ब्रह्म, उदान प्राण है (द्रष्टव्य-उदान)। ब्रध्नस्य विष्टप सहस्रार चक्र है। यह ब्रध्न लोक है। इसी से प्रजापति ने ३३ लोकों (मेरुदंड के ३३ केन्द्र) का निर्माण किया है। ब्रह्म शब्द का अर्थ भी बढ़ने वाला, विकासमान है लेकिन यह अनंत तक विस्तार करने वाला नहीं है, सीमित ब्रह्म है। जैसे बच्चा भी ब्रह्म है, विकासमान है, लेकिन एक सीमा पर आकर वर्धन रुक जाता है। संसार ब्रह्म हो सकता है, ब्रध्नस्य विष्टप नहीं।

ब्रह्मा- ब्रह्म का अर्थ होता है वर्धन करने वाला, विकासमान। ब्रह्मा सृष्टि करता है। यह जीवात्मा जब परमात्मा के साक्षात्कार से नवनिर्माण करने में समर्थ होता है तब ब्रह्मा कहलाता है।

भक्ति (अथर्व० ६.७९.३)- भक्ति स्त्रीलिंग है और माया भी स्त्रीलिंग है। ज्ञानी पुरुष कभी-कभी माया रूपी स्त्री से मोहित हो जाते हैं किन्तु भक्ति तो स्वयं नारी है और नारी नारी के रूप पर मोहित नहीं हो सकती, अत: भक्ति कभी माया के वशीभूत नहीं होती। ईश्वर को भक्ति प्यारी है, माया तो नर्तकी है। भक्ति पर भगवान की कृपा है, यह जानते हुए माया भी उससे डरती है। ऐसा सोचकर ज्ञानी मुनि भी भक्ति की याचना करते रहते हैं। द्रष्टव्य-ज्ञानमार्ग।

भग (अथर्व० ६.८२ आदि)- भग से भाग्य बना है, भगवान बना है। भग देवता कृषि, खेती करता है। खेती के लिए बोए जाने वाले पूर्व जन्म के कर्म हैं। जो कुछ खेती द्वारा प्राप्त हो रहा है वही इस जन्म में मिल रहा है। दक्ष के यज्ञ में शिव ने भग देवता की आंख फोड़ दी थी। तब से भग मित्र की आंखों से देखते हैं। महाभारत के धृतराष्ट्र को

भग देवता का अंश बताया गया है क्योंकि अंधे धृतराष्ट्र संजय के विराट चक्षुओं से देखते हैं।

भरद्वाज ऋषि (ऋ० मण्डल ६)- (क) ज्ञान-शक्ति और क्रिया-शक्ति, इन दोनों से उत्पन्न भावना शक्ति का भरण करने वाला ऋषि भरद्वाज कहलाता है। इनका आश्रय प्रयाग में है। जीवन में यम-नियम-संयम की धारा यमुना नदी है। इसके फलस्वरूप ज्ञानशक्ति रूपी गंगा प्रवाहित होती है। इसके साथ एक क्रिया शक्ति की नदी बहती है जिसे सरस्वती कहते हैं। इनका संगम प्रयाग में प्रकृष्ट याग, यज्ञ जहाँ हो, वहाँ है।

(ख) वह तत्त्व जो वाज नामक आध्यात्मिक बल का भरण-पोषण करता है, भरद्वाज ऋषि कहलाता है। वाज = वा + अज। ऐसा बल जो आनन्दमय कोश में अज अर्थात् अ-जात, पर विज्ञानमय कोश में जायमान हो कर मनोमय से अन्नमय तक जात (जन्मा हुआ) माना जाता है।

(ग) भरद्वाज के पुत्र यवक्रीत को बिना पढ़े वेदों का ज्ञान होने से वह अहंकार से युक्त हो जाता है। फिर वह भरद्वाज के मित्र रैभ्य मुनि के पुत्र परावसु की पत्नी से बलात्कार करता है। इससे रैभ्य मुनि के शाप से उसकी मृत्यु हो जाती है। तब भरद्वाज के शाप के कारण परावसु वन में रैभ्य को मृग समझ कर मार देता है। इसके पश्चात् परावसु राजा का यज्ञ कराने में समर्थ होने के कारण राजा के यज्ञ में चला जाता है और उसका छोटा भाई अर्वावसु उसकी ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त करता है। प्रायश्चित्त करके जब अर्वावसु यज्ञ में पहुँचता है तो परावसु उस पर ब्रह्महत्या का दोष लगाकर यज्ञ से निकलवा देता है। फिर अर्वावसु तपस्या करके सबको जीवित करा लेता है। (महाभारत वनपर्व)

यवक्रीत विज्ञानमय कोश है जहाँ स्थिति यव जैसी है जो एक होते हुए भी दो जैसा दिखाई देता है। विज्ञानमय कोश में वेदों का ज्ञान बिना पढ़े ही हो सकता है। परावसु उच्च धन, पराशक्ति का प्रतीक है जिसके साथ समागम करने से यवक्रीत की दो जैसी स्थिति समाप्त हो जाती है। यह पराशक्ति अर्वावसु रूपी मानुषी त्रिलोकी को तप करने के लिए बाध्य कर सकती है। ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त मानुषी त्रिलोकी ही कर सकती है।

(घ) देवी-भागवत पुराण के तीसरे स्कंध में राजा ध्रुवसंधि की कथा आती है। राजा ध्रुवसंधि के दो रानियाँ थी जिनका नाम लीलावती और मनोरमा था। लीलावती के पिता का नाम युधजित् था जो उज्ञयिनी नगरी का राजा था और लीलावती का पुत्र शत्रुजित् था। मनोरमा के पिता का नाम वीरसेन था जो कलिंग का राजा था और मनोरमा के पुत्र का नाम सुदर्शन था। राजा ध्रुवसंधि को वन में शिकार खेलते समय सिंह ने मार डाला। इसके पश्चात् अपने-अपने दौहित्र को राजा बनाने के लिए युधाजित् और वीरसेन में संग्राम छिड़ गया। इस बीच ध्रुवसंधि की मृत्यु का समाचार सुनकर श्रृंगवेरपुर के

निषाद राजा का खजाना लूटने के लिए आ गए। युद्ध में वीरसेन को मारकर शत्रुजित् को राजा बना दिया गया और मनोरमा अपने पुत्र सुदर्शन को लेकर भरद्वाज मुनि के संरक्षण में चली गई। इसके पश्चात् सुदर्शन का विवाह स्वयंवर में काशिराज सुबाहु की कन्या शशिकला से होता है और विवाह का विरोध करने वाले युधाजित् और शत्रुजित् जो सदा सुदर्शन को मारने की ताक में रहते हैं, मारे जाते हैं।

इस कथा में राजा ध्रुवसंधि अयोध्या का राजा है। अष्ट चक्रा नव द्वारा देवानां पूरयोध्या। हमारा यह शरीर ही अयोध्या है। इसका राजा ध्रुवसंधि है। ध्रुवसंधि वह है जिसे परासन्निकर्ष संधि का ज्ञान है, मनुष्य के हिरण्यय कोश अथवा उच्चतम आनन्दमय कोश में आत्मा-परमात्मा का मिलन, जिसको अद्वैत ब्रह्म का ज्ञान है। इस राजा की एक पत्नी का नाम लीलावती है जो सहज रूप में घटित होने वाली क्रियाओं का प्रतीक है। लीलावती का पिता युधाजित् उज्ञयिनी नगरी का राजा है। उज्ञयिनी का अर्थ है उत् जयन् अर्थात् वह जो ऊपर की ओर जय करता हुआ चला जाता है। अत: यह काम क्रोध अहंकार आदि को ज्ञानमार्ग द्वारा जीत कर ऊपर चढ़ने का मार्ग है। ध्रुवसंधि की दूसरी पत्नी का नाम मनोरमा है जो कलिंग देश के राजा की पुत्री है। कलिंग का अर्थ है नीचे की ओर जाने वाला मार्ग। उसकी पुत्री मनोरमा— जो मन को भोगों मे लगाए रखे।

यदि अद्वैत ब्रह्म का ज्ञान रखने वाले को भी अहंकार आ जाए तो अहंकार रूपी सिंह उसे मार डालता है। राजा ध्रुवसंधि के मरने के पश्चात् युधाजित और शत्रुजित कलिंग देश के राजा को मार डालते हैं अर्थात् भोगवृत्ति का नाश कर देते हैं। इससे मनोरमा और सुदर्शन को भरद्वाज मुनि की शरण लेनी पड़ती है। भरद्वाज का अर्थ है जो परमात्मा की ओर ले जाने वाले श्रेष्ठ धन वाज का भरण करता है। मनो वै भरद्वाज:-मन ही भरद्वाज है। भरद्वाज की शरण लेने पर मनोरमा अर्थात् भोगों में रमण करने की प्रवृत्ति का रूपांतरण होकर वह भक्ति मार्ग में रूपांतरित हो जाती है। इस भक्ति मार्ग द्वारा मनोरमा-पुत्र सुदर्शन काशिराज-कन्या शशिकला को प्राप्त करने में सफल होता है। काशी शब्द प्रकाश का सूचक है जो आज्ञाचक्र में भृकुटि मध्य में विराजता है। शशिकला सोमतत्त्व का प्रतीक है। यह भक्तिमार्ग अंत में युधाजित् रूपी ज्ञानमार्ग पर विजय पाने और अयोध्या का राज्य प्राप्त करने में सफल होता है। शृङ्गवेरपुर के निषाद जो राजा ध्रुवसंधि का खजाना लूटने के लिए तैयार हैं, वह निचले स्तर की प्रवृत्तियाँ हैं जो शृङ्गार में लिप्त हैं और अद्वैत ब्रह्म से च्युति होने पर ऐसी प्रवृत्तियाँ हावी हो जाती हैं।

भव (अथर्व० ४.२८) भवतीति भव- जो हर समय बदलता रहता है। शिव का एक नाम।

भाम: (अथर्व० ४.३२.४ आदि)- ज्योतिरूप, प्रकाशरूप क्रोध है।

भृगु-अंगिरा (अथर्व० १.१२ आदि)– पुराणों में एक ऋषि का नाम भृगु-अंगिरा है। भृगु भर्जनात्– जो कर्मों को भून देते हैं। यह सूक्ष्मतम प्राण हैं। यह ज्ञानाग्नि स्वरूप हैं। दूसरी ओर अंग-अंग में बसे प्राण अंगिरस प्राण कहलाते हैं (मानुषी त्रिलोकी में)। इन अंगिरस प्राणों के समुच्चय को अंगिरा कहते हैं।

भृगु वारुण– भृगु वरुण का पुत्र है। वरुण है परमात्मा, भृगु है जीव, वह जीव जिसने अपनी सब इच्छाओं, भावनाओं को भून लिया है। वरुण उसे सीधे आनन्द तक नहीं पहुँचाता, अपितु अन्न से आनन्द तक ले जाता है– स्थूल से सूक्ष्म की ओर। अन्नमय से आनन्दमय कोश तक जाने की विद्या का नाम है वारुणी भार्गवी। इस भार्गवी विद्या को जानने के पश्चात् चंचलता नहीं रहती, स्थिरता आ जाती है, गीता का स्थितप्रज्ञ बन जाता है।

मणि– मन की ऊँचाई का नाम मणि है।

मण्डूक (मेंढक) (मंडूक सूक्त, ऋ० ७.१०३)– जीवात्मा रूपी मण्डूक सामान्यत: सोया हुआ रहता है। पर ध्यान द्वारा ज्ञान की उषा का प्रकाश होने से आनन्द की, ज्योति की वृष्टि होने लगती है। तब जीवात्मा रूपी मंडूक बोलने लगता है, इसकी सारी चित्तवृत्तियाँ एक स्वर से बोलने लगती हैं। माण्डूक्य उपनिषद् का मंडूक चार पाद वाला है। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय, यह चार कोश उसके चार पाद हैं। जब तक जीवात्मा अन्नमय कोशों तक सीमित रहता है, उसकी चेतना का विस्तार नहीं होता, वह कूप मंडूक कहलाता है। कुएँ के मेंढक की तरह वह यही समझता रहता है कि जितना वह देख रहा है, सृष्टि का अंत वही है। (द्र० वाक्)

मत्स्यावतार (ऋ० ८.६७)– पुराणों की कथा के अनुसार एक छोटी मछली (ईश्वर की शक्ति) मनु के हाथ में आ गई। मनु अर्थात् वह जीवात्मा जिसका मन ऊपर ऊँ की ओर चलने लगा है। हाथ में आने के पश्चात् उसने क्रमश: विशाल और विशालतर रूप धारण कर लिए। जब तक परमात्मा की शक्ति अन्नमय, प्राणमय और मनोमय कोश तक सीमित थी, तब तक वह छोटी मछली के रूप में थी। जब वह ऊपर विज्ञानमय के कोश में फैलने लगी तो उसका आकार विशाल होने लगा। तंत्र के अनुसार मत्स्य मांस मंत्र सिद्धि के लिए उत्तम है। कथन का प्रतीकात्मक रहस्य स्पष्ट है। मत्स्य का जन्म मित्रावरुण का वीर्य जल में गिरने से हुआ है।

मन, चित्त और मंत्र (ऋ० १०.५८)– मन से तात्पर्य बहिर्मुखी मन से है। जब मन इन्द्रियों के माध्यम से अनुभव संचित कर लेता है तो वह संचित होकर संस्कार या चित्त कहलाता है। चित्त अचेतन मन (अनकांक्शस माइन्ड) है। दूसरे शब्दों में, यह मन की छाया है। ज्योतिष में, सूर्य-पत्नी संज्ञा की छाया से उत्पन्न पुत्र शनि अचेतन मन पर ही प्रभाव डालता है।

मननात् त्रायते इति मंत्रः— मन की दृष्टि से एक हो जाना ही मंत्र है।

मनु (ऋ० ८.२७ आदि)- जब आत्मा मननशील होता है, ऊर्ध्वमुखी होता है तो व्यक्तित्व को मनु कहते हैं। मनु होने पर भी दो स्तर हो सकते हैं। अन्न, प्राण, मन वाले व्यक्त स्तर को मनुस् कहते हैं जिससे मनुष्य बना है। इससे ऊपर के स्तर को मनु कहते हैं।

मन्यु (ऋ० १०.८३ आदि) मनःइनक्ति इति— जो मन को जोड़ देता है ऊँ की शक्ति के साथ। यह ऊँचे आदर्श से उत्पन्न क्रोध है। यह विज्ञानमय कोश की देन है। जहाँ जो कुछ उदात्त है, सुन्दर है, उसकी सहायता के लिए तैयार रहता है। यह मन की अनेकताओं के नष्ट होने पर उत्पन्न होता है।

मन्वन्तर- १४ मन्वन्तर पुराणों में कहे जाते हैं। यह आध्यात्मिक विकास के १४ स्तर हैं। सबसे निचला स्तर मिथ्यात्व का है। उच्चतम स्तर जिनत्व का है। प्रत्येक मन्वन्तर का एक इन्द्र, एक मनु, सात सप्तर्षि होते हैं। सबसे निचले स्तर के सप्तर्षि नाक, आँख, कान आदि हैं। (मार्क० पु०)

मरुत (ऋ० १.३७ आदि)- ध्यान जब परिपक्व होता है तो प्राण बिजलियों के रूप में आते हैं। वे मरुत हैं। मरुतों की शक्ति का अवतरण हिरण्यय या आनन्दमय कोश से नीचे के कोशों में होता है। भग शक्ति का अवतरण विज्ञान से नीचे के कोशों में, सोम का अवतरण मनोमय से नीचे के कोशों में, इंद्रशक्ति का प्राणमय से नीचे को और अग्नि का अन्नमय कोश में होता है।

वसु, रुद्र, आदित्य, विश्वेदेवा और मरुत, इन पाँच प्रकार के विशः में मरुतः सूक्ष्मतम और सर्वश्रेष्ठ प्राण हैं। ध्यान में यह छोटी-छोटी लहरियों के रूप में चमचमाते हुए से दिखाई पड़ते हैं।

महात्रिपुरसुन्दरी- भावना, ज्ञान और क्रिया, तीनों को सुन्दर बना देती है। श्येन बन कर आनन्दमय कोश से आनन्द ले आती है।

मातरिश्वा (ऋ० ८.५४)- जीवात्मा महत् बुद्धि का आश्रय लेकर बार-बार उसमें सांस लेने लगता है। माता मनोमय कोश की पश्यन्ती वाक् है। इस प्रकार मातरिश्वा अग्नि मनोमय कोश से आरंभ होती है। फिर बढ़कर परावाक् तक पहुँचती है। श्वा का अर्थ गति और वृद्धि दोनों होते हैं।

मातलि (अथर्व० ८.९ आदि)- मातलि इन्द्र के रथ का सारथि है। मा का अर्थ है नवनिर्माण की चेतना। मन इस योग्य बने कि अनुभूतियों द्वारा नवनिर्माण होने लगे, तब वह इन्द्र का सारथि बनेगा।

माता-पिता– सृष्टि के दो मूल तत्त्वों पुरुष और प्रकृति को क्रमशः पिता और माता माना जाता है। माता परमेश्वर की शक्ति है, वाक् है, देवी, जगत-जननी है। पिता शक्तिमान है। शक्ति के भीतर शक्तिमान मौजूद रहता है।

मानुषी त्रिलोकी– जैसे बाहर ब्रह्माण्ड में आकाश, अन्तरिक्ष और पृथिवी की कल्पना की गई है, वैसी ही शरीर के अंदर भी की गई है। यह हमारा स्थूल शरीर हमारी भूमि है, अन्नमय कोश है। मानुषी त्रिलोकी की यह पृथिवी है। इसके कण-कण में व्याप्त है प्राणमय कोश जो चलाता-फिराता है। यह मानुषी त्रिलोकी का अन्तरिक्ष है। प्राणमय कोश के कण-कण में व्याप्त है मनोमय कोश— हमारी इच्छाएँ, भावनाएँ. संकल्प-विकल्प आदि। यह मानुषी त्रिलोकी का आकाश है।

मायावी राक्षस (ऋ० २.११.९)– (क) राग और द्वेष मायावी राक्षस हैं। अस्थिर बुद्धि वाला जीवात्मा राग-द्वेष से प्रेरित हो जाता है। यह राग-द्वेष सुबंधु की जान ले लेते हैं अर्थात् हमारे ब्रह्म में लगे मन को ब्रह्म से हटा देते हैं। द्रष्टव्य-बंधु।

(ख) रामायण में मायावी राक्षस बालि से युद्ध करता है।

मित्र-वरुण-अर्यमा (ऋ० १.४१)– मनुष्य के देव-भाग की रक्षा का कार्य मित्र का है। वरुण का राज्य देवी और आसुरी, दोनों भागों पर है, जबकि अर्यमा का राज्य आसुरी भाग पर ही है। अर्यमा पितरों का राजा कहलाता है।

मित्रावरुणौ (ऋ० १.१५१ आदि)– मित्र पुरुष है,वरुण प्रकृति है। प्रकृति ने पुरुष को बांध रखा है।

मुचुकुन्द और कालयवन– कालयवन ने मथुरा पर आक्रमण किया तो श्रीकृष्ण मथुरा से बाहर निकलकर दौड़े। कालयवन उनके पीछे दौड़ा। कृष्ण एक बिल में घुस गए जहाँ देवासुर संग्राम में असुरों से लड़कर राजा मुचुकुन्द थक कर चिरकाल से सोए हुए थे। उन्हें देवताओं की ओर से वरदान था कि जो उनकी निद्रा भंग करेगा वह जल कर नष्ट हो जाएगा। कालयवन ने पीताम्बर ओढ़कर सोते हुए मुचुकुन्द को कृष्ण समझा और एक लात मारी। मुचुकुन्द जाग पड़े और कालयवन भस्म हो गया। बिल का अर्थ सायण ने अथर्ववेद १९.६८ में मूलाधार किया है। पैरों की शक्ति का मूलाधार पर प्रहार होते ही मुचुकुन्द जाग पड़ता है।

मृत्यु– विषय-परान्मुख होना ही सांसारिक दृष्टि से मृत्यु है। साधारण लोग जिसे अमृत कहते हैं— भोग, साधना के मार्ग पर चलने वाले को उस अमृत का त्याग करके मृत्यु का वरण करना पड़ता है। देवेभ्यः कम् अवृणीत् मृत्युम्। (ऋ० १०.१३.४)

मेधातिथि (ऋ० १.१२ आदि)– मेधा अतिथि है जिसकी। जीवात्मा का वह रूप जिसे कभी-कभी मेधा बिना बुलाए भी आ जाती है। मेधा साक्षात् परमात्मा से मिलने वाली शक्ति है, न कि सामान्य बुद्धि।

यज्ञ- (क) यज्ञ और अध्वर दो शब्द हैं। अध्वर को भी यज्ञ नाम से संबोधित किया जा सकता है। यज्ञ मानुषी त्रिलोकी में होता है और अध्वर दैवी त्रिलोकी में। द्रष्टव्य-अध्वर।

(ख) यज्ञ पहले असुरों के पास था। असुर बड़े भाई, अग्र हैं क्योंकि इनका जन्म पहले होता है। शरीर ही सबसे बड़ा असुर है। शरीर की शक्तियाँ आसुरी शक्तियाँ हैं। यज्ञ को असुरों के हाथ से निकाल कर देवों के हाथ में दे देना ही योग है।

(ग) आनन्दमय कोश में यज्ञ का नाम प्रमा-प्रकृष्ट नवनिर्माण की शक्ति है। विज्ञानमय कोश में, जहाँ शक्ति का स्वरूप व्यक्त-अव्यक्त सा है, यज्ञ का नाम प्रतिमा (प्रमा की प्रतिमूर्ति) है। मनोमय कोश में जहाँ शक्ति निश्शेषेण व्यक्त अवस्था में है, यज्ञ का नाम निदान है। प्राणमय कोश में जहाँ ऊपर की शक्ति अग्नि में घृत की आहुति की भांति कार्य कर रही है, यज्ञ का नाम आज्यम् है। अन्नमय कोश में आकर जहाँ शक्ति का विस्तार सीमित हो जाता है, वह बंध जाती है, यज्ञ का नाम परिधि (परितः धीयते इति) हो जाता है।

यदु और तुर्वसु (ऋ० ५.३१.८)- यदु शब्द का प्रतिनिधि शब्द यातुधान या जादू है। तुर्-जल्दी, वसु- इच्छा = तुर्वसु। यह दोनों ययाति के पुत्र हैं जिन्हें ययाति ने शाप दे दिया था। यह सरयू नदी के उस पार रहते हैं और स्नान नहीं करते। यदु के पुत्र यादवाः और तुर्वसु के तुर्वशाः हैं। हमारी कर्मेन्द्रियों में काम आने वाले प्राण यादवाः हैं और ज्ञानशक्ति के प्राण जो भावनाशक्ति के साथ मिलकर खेल किया करते हैं, तुर्वशाः कहलाते हैं। हठ योग साधना में हठ द्वारा प्राणों का संयमन करके इन दोनों को विकसित किया जाता है। आगे चलकर यह खतरनाक हो जाते हैं। इनको समाप्त करना पड़ता है। यदु और तुर्वसु कुछ-कुछ असुरत्व रखने वाली दैवी प्रवृत्तियाँ हैं। कृष्ण का सुदर्शन चक्र इन्हें समाप्त करता है। निघण्टु के मनुष्य नामानि में परिगणित होने के कारण इनका ययाति– पुत्रों के रूप में उपलब्ध वर्णन महत्त्वपूर्ण है।

यम (ऋ० १०.१३५ आदि)- जो जीवात्मा संयमशील बन गया है, चित्तवृत्तियों को बाहर से अंदर की ओर लाने लगा है, वह यम कहलाता है। इस यम ने गातु-ब्रह्म प्राप्त करने का मार्ग-सर्वप्रथम जाना, वह गातुविद् कहलाया। जब यम इस ब्रह्मज्ञान के मार्ग को ढूंढकर निकालना चाहता है तो उसे त्याग करना पड़ता है, मृत्यु का वरण करना पड़ता है। ऋग्वेद में प्रश्न आता है कि यह बताओ कि यम ने देवों के लिए ब्रह्मज्ञान का मार्ग ढूंढने में जिस मृत्यु का वरण किया वह मृत्यु कौन सी थी (देवेभ्यः कम् अवृणीत मृत्युम्) और उसने कौन सा अमृत छोड़ दिया। साधारण लोग जिसे अमृत कहते हैं उसे छोड़ा। भोग को छोड़ना पड़ेगा। मृत्यु का अर्थ है विषय-परान्मुख होना। सांसारिक दृष्टि से यह मृत्यु है। जो यम बनना चाहता है उसे मृत्यु का वरण करना पड़ेगा। इसी कारण यम मृत्यु का देवता बन गया।

यम-यमी (ऋ० १०.१०)- वेदों और पुराणों में यम-यमी की कथा आती है जिसमें एक बारात में दुल्हा-दुल्हन को देखकर यमी अपने भाई यम के साथ आलिंगन बद्ध होने का आग्रह करती है और यम उसे शान्त करता है। यम संयमशील जीवात्मा है और यमी संयमशील अहंबुद्धि है। शरीर-केन्द्रित अहंबुद्धि से जीवरूपी पुरुष आलिंगनबद्ध है। इन दोनों के सम्बन्ध से इच्छाओं, क्रियाओं आदि का जन्म होता है।

यमुना (ऋ० १०.७५.५ आदि)- सरस्वती रूपी चेतना की धारा के साथ संगम करने से पूर्व यमुना नदी का नाम कालिन्दी (काली की पुत्री) है जिसमें कालिय सर्प रहता है जो कलियुग रुपी अहंकार का पुत्र है (द्र० कालिय नाग)

यूप (ऋ० ३.८)— यज्ञ में बलि के पशु को बांधने का खूंटा। विभिन्न भावना, ज्ञान, क्रिया आदि शक्तियों को समेटना, एक करना यूप है। जीवात्मा को यूप से बांधा जाता है। ध्यान में सबको एक करना होता है।

रथ (ऋ० ६.४७.२६)- (क) रथ का वर्णन वेद और पुराण दोनों में बहुत आता है। मनुष्य रूपी रथ इच्छाओं और विचारों रूपी घोड़ों द्वारा खींचा जाता है। उच्चतर स्तर पर रथ गतिहीन है जबकि मनोमय के स्तर पर गतिशील।

(ख) मन एक रथ है जिसे इच्छाओं और विचारों द्वारा खींचा जाता है। निचले स्तर पर यह मन रूपी रथ गतिशील है जबकि उच्चतर स्तर पर गतिहीन। अलग-अलग देवताओं के रथों में चक्रों की, पहियों की संख्या अलग-अलग होती है। अश्विनौ का रथ त्रिचक्र रथ है। जब तक समाधि अवस्था प्राप्त नहीं होती, तब तक केवल दो चक्र, एक स्थूल शरीर का और एक सूक्ष्म शरीर का, गति करते हैं। तीसरा चक्र अज्ञात है, यह केवल सवनों में ही जाता है, यह गतिहीन है। सूर्य का रथ एक चक्र वाला है।

रथन्तर साम और बृहत् साम- रथन्तर साम व्यक्तित्व के अन्तर से सम्बन्धित है। इसके विरुद्ध बृहत् साम व्यक्तित्व के बाहर से सम्बन्धित है। रथन्तर साम के लिए मन, वचन, कर्म, इच्छा, ज्ञान, क्रिया आदि का समन्वय करना होगा जिसके लिए प्राणायाम, ध्यान, समाधि आदि लगाने होंगे। बृहत् साम के लिए सामाजिक क्षेत्र के साथ, बाह्य प्रकृति के साथ समन्वय करना होगा।

राति, रयि और रायः- (क) राति भौतिक धन है जो स्थूल शरीर की उपलब्धि है। स्थूल शरीर से स्थूल चीजें ही मिलती हैं। यह पुरुषार्थ द्वारा उपार्जित होता है। सूक्ष्म शरीर से प्राप्त होने वाले धन को रयि कहते हैं। यह मानसिक धन है जो बुद्धि द्वारा उपार्जित होता है। रायः धन रयि से ऊँचा है। यह कारण शरीर की उपलब्धि है। उदाहरण के लिए— अग्ने नय सुपथा राये....। योग द्वारा अतिमानसिक अवस्था में पहुँच जाने पर यह धन प्राप्त हो सकता है।

(ख) जो कुछ मूर्तिमान, साकार तत्त्व, प्रकृति है वह रयि है, जो कुछ निराकार है वह प्राण है। सूक्ष्म स्तर पर भावना, विचार रयि हैं। एक विचार को हटाकर दूसरा विचार लाने का काम प्राण का है। चन्द्रमा रयि है, आदित्य प्राण है क्योंकि चन्द्रमा में प्रकाश आदित्य का है। हमारा शरीर रयि है, उसमें प्राण प्राण हैं। (प्रश्नोपनिषद्)।

(ग) राति, रयि और राय: और इन तीनों का समन्वित एक चौथा रूप, ये चारों जब ज्योतिर्मय हो जाते हैं, तब वेद में इन्हें राजनं साम कहा जाता है।

राधा (ऋ० १.३०.५)– आह्लादिनी शक्ति जो इच्छा, ज्ञान और क्रिया से २१ भागों में विभक्त हो जाती है। एकाकार रूप में यह केवल एक राधा रहती है। द्रष्टव्य-आकूति। आकूति और राधा में अंतर यह है कि आकूति में व्यक्तित्व का केवल भावना पक्ष प्रधान है, जबकि राधा में तीनों पक्ष मिल कर एक हो जाते हैं।

राम (ऋ० १०.३.३)– राम सत्य का प्रतीक है, लक्ष्मण सुलक्षणों से युक्त बुद्धि है, भरत भरण-पोषण करने वाली बुद्धि है, शत्रुघ्न शत्रु का नाश करने वाली बुद्धि है। शत्रु अर्थात् हमारे आंतरिक शत्रु, भोग आदि।

रावण या दशमुख (अथर्व० ४.६.१)– जब आत्मा का विस्तार पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच कर्मेन्द्रियों तक ही सीमित रहता है तो ऐसे एकांगी विकास वाला आत्मा दशमुख या रावण कहलाता है। कामवासना से उत्पन्न होने वाला महामोह ही रावण है। कटि प्रदेश का भोग लंका है। लंका सोने की है, स्वर्णमय है, काम से अधिक सुवर्णमय और क्या लगेगा। (कुंडलिनी शक्ति का यहाँ निवास होने से भी यह सुवर्णमय है)। आनन्दमय कोश की शक्ति राम रावण को मारना चाहती है।

राष्ट्र (अथर्व० १९.४१)— साधारणतया राष्ट्र का अर्थ देश समझ जाता है। राष्ट्रशब्द रा अथवा रास् धातुओं से व्युत्पन्न है जिका अर्थ है देना। प्रत्येक पुरुष में अनेक शक्तियाँ भरी पड़ी हैं। इनकी वेद में पाँच कोटियाँ हैं— वसु, रुद्र, आदित्य, विश्वेदेवा और मरुत। प्रथम तीन शक्तियाँ मनु तत्त्व के क्षेत्र में, अर्थात् अन्नमय, प्राणमय और मनोमय स्तर पर सक्रिय रहती हैं। अत: यह क्षेत्र मानव कहलाता है। विश्वेदेवा और मरुत इन तीनों स्तरों के अतिरिक्त बुद्धि और आत्मा के स्तर तक व्यापक हैं। इन शक्तियों की उपलब्धि है व्यक्ति के जीवन में राष्ट्र का जन्म। (वे० स० मार्च ८४)।

राष्ट्री (ऋ० ८.१००.१०)– व्यक्तित्व में रीढ की हड्डी, मेरुदंड राष्ट्री है। इसमें प्रवाहित शक्ति राष्ट्री शक्ति है। राष्ट्री से राठौर शब्द बना प्रतीत होता है।

रुद्रगण (ऋ० १.११४ आदि)– रुद्र गण (रुद्रा:) ऐसे मनोवेग हैं जो रुलाते हैं। जैसे काम, क्रोध आदि जब उत्पन्न होते हैं, बहिर्मुख होते हैं तो रुलाते हैं। लेकिन यही रुद्रा: जब मिल कर एक रूद्र हो जाता है तो यह रुद्र भीतरी साधना में बाधक तत्त्वों को, अहंकार को रुलाता है। दस प्राण और ग्यारहवां आत्मा, यह रुद्रगण हैं।

रोमन् (ऋ० १.६५.४, ९.९७.११)— साधारण अर्थ बाल वाला। आध्यात्मिक दृष्टि से वह चेतना जो नाद में मानसिक रूप से डूबी हुई है, रोमन् है। इससे आंतरिक आनन्द मिलता है जिससे रोम-रोम पुलकित हो जाता है। रु + मनिन्। (वे० स० अगस्त ८४)।

लव (ऋ० १०.११९)– ऋग्वेद में एक सूक्त के ऋषि का नाम। लव अर्थात् काट-छांट करने वाला। हमारा जीवात्मा जब व्यक्तित्व के भीतर उगे झाड-झंखाड को काटने लगता है और सद्गुणरूपी सुंदर फूलों को लगाता है तो वह जीवात्मा लव कहलाता है।

लाक्षागृह (अथर्व० ५.५)– पाण्डवों को वारणावत नगर में लाक्षागृह में, जिसका रक्षक पुरोचन (पुर + चन अर्थात् हिंसा) था, रहने के लिए भेजा गया। पाण्डवों ने विदुर की सलाह से लाक्षागृह के मध्य एक बिल (सुरंग) तैयार कराई। फिर एक दिन जब लाक्षागृह में एक निषादी और उसके पाँच पुत्र सो रहे थे, भीम ने आग लगा दी जिससे पुरोचन सहित छहों निषाद जल मरे। पाण्डव बिल से भाग निकले। ६ निषाद मन सहित पाँच इन्द्रियों के प्रतीक हो सकते हैं। पुरोचन इस व्यक्तित्व रूपी स्थूल शरीर की रक्षा करने वाला मन हो सकता है। लाक्षागृह स्वयं यह शरीर हो सकता है। बिल का अर्थ सायण द्वारा अथर्ववेद १९.६८ में मूलाधार किया गया है।

लोक (ऋ० ६.४७.८)— लोक उच्च और निम्न दोनों प्रकार के हो सकते हैं। लोक् धातु का अर्थ है दर्शन करना, प्रकाश करना, अभिव्यक्त करना। इसी से अवलोकन, जर्मन में लोके, अंग्रेजी में लुक बना है। इस सूक्त में इन्द्र से उरु लोक में ले चलने की प्रार्थना है। मनुष्य जिस व्यक्तित्व को लेकर पैदा होता है, वह है स्व। इस स्व को स्वः बनाना है। तब हमारा व्यक्तित्व ज्योतिर्मय बन जाता है। स्व व्यक्तित्व में भय है। सबसे बड़ा भय हैमृत्यु का। व्यक्तित्व की गहराई में एक ऐसा लोक है जहाँ अभय है। वह स्वस्ति है। उरु लोक में निरंतर स्वस्ति (सु-अस्ति) है। द्वंद नहीं है। देश काल से परे की स्थिति है, अग्र भूमि है।

लोपामुद्रा– विदर्भ देश की राजकुमारी लोपामुद्रा अगस्त्य की पत्नी है। अगस्त्य नामक स्थितप्रज्ञ व्यक्तित्व की अतिमानसिक बुद्धि ही उसकी पत्नी है। लोपामुद्रा नाम के पीछे एक कारण तो यह है कि समाधि अथवा निष्काम कर्मयोग द्वारा लोपामुद्रा में छिपी मुद्रा (उन्मनी शक्ति जिसे ऊर्ध्वशीर्ष त्रिभुज △ की मुद्रा द्वारा प्रकट करते हैं) प्रकट होने लगती है। इसके फलस्वरूप मनुष्य व्यक्तित्व में क्रमशः चार रूपांतर होते हैं जिन्हें बन्धु, सुबन्धु, विप्रबंधु, श्रुतबंधु नाम दिया गया है (द्र० बन्धु) यह लोपामुद्रा के पुत्र हैं।

दक्षिण की यात्रा करते समय विन्ध्याचल पार करने के पश्चात् अगस्त्य अपने शिष्य तोलकप्पियर (वृद्धकपि) को लोपामुद्रा को लाने के लिए भेजते हैं। साथ में निर्देश भी देते हैं कि वह लोपामुद्रा से दूरी रखे, उसके साथ मिले नहीं। लेकिन लाते समय-रास्ते में एक नदी पड़ती है जिसे पार करते समय दोनों मिल जाते हैं। इस पर अगस्त्य वृद्धकपि को शाप देते हैं। इस कथा का रहस्य यह है कि दक्षिणायन मार्ग (दक्षता प्राप्त करने का

मार्ग) की लम्बी यात्रा में अगस्त्य रूपी मनुष्य का मन (शिष्य) शनैः-शनैः वृद्धकपि बन जाता है। तब वह लोपामुद्रा को पाने योग्य होता है। लोपामुद्रा को लाते समय यात्रा के आरंभ में वृद्धकपि और अतिमानसिक बुद्धि रूपी लोपामुद्रा के बीच जो दूरी थी वह समाप्त तब होती है जब वृद्धकपि (मन) आंतरिक आनन्द की बाढ़ के बीच उस अतिमानसिक बुद्धि (लोपामुद्रा) के निकट सम्पर्क में आ ही जाता है। (ऋ० १.१७९)

(केन्द्र भारती, अक्तूबर १९८०)

वज्र (अथर्व० ६.१३४, १९.६६)- वृत्रासुर को मारने के लिए इन्द्र जिस वज्र का उपयोग करता है, वह चतुर्भृष्टि वज्र, चार कोणों वाला वज्र है। वज्र का अर्थ है वर्जन करने वाला, वज्र जैसा कठोर दृढ़ संकल्प। वृत्रासुर का सिर विज्ञानमय कोश में है और वृत्र की हत्या मनोमय कोश में की जाएगी। चतुर्भृष्टि वज्र चार स्तरों विज्ञानमय, मनोमय, प्राणमय और अन्नमय कोशों में मार करता है, इस कारण इसका नाम सार्थक है। इसके अतिरिक्त एक और शब्द जो वेद में आता है वह है अपां वज्र-पानी का वज्र-आनन्दमय कोश की गहराई तक जाने वाला दृढ़ संकल्प।

वध्र्यश्व (ऋ० १०.६९)- वह ऋषि जिसके अश्व अब नपुंसक हो गए, संतान पैदा करने लायक नहीं रहे। हमारा जीवात्मा ही वध्रयश्व है। इन्द्रियां घोड़े, अश्व हैं। जब तक यह इन्द्रियाँ फलों का भोग करती हैं, उनमें रुचि लेती हैं, तब तक यह जवान हैं, मर्द हैं। जिसके इन्द्रिय रूपी घोड़े कर्मफल नहीं भोगते, जो निष्काम कर्म करता है, वह जीवात्मा वध्रयश्व हो जाता है।

वनस्पति (अथर्व० २.७ आदि)- साधारण अर्थ में वनस्पति वह है जो फल देती है। साधना में ध्यान करते समय मन में तर्क-वितर्क आते रहते हैं जो फल का रूप हैं। वेणु (बांस) की स्थिति में फल आने के बाद वह नष्ट हो जाती है। इस कारण साधना में वेणु सर्वश्रेष्ठ वनस्पति मानी जाती है।

धातु पाठ के अनुसार वनस्पति (वन का पति) शब्द में वन का अर्थ कामना, इच्छा करना होता है। जब ब्रह्मानन्द के लिए जिज्ञासा जगती है, जब ध्यान ऊपर चलता है तब वनस्पति, अर्थात् सात्विक भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। वेणु या बांसुरी मेरुदण्ड का प्रतीक है। कृष्ण की वेणु से निकले मधुर स्वर गोपियों और गौओं को आकृष्ट कर लेते हैं।

वरुण (ऋ० १.२५ आदि)- वरुण और वृत्र दोनों शब्द एक ही वृ-आच्छादने धातु से बने हैं। वृत्र अंधकार से ढँकता है तो वरुण प्रकाश से, ज्योति से ढँकता है। जहाँ-जहाँ अंधकार जीव को ढँकने के लिए दौड़ता है वहाँ-वहाँ वरुण प्रकाश भेजता है। वरुण का पाश हिरण्य का पाश, ज्योति का पाश है। उसे हिरण्ययोमिथः कहा जाता है। मिथः उस धातु से बना है जिससे मिथ्या। वरुण का गृह अंधकार से भी मिला है। सृष्टि के सारे कार्यों-सांस का चलना, विचारों का ताना बाना, सब में वरुण का घर है— सब

जगह वरुण ज्योति फैलाने का प्रयास कर रहा है। द्र० मित्र-वरुण-अर्यमा। वरुण के तीन प्रकार के बंधन हैं— स्थूल शरीर में बंधन अधम कहलाता है, सूक्ष्म शरीर का बंधन मध्यम और कारण शरीर का बंधन उत्तम, ज्योतिर्मय कहलाता है।

वशा (अथर्ववेद १०.१०)— (क) वेद में वशा गौ है जो बांझ है किन्तु फिर भी मां है, सक्रिय है और निष्क्रिय भी। हमारी बुद्धि ही वशा है। वशा से पाँच सन्ततियां उत्पन्न होती हैं।

१. आपः— शुद्ध बुद्धि से निकलने वाली गंगा-जमुना की धाराएँ,

२. उर्वरा भूमि— अकृष्टपच्या, जिसमें बिना हल चलाए, बीज से अंकुर निकल पड़ें, ऋषियों के आश्रम की वह भूमि। प्रत्युत्पन्न मति, उर्वरा बुद्धि वशा गौ की कृपा है।

३. राष्ट्रम— ज्योति, प्रकाश, सूनृता वाक्, ४. अन्नम्, ५. क्षीर

(ख) परमात्मा की शक्ति ही वास्तव में प्रकृति का रूप धारण करती है। दूसरे शब्दों में, यह ब्रह्म की अपने को अभिव्यक्त करने वाली शक्ति है। मूल प्रकृति जब सृष्टि करने लगती है तब उसे महत् कहा जाता है। महत् देवानाम् असुरत्वमेकम्। यह महत् देवताओं का निम्नतर स्तर है जिसमें सुरत्व के साथ थोड़ा असुरत्व भी आ जाता है। ऐसी प्रकृति का नाम वशा है जो वरुण से सम्बन्धित है।

वसिष्ठ और अगस्त्य (ऋ० मण्डल ७)- वसिष्ठ और अगस्त्य का जन्म एक ही घट से हुआ। वसिष्ठ घट के बीच में से सीधा उठ खड़े होते हैं, लम्बवत्, जबकि अगस्त्य को प्रजाएँ सब तरफ ले गई। इसका अर्थ है कि आन्तरिक साधना द्वारा विकारा, केवल परमात्मा की ओर बढ़ना, जीवात्मा का वसिष्ठ पक्ष है। इससे ऊर्ध्व दिशा में प्रगति होकर ब्रह्मसाक्षात्कार का आनन्द प्राप्त होता है। इसके लिए कच्चे कुंभ को योग साधना द्वारा पकाना आवश्यक है जिससे वह शुद्ध आपः, आबेरुह रूपी जल भरने योग्य हो सके। कुंभक प्रणायाम द्वारा जिस उदान प्राण की वृद्धि होती है, वह वसिष्ठ प्राण है। इस रथ या प्राणों वाले दशरथ रूपी जीवात्मा को वसिष्ठ ही परब्रह्म तक पहुँचाएगा। अगस्त्य जिसे प्रजाएँ सब तरफ ले गई, जीवात्मा का सामाजिक पक्ष है। यज्ञ रूपी खेती अगस्त्य करेगा। जब वसिष्ठ और अगस्त्य दोनों का समन्वय होता है तब हमारा व्यक्तित्व बृहत् होता है।

वसिष्ठ प्राण हमारे शरीर में सबसे अधिक बसने वाले प्राण हैं। वसिष्ठ को उत्तर दिशा देखनी है— निरंतर आध्यात्मिक ऊँचाई।

वसु- (क) आठ वसु वासनाएँ है जो पतन की ओर ले जाने वाले हैं। आत्मा की ओर उन्मुख होकर वसु उपरिचर वसु बनता है। यह एक वसु अन्य सब वसुओं को दिव्य बना देता है।

(ख) वसु वासनाएँ हैं। यह खराब भी हो सकती हैं और अच्छी भी। पुराणों में आठ वसु प्रसिद्ध हैं जिनमें उपरिचर वसु (ऊपर चलने वाला वसु) सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। महाभारत में भीष्म वसुओं का अवतार हैं। संक्षेप में कथा इस प्रकार है। द्यौ नामक वसु की पत्नी ने पृथिवी पर उशीनर (पार्थिव कामना) की पुत्री को वसिष्ठ की कामधेनु देने की इच्छा की जिससे उसे दीर्घायु प्राप्त हो। वसिष्ठ (सबसे अधिक वास करने वाला वसु) ने वसुओं को पृथिवी पर जन्म लेने का शाप दिया (जिससे उनकी सहायता से पार्थिव कामनाएँ कामधेनु को स्वीकार करने के लिए रूपांतरित की जा सकें)। भीष्म का प्रयास असुर पक्ष की कामनाओं को उच्च स्तर पर लाने और दैवी कामनाओं की सहायता करने का रहता है।

वस्त्र (अथर्व० ७.३८)– वासनाएँ जो वस्त्र की तरह लपेटती हैं। जब वासनाएँ उरु, विस्तृत हो जाती हैं तो दिगम्बर (दिशाएं ही जिसका वस्त्र हैं) ही वस्त्र हो जाता है।

वाक् (अथर्व० ४.३० आदि)– (क) आत्मा जिस शक्ति के द्वारा अपने को व्यक्त करता है, वह वाक् कहलाती है (केवल वाणी ही वाक् नहीं है)। महाभारत के अनुशासन पर्व में एक कथा आती है कि अग्नि छिप गया। मण्डूक ने देवताओं को बताया कि अग्नि जल में है। इस पर अग्नि ने मण्डूक को शाप दिया कि तुम्हें रस का अनुभव न हो। देवताओं ने उसे वरदान दिया कि रस का अनुभव न होते हुए भी तुम्हारी वाक् बहुविधा सरस्वती के रूप में प्रकट होगी। फिर जब अग्नि अश्वत्थ में जाकर छिपा तो हाथी ने देवताओं से बता दिया। इस पर हाथी की वाक् उल्टी हो जाने का शाप मिला। देवताओं ने हाथी की वाक् उच्च स्वर वाली लेकिन अक्षरहीन होने का वरदान दिया। फिर शमी वृक्ष में छिपी अग्नि को शुक ने बता दिया। इस पर उसे वाक् के आवृत हो जाने का शाप और कोकिला वाक् होने का वरदान मिला। वाक् के चार प्रकार हैं– परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। वैखरी वाक् बोले जाने वाली वाक् है। मण्डूक की टर्र-टर्र आवाज वैखरी का प्रतीक है। जल में अग्नि से तात्पर्य कर्मों में प्रकट होने वाले प्राणों से है। वैखरी वाक् रूपी रस समाप्त होने पर ही सरस्वती प्रकट हो सकती है। हाथी की वाक् मध्यमा वाक् है। यह संकल्पों-विचारों की सृष्टि के रूप में अश्वत्थ रूपी सृष्टि-वृक्ष से प्रकट हो रही है। यदि मध्यमा वाक् उलट जाए अर्थात् अंतर्मुखी हो जाए तो वह उच्च स्वर के रूप में, नाद के रूप में प्रकट हो सकती है। शुक की वाक् पश्यन्ती वाक् है। शमी वृक्ष शान्ति का प्रतीक है। सब कुछ शान्त होते हुए भी जो शोर उत्पन्न हो रहा है, यदि वह समाप्त हो जाए तो सारे व्यक्तित्व को मोहित कर देने वाली कोकिला वाक् प्रकट हो सकती है।

(ख) वाक् तीन स्तरों पर तीन रूप धारण करती है। १. स्थूलतम स्तर पर वह विराज वाक् होकर स्थूल प्राण रूप जीवात्मा (पतंग) के लिए अनेक रूपों में विराजती है। वही सूक्ष्म (मनोमय) स्तर पर ऊपर–नीचे प्राणन और अपानन करने वाली रोचना

(ज्योति) बन जाती है जिसके फलस्वरूप महः की एषणा रखने वाला (महिष) मन द्युलोक (मानसिक क्षेत्र) को प्रकाशित करता है। अतिमानसिक स्तर पर पहुँचने का नाम पुरश्चरण है। गायत्री ऋक् के जप के प्रसंग में जिस पुरश्चरण की चर्चा रहती है वह वस्तुतः यही विज्ञानमय स्तर की अतिमानसिक एकाग्रता है। इस स्तर पर वाक् को पृश्नि गौ कहा गया है। पृश्नि का अर्थ है चितकबरा, खिचडी रूप। अन्य दो स्तरों पर जो वाक् अलग-अलग क्रमशः ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और भावनाशक्ति के रूप में थी, वह यहाँ तीनों के संयोगजन्य चितकबरेपन को धारण करने से पृश्नि कहलाती है। और पुरश्चरण के लिए गमनशील होने के कारण गौः भी कही जाती है।

(ग) ऋग्वेद सूक्त १०.१२५ के आरंभ में कहा गया है कि वाक् चार शक्तियों के माध्यम से चलती है। शक्तियों के लिए उपयोग किए गए शब्दों का विन्यास ध्यान देने योग्य है— रुद्रेभिः, वसुभिः आदित्यैः तथा विश्वेदेवैः। रुद्रों और वसुओं द्वारा वाक् एक प्रकार से चलती है और आदित्यों व विश्वेदेवों के साथ दूसरी प्रकार से। रुद्रों और वसुओं अर्थात् रुलाने वाले मनोवेशों जैसे क्रोध, लोभ, मोह आदि और वासनाओं के साथ विचरण करने वाली वाक् कभी आत्मा की ओर उन्मुख नहीं हो सकती। वाक् का दूसरा रूप जो भरण पोषण करने वाला है, तब प्रकट होता है जब वह आदित्यों (अदिति पुत्रों मित्र, वरुण आदि) और विश्वेदेवों के साथ विचरण करती है (वे० स० जुलाई ८६)।

वाज (ऋ० १.५.९ आदि)- (क) धन का एक नाम। वाज धन के कारण मानव दूसरे के मन की बात जानने, दूर सम्पर्क स्थापित करने आदि में समर्थ होता है। वाज = वा + अज, परमात्मा की शक्ति जो विकल्प से अज है। अर्थात् यदि उसका सदुपयोग किया जाएगा तो वह परमात्मा की ओर ले जाएगा, स्थिर रहेगा। यदि दुरुपयोग किया जाएगा तो वह नष्ट हो जाएगा।

(ख) सोम, आपः, औषधि और गाः इस चतुष्पद को वाज द्विपद में, शारीरिक दक्षता में बदल सकता है (अथर्ववेद १३.१.२)।

वाजसाति (ऋ० १.१३०.१ आदि)- ध्यान में जब परमात्मा वाज धन देता है तो वह वाजसाति कहलाता है।

वाजी (अथर्व० ६.९२ आदि)- मनुष्य की ज्ञान, क्रिया और भावनात्मक चेतनाओं में से चेतना वह रूप जिसमें क्रियाशक्ति और भावनाशक्ति दोनों है, वाजी कहलाता है। वेद में आपः में से वाजी का उठ खड़ा होना इन्द्र जन्म का प्रतीक है। आत्मा का स्वरूपावस्थित हो जाना ही इन्द्र जन्म है।

वातापि (ऋ० १.१८७.८)- पुराण कथा के अनुसार इल्वल राक्षस ब्राह्मणों को भोजन के रूप में अपने भाई वातापि का मांस खिला देता था और बाद में इल्वल के पुकारने पर वातापि जीवित होकर ब्राह्मण का पेट फाड़कर निकल आता था। मनुष्य देह

का अहंकार इल्वल है। इल्वल महत्वाकांक्षा है। इल्वल शब्द अंग्रेजी के इविल और इल विल शब्दों से मिलता है। वातापि मांसल भोगों का प्रतीक है। इल्वल का ब्राह्मण को भोजन कराना मांसल भोगों को प्रस्तुत करना है। ब्राह्मण का मरना मांसल भोगों में पड़कर उसके पतन का प्रतीक है। अगस्त्य अहंकार रूपी इल्वल से धन मांगने जाते हैं। वह वातापि का मांस खाकर उसे हजम कर जाते हैं। वातापि फिर जीवित नहीं हो सका। अगस्त्य द्वारा वातापि को हजम करना मांसल भोगों को निष्काम भाव से भोगना है। अहंकार रूपी इल्वल से धन तभी प्राप्त हो सकता है जब पहले मांसल भोगों पर विजय प्राप्त कर ली जाए।

वामदेव ऋषि (ऋ० चतुर्थ मण्डल)– यह मनोमय की शक्ति है जो गर्भ रूप में विज्ञानमय में रहती है और जिससे स्थूल शरीर की विश्व-सृष्टि उत्पन्न होती है।

विज्ञानमय की जिस एकीभूत अवस्था को संहार की दृष्टि से अत्रि कहा जाता है, वही सृष्टि या प्रसार की दृष्टि से गर्भ या त्रित भी कहा जा सकता है। गर्भ को ही इन्द्र-सोम-अग्नि तत्त्वात्मक त्रित कहते हैं। यह गर्भस्थ इन्द्र वृषन् या वामदेव है जो बाहर आकर नाना रूपमयी सृष्टि में व्यक्त होता है। यही कूप में पड़ा हुआ त्रित है जिसकी पुकार को बृहस्पति सुनते हैं। (वैदिक दर्शन से)

वायस (ऋ० १.१६४.५२)– साधारण अर्थ में कौवा पक्षी। अध्यात्म में, जिसके पास वाय है, एक वसु या धन है जिसमें वासना है, वायस कहलाता है।

विज्ञान– चित्त के एकाग्र होने की पहली अवस्था में जो बुद्धि प्राप्त होती है वह महत् बुद्धि कहलाती है और जो ज्ञान प्राप्त होता है वह विज्ञान कहलाता है। यह सविकल्प समाधि की अवस्था है।

विदुर– माण्डव्य ऋषि के आश्रम में चोरों ने धन छिपा दिया और स्वयं भी वहीं छिप गए। राजा ने चोरों के साथ माण्डव्य ऋषि को भी शूल पर चढ़ाकर फांसी दे दी। माण्डव्य ऋषि मरे नहीं, तब राजा ने ऋषि को शूल (अणि) से उतार कर, उनके अंदर से अणि का भाग निकालना चाहा। अणि निकालने में सफल न होने पर अणि माण्डव्य ऋषि के अंदर ही रह गई, अतः वह अणि-माण्डव्य ऋषि कहलाने लगे। अणि माण्डव्य ने धर्म से अपने दुःख का कारण पूछ कर धर्म को शाप दिया कि तुम मनुष्य होकर शूद्र हो जाओ। वही धर्म दासी और वेदव्यास के समागम से विदुर रूप में उत्पन्न हुए। माण्डव्य मण्ड (वर्षण) धातु से बना है। अण् धातु शब्द अर्थ में है। अणि माण्डव्य से तात्पर्य समाधि में मधुवर्षण के साथ नाद उत्पन्न होने से हो सकता है। धर्म को शाप देने से तात्पर्य है कि नाद और वर्षण तभी सार्थक है जब उसका प्रभाव शूद्र रूपी निचले कोशों में भी आ जाए।

विधवा (ऋ० १०.१८.७)— जिसका धव, पति नहीं, ऐसी बुद्धि जो परमात्मा में नहीं लगती, विधवा बुद्धि है। इन्द्र का जाल शरीर की ७२ लाख नाड़ियों (वेद की नारी) में फैला है जिनमें प्राणमयी चेतना की धाराएँ प्रवाहित हो रही हैं। यह नारी विधवा है क्योंकि चेतना का स्वामी एक है, यह अनेक है। अदिति एक है, यहाँ अनेक हो रही है। परमात्मा को यह जानती नहीं।

विन्ध्याचल- जो बींधने योग्य है। जीवात्मा का अहंकार। इस पर्वत के ऊँचा होने का फल होता है घोर अज्ञानांधकार। पुराण की कथा के अनुसार विन्ध्याचल सूर्य से इसलिए रुष्ट है कि वह मेरु की परिक्रमा तो करता है, मेरी नहीं करता। अतः वह ऊंचा होकर सूर्य का मार्ग रोक लेता है। ब्रह्म रूप सूर्य विज्ञानमय कोश रूपी सुमेरु को अपनी परिक्रमा से सदा आलोकित करता रहता है। इससे ब्राह्मी प्रकाश मनोमय से अन्नमय कोशों को भी कुछ न कुछ मिलता रहता है। पर अहंकार का विन्ध्याचल ऊँचा होने पर यह प्रकाश रुक जाता है।

विपश्चित (ऋ० १.१८.७)— विपन्या बुद्धि के प्रादुर्भाव से मेरुदंड में कंपन (वेपन) उत्पन्न होता है। इसी वेपन के कारण व्यक्ति विप्र कहलाता है।

विपश्यना- (क) ध्यान की जिस विधि का गौतम बुद्ध ने उद्धार किया, उसका नाम विपश्यना है। इस विधि में बहिर्मुखी चेतना को अंतर्मुखी करने के लिए शरीर की संवेदनाओं पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। सबसे पहले सांस के आने जाने पर ध्यान केन्द्रित करते हैं क्योंकि श्वास-प्रश्वास अंतर्जगत और बाह्य जगत के बीच सेतु का काम करता है। इसके पश्चात् शरीर में होने वाली संवेदनाओं पर ध्यान केन्द्रित किया जा सकता है जैसे खुजली, भूख, प्यास, गर्मी, पीड़ा आदि आदि। यदि संवेदनाओं को अनुकूल वातावरण मिले तो वे एक स्थान पर उत्पन्न होकर सारे शरीर में फैल जाती हैं और एक चमत्कार सा घटित हो जाता है। यदि कोई संवेदना जैसे भूख, पीड़ा आदि न फैल रही हो तो उसके कारणों पर विचार करके उन त्रुटियों को दूर करना होता है। वैदिक भाषा में इस योग का नाम पश्यन्ती योग है और पश्यन्ती योग की यह क्रिया साधना के उच्च और निम्न, सभी स्तरों पर की जाती है। उदाहरण के लिए अथर्ववेद ४.२०।

(ख) जीवन के प्रत्येक कार्य को करते समय अधिकतम जाग्रत रहना विपश्यना योग है। जैसे चलने की जाग्रति, खाने की जाग्रति, पढ़ने की जाग्रति आदि।

विवस्वान् (ऋ० १०.१३)- बाहरी वासना समाप्त होने पर व्यक्तित्व विवस्वान् बनता है।

विश्व और सर्व- वेद के शब्दार्थ में सामान्य रूप से विश्व और सर्व का एक ही अर्थ कर दिया जाता है। व्यक्तित्व का मनोमय कोश, प्राणमय और अन्नमय कोश और

इससे भी बाहर जो कुछ है, वह सब सर्व के अंतर्गत आता है। विश्व में इन सबके अतिरिक्त विज्ञानमय कोश भी सम्मिलित है। साधारण शब्दों में, व्यक्तित्व का बाहरी जगत् सर्व और आंतरिक जगत विश्व कहलाता है।

विश्वामित्र (ऋ० मण्डल ३)– मित्र तथा मात्रा (माया) एक ही मा धातु से निकले हैं। और मित्र का अर्थ मात्रा (माया) से युक्त आत्मा है। विश्वामित्र के अन्तर्गत आत्मा की वह शक्ति या वाक् आती है जिसके द्वारा विश्वरूप (विश्वानि रूपाणि) मित्र (मित अथवा मायायुक्त) हैं। अत: विश्वामित्र का क्षेत्र पिण्डाण्ड में समस्त स्थूल शरीर है तथा ब्रह्माण्ड में सारा मूर्त जगत उसका क्षेत्र है जिसमें वह नाना सृष्टि करता है। विश्वामित्र का दूसरा नाम गाधिन् भी है। गाधिन् शब्द गाध्-प्रतिष्ठा लिप्सा, से निकला है और उसका अर्थ गाधा (प्रतिष्ठा लिप्सा) वाला है। स्थूल शरीर से सम्बन्ध रखने के कारण विश्वामित्र में भी गृत्समद की भाँति ही काम लिप्सा आदि प्रमुख हैं जिसकी उत्पत्ति रज: से होने के कारण ही कदाचित् उसे राजर्षि कहा जाता है। विश्वामित्र का एक नाम कौशिक है। कुशिक का अर्थ है जाल की तरह सारे शरीर में बिछा हुआ— कारण, सूक्ष्म और स्थूल शरीर में। कुशिक से कौशिक उत्पन्न होता है।

विश्वामित्र और वसिष्ठ– (क) वसिष्ठ प्राण वह प्राण है जो नीचे से ऊपर उठता चला जाता है और जीवात्मा को विज्ञानमय कोश के भी पार पहुँचा देता है। लेकिन जो जीवात्मा इन्द्रियों के माध्यम से कार्य करता है, (निष्काम कर्म नहीं करता), उसको वसिष्ठ स्वर्ग नहीं पहुँचा सकता है। विश्वामित्र प्राण ऐसी जीवात्माओं को सशरीर स्वर्ग में भेजने का प्रयास करता है, जैसे त्रिशंकु को। लेकिन त्रिशंकु को स्वर्ग से नीचे धकेल दिया गया और वह अभी भी उल्टा लटका हुआ है। अभी भी लोक में ज्वार बाजरा, भैंस आदि को विश्वामित्र की सृष्टि कहा जाता है।

(ख) विश्वामित्र प्राण वसिष्ठ प्राणों द्वारा उपलब्ध परमात्मा की शक्ति (नन्दिनी गौ) को सारे विश्व के कल्याण के लिए वितरित करना चाहता है (विश्व का मित्र)। इसीलिए वह वसिष्ठ से युद्ध करता है।

(ग) व्यक्त आत्मा मन, प्राण और शरीर के प्रपंचों में फंसा रहता है, अत: उसे सदा प्रतिबोध की अपेक्षा रहती है। अव्यक्त आत्मा वसिष्ठ है और व्यक्त आत्मा विश्वामित्र है। पहला ब्राह्मण है तो दूसरा राजन्य।

(घ) विश्वामित्र द्वारा वसिष्ठ के सौ पुत्रों को मार डालना आन्तरिक और बाह्य साधना के एकीकरण का प्रतीक है। मेरुदंड में ३३ मूल केन्द्र हैं। इन ३३ केंद्रों में से प्रत्येक में तीन-तीन ऋभु, विभु और वाज या इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्ति होने के कारण कुल मिलाकर ९९ प्राणों के केंद्र हो जाते हैं। एक इन सबका सम्मिलित रूप है।

विश्वामित्र ने इस अनेकता को समाप्त किया। अंत में वसिष्ठ के १०० पुत्रों का विश्वामित्र के सौ पुत्रों में रूपांतरण हो जाता है।

वीरुध (अथर्व० ३.२७.५)- इन्द्र ने वृत्र का वध करना चाहा तो उसका वीर्य पृथिवी पर गिर पड़ा। फलतः वीरुध की उत्पत्ति हुई। वीरुध अर्थात् कर्मलता, यज्ञरूपी श्रेष्ठतम कर्म की लता। दूसरे शब्दों में, इन्द्र जन्म होने से जैसे ही वृत्र मरा कि हमारी कर्मलता लहराई। ब्रह्मवीर्य धारण करने वाली शक्तियों को वीरुध कहते हैं।

वृक् (अथर्ववेद ४.३)— वृक्-भेड़िया वह व्यक्तित्व है जो जहाँ मौका देखता है, दुर्बल को खा जाता है। काम, क्रोध आदि के रूप में आता है और क्रव्याद अग्नि बन कर हमारा मांस खा जाता है।

वृषभ (अथर्व० ४.५)- साधारण अर्थ सांड या बैल। वेद में आनन्द की वर्षा करने वाला।

वेणु (ऋ० ८.५५.३)- ध्यान की स्थिति में जो मेरुदंड में सुषुम्ना में गुलगुली सा करता हुआ ऊपर उठता प्राण है, उसकी अनुभूति वेणु नामक वनस्पति के द्वारा व्यक्त की जाती है। उसी को पुराणों में वेणु गीत कहते हैं।

वेत्र (बेंत)— वह चेतना धाराएँ जिनका फल नहीं भोगना पड़ता। बेंत पर फल नहीं आते। निष्काम कर्म।

वेदी- (क) हिरण्ययकोश को कर्मकाण्ड में उत्तरवेदी कहते हैं। शरीर भी एक वेदी है, निचली वेदी। मनोमय कोश या सूक्ष्म शरीर अन्तर्वेदी है। वेदी से वेद प्राप्त किया जा सकता है।

(ख) यज्ञ में जो वेदी के चारों ओर जल डाला जाता है यह उस अन्तरिक्ष आपः का प्रतीक है जो ऊपर से हमारे भीतर आते हैं। इसी को तर्पण कहते हैं। ऊपर से आने वाले प्राणों से ही हम तृप्त होते हैं।

वेन (ऋ० १०.१२३)- वेन का शाब्दिक अर्थ है कामना करने वाला। पुराणों में वेन पृथु का जनक है जो दुष्ट और अत्याचारी बन जाता है। इस कारण ऋषिगण वेन की हत्या करके उसके शरीर के मंथन द्वारा पृथु को उत्पन्न करते हैं। वेदों में वेन शब्द महत्त्वपूर्ण है। अन्नमय कोश के स्तर पर इन्द्रियों के विषय भोगों की कामना करने वाला जीवात्मा वेन दुश्शील, अत्याचारी है। जब विज्ञानमय कोश की शक्ति का नीचे के अन्नमय कोशों में अवतरण होता है, तब व्यक्तित्व का विस्तार हो जाता है, वह पृथु (शाब्दिक अर्थ विस्तार वाला) बन जाता है। आनन्दमय कोश में सब कुछ एक हो जाने के कारण आनन्दमय कोश का वेन शुद्ध आपः प्राण की कामना करने वाला बन जाता है।

वैतरणी नदी (ऋ० १०.६१.१७)– पुराणों में नरक की नदी। इसे पार करने के लिए गौ की पूंछ पकड़नी होती है। वैतरणी दुर्बुद्धि है जिसे पार करने के लिए सुबुद्धि रूपी गौ का आश्रय लेना पड़ता है।

व्यक्तित्व- व्यक्ति— जितना वह व्यक्त हो रहा है, मानुषी त्रिलोकी अर्थात् अन्नमय से मनोमय तक। लेकिन मनुष्य व्यक्तित्व इतना ही नहीं है। जैसे समुद्र में विशालकाय हिम खण्ड की केवल नोक भर दिखाई देती है, शेष डूबा रहता है, ऐसे ही हमारा व्यक्तित्व विशाल हिमखण्ड की एक नोक भर है। हमारा व्यक्तित्व जो अव्यक्त है, वह अनंत है क्योंकि उसका अनन्त से सम्बन्ध है। हमारा जो साधारण व्यक्त रूप है, उसके लिए अव्यक्त का दरवाजा बन्द है। अव्यक्त का दरवाजा खोलने के लिए मन: को नम: बनाना पड़ेगा, अर्थात् मन को अन्तर्मुखी करना पड़ेगा।

व्याघ्र (अथर्व० ४.३.३) घ्रा— गन्धोपादाने। जो सूंघता है। वह व्यक्तित्व जो यह सूंघता है कि किस में कौन सी बुराई है। छिद्रान्वेषी व्यक्तित्व। अथवा जो विविध प्रकार की गंधों को सूंघता रहता है, तरह-तरह के विषय भोगों के लिए मुख फैलाए घूमता रहता है। हमारी पवित्र स्वधा प्रवृत्ति, स्व को धारण करने वाली प्रवृत्ति इस व्याघ्र के निकट आने पर राग का रूप धारण कर लेती है जबकि स्वाहा प्रवृत्ति द्वेष का, सभी को पराए बनाने का रूप धारण कर लेती है। द्रष्टव्य-वृक।

व्रज (ऋ० १.९२.४ आदि) (गोशाला)— सात मुखों वाला एक ह्रद है, व्रज है, गोशाला, गोचर भूमि है जिसके सात दरवाजे हैं। उसमें कोई गरज रहा है। यह सात दरवाजे बाहर की ओर ही खुलते हैं, अंदर की ओर नहीं। हमारी चेतना सात दरवाजों वाली पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, एक मन और एक बुद्धि है। सातों द्वारों से उस व्रज भूमि में घुसा जाता है। सब इन्द्रियाँ बाहर के अनुभव परखती हैं जैसे स्पर्श इन्द्रिय स्पर्श का। लेकिन भीतर जो स्तनयित्नु गरज रहा है, उसका स्पर्श नहीं करती। व्रज अर्थात् गोचर भूमि, जहाँ हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ चर सकें। तरह-तरह के विषयभोगों का चरागाह बाहर है, आध्यात्मिक चरागाह अंदर है। बाहर के विषय रमणीय हैं लेकिन फल चखने में कर्कश हैं।

शकुनि (ऋ० ४.२६.६) (पक्षी)— शकुनि शक्, सामर्थ्य धातु से बना है। शकुनि अर्थात् सामर्थ्यवान। सोम का निचले स्तरों पर अवतरण होने पर अनेक प्रकार की शक्तियाँ प्रकट होती हैं। जैसे पक्षियों में पंख होते हैं, ऐसे ही यह शक्तियाँ भी उड़ती हुई प्रकट होती हैं।

शकुन्तला-दुष्यन्त- शकुन्तला का अर्थ है जो मन रूपी शकुन्त का लालन करे। दुष्यन्त का अर्थ है जो स्वयं दोषमय है। शकुन्तला का जन्म विश्वामित्र व मेनका के संयोग से हुआ। वह स्वर्गीय है, पवित्र है, उसका पालन जीवात्मा रूपी कण्व मुनि के

आश्रम में होता है। दुष्यन्त शकुन्तला को दूषित मन से पाना चाहता है। लेकिन दुर्वासनाओं रूपी दुर्वासा ऋषि के शाप के कारण भूल जाता है।

शंख (अथर्व० ४.१०)– शं को, शान्ति के बीज को खोदने वाला शंख है। सब कुछ होते हुए भी शान्ति न हो तो शंख-साधना द्वारा शान्ति का बीज पल्लवित हो सकता है।

शत्रु– वेद, पुराण और तंत्रों में शत्रु के विरुद्ध किए जाने वाले अभिचारों की बहुत चर्चा है। यह शत्रु कोई और नहीं, स्वयं हमारा अहंकार ही है। अहंकार, अर्थात् यह मान बैठना कि मैं तो यह शरीर ही हूँ, इससे आगे कुछ नहीं।

शन्तनु और प्रतीप (ऋ० १०.९८.१)– शन्तनु के पिता का नाम प्रतीप (उल्टा, दिव्य आपः से उल्टा रहने वाला) है। प्रतीप गंगा को स्वीकार करने में असमर्थ है। इसी कारण उसका पुत्र शन्तनु पूर्णतः शम-तनु नहीं है, वह पतित अवस्था है। शन्तनु स्वर्ग से पतित राजा महाभिषक् है। यही कारण है कि शन्तनु के पुत्र चित्रांगद और विचित्रवीर्य कमजोर हैं।

शन्तनु और सत्यवती– सत्यवती को निषाद ने मत्स्य के पेट में से पाया था। उपरिचर वसु का वीर्य मछली के गर्भ में स्थापित होने से सत्यवती का जन्म हुआ था। अन्नमय कोश के प्रतीक निषाद की जीविका विज्ञानमय कोश के दैवी आपः में उत्पन्न हुए मत्स्यों पर चला करती है जो उसके हाथ लग जाते हैं। मत्स्य का तात्पर्य दैवी आपः के सजीव तत्त्व से हो सकता है। (द्र० मत्स्य)। इन मत्स्यों से कभी-कभी भारी शक्ति का अवतरण भी अन्नमय कोश में हो जाया करता है। सत्यवती उसी भारी शक्ति का प्रतीक है। सत्यवती नौका में बैठाकर पार लगाने वाली है। महर्षि पराशर से समागम होने पर सत्यवती व्यास (विस्तीर्ण व्यक्तित्व) को जन्म देती है। लेकिन यह व्यास व्यक्तित्व उत्पन्न होते ही अदृश्य हो जाता है– जंगल में चला जाता है। पराशर से समागम का लाभ सत्यवती को यह होता है कि अभी तक वह मत्स्य गंधा थी। अन्नमय कोश में जो दैवी आपः अवतरित होता है, वह दुर्गन्धयुक्त हो ही जाता है। पराशर के वरदान स्वरूप वह पुण्यगन्धा हो जाती है। ऐसा पका हुआ अन्नमय कोश अपनी शक्ति उच्चतर कोशों (शन्तनु) को देने, उनसे विवाह सम्बन्ध स्थापित करने में सक्षम हो जाता है। लेकिन अन्नमय कोश मांग कर रहा है कि राजा उसकी पुत्री के पुत्र को ही होना चाहिए, भीष्म के रूप में अवतरित वसु को नहीं।

शन्तनु रूपी शान्त व्यक्तित्व और सत्यवती से चित्रांगद और विचित्र वीर्य उत्पन्न होते हैं।

शम्बर (ऋ० १.५१.६)– मेरुदंड के निचले सिरे मूलाधार से लेकर सिर तक प्राणों के सौ पुर हैं। उन सौ पुरों पर आधिपत्य जमा कर एक महाराक्षस बैठा हुआ है। जिसका

नाम है शम्बर। जब यह सौ प्राणों के केन्द्र असुरों के अधिकार में आ जाते हैं तभी दुष्प्रवृत्तियाँ, रोग आदि होते हैं। पुराणों में शम्बर सूतिका गृह से प्रद्युम्न का हरण करके उसे समुद्र में फेंक देता है।

शुन:शेप (ऋ० १.२४)– शुन:शेप की कथा प्रसिद्ध है। शुन:लांगूल, शुन:शेप और शुन:पुच्छ, तीन भाई हैं। जब यज्ञ के बलि पशु के रूप में पुत्र को बेचने की बात आई तो बड़ा भाई तो माता को प्रिय है, छोटा भाई पिता को, केवल बीच का शुन:शेप बलि के लिए बचा रहता है। बड़ा भाई शुन:लांगूल मनोमय कोश है जो आत्मा रूपी माता को प्यारा है। छोटा भाई शुन:पुच्छ अन्नमय कोश है जो पितरशक्ति रूपी पिता को प्यारा है। मध्यम शुन:शेप प्राणमय कोश है जिसकी बलि दी जानी है। विज्ञानमय कोश से जुड़ने पर यह देवरात (देवों का धन) हो जाता है।

शृङ्ग (ऋ० ८.८६.५)– जब मानव में अव्यक्त और व्यक्त रूप में दो व्यक्तित्व हों तो वह दो सींग वाला पशु कहलाता है। जब ये दोनों व्यक्तित्व ध्यानावस्था में एक बन जाते हैं तो वह एक शृङ्गी पशु कहलाता है। वह ज्ञान की, प्रकाश की, आनन्द की वर्षा करने वाला हरिण: वृषा बन जाता है।

शृङ्गार– शृङ्ग अर्थात् चोटी पर पहुँचने वाला। वह आनन्द जो भीतर ही भीतर अनुभव किया जाए।

शुक्राचार्य और बलि– जब बलि वामन को तीन पग भूमि देने का संकल्प लेने के लिए कमण्डलु से जल लेने लगा तो गुरु शुक्राचार्य ने कमण्डलु के मुख में घुस कर जल का निकलना रोक दिया जिससे बलि संकल्प न ले सके। बलि ने एक तृण द्वारा कमण्डलु का मुख खोला तो शुक्राचार्य की एक आँख फूट गई। तब जल निकल पड़ा। असुर शक्तियों का पालन करने वाले शुक्राचार्य की जब भोग की आँख फूट जाएगी तभी बलि के यज्ञ का विस्तार हो सकेगा।

श्येन (अथर्व० ७.४२)– आत्मा की वह शक्ति जो ऊपर की ओर, आनन्दमय कोश की ओर गति करती है। दूसरे शब्दों में, चेतना बहिर्मुखी से अंतर्मुखी होती है।

श्रव (ऋ० १.९.७) (शोर)— इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त ज्ञान श्रव कहलाता है। श्रव से विश्रवा शब्द (कुबेर और रावण का पिता) बना। श्रव ज्ञान जब श्रुत ज्ञान बनता है तब हमारे काम आता है।

श्रवणकुमार– श्रवणकुमार अपने बूढ़े और अंधे माता-पिता के लिए सरयू नदी से पानी भर रहा था कि दशरथ के शब्दवेधी बाण ने उसे मार दिया। इससे दशरथ को शाप मिला कि उसकी मृत्यु भी पुत्र वियोग से होगी। श्रवणकुमार का जन्म शूद्र माता और वैश्य पिता से हुआ है। (वाल्मीकि रा०) शूद्र अन्नमय कोश का और वैश्य प्राणमय कोश का प्रतीक है। श्रवणकुमार रूपी हमारे श्रव, शोर या इन्द्रियाँ इन्हीं अंधे और बूढ़े माता-

पिता के लिए पानी भर रहे हैं। दशरथ इस श्रव को समाप्त करता है। इसका परिणाम स्पष्ट है— मन का ऊर्ध्वमुखी होना और परब्रह्म रूपी राम के वियोग में तड़पना। श्रवणकुमार की कथा को कारुणिक बनाने का कारण यह है कि मन का ऊर्ध्वमुखी होना, भोगों का छूटना सामान्य जन के लिए बहुत दुखदाई है।

श्रावणी पर्व (रक्षा बंधन)— श्रावण का अर्थ है जहाँ श्रवण किया जाए, अनाहत नाद का श्रवण। पूर्णिमा का अर्थ है जहाँ शक्ति की पूर्णता हो जाए, शक्ति १६ कलाओं से सम्पन्न हो जाए। मास का अर्थ है प्रकाश।

षड्-उर्वी (अथर्व० ४.११.१)- अन्नमय से मनोमय तक तीन लोकों की मानुषी त्रिलोकी और मनोमय से आनन्दमय तक तीन लोकों की दैवी त्रिलोकी को मिलाकर छह लोकों को षड्-उर्वी कहते हैं।

सप्तवध्रि (अथर्व० ४.२९.४)- पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि जिसके सब शान्त हो गए।

सप्तर्षि (ऋ० १०.१०९.४)- हमारी पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि यह सात सप्तर्षि हैं। मोहनजोदड़ों हरप्पा की मुद्राओं में एक चित्र मिलता है जिसमें सप्तर्षि अश्विनों के बराबर में चुपचाप खड़े हैं। समाधि से व्युत्थान की अवस्था में केवल अश्विनौ प्राण-अपान के रूप में उपस्थित रहते हैं, सप्तर्षि चुपचाप खड़े हो जाते हैं, अपना व्यापार छोड़े होते हैं।

सभा, समिति, संसद (अथर्ववेद ७.१३)— सभा और समिति प्रजापति की दो पुत्रियाँ हैं। मनोमय कोश समिति है जिसमें सभी इच्छाएँ, भावनाएँ एक साथ आते हैं लेकिन अलग-अलग अस्तित्व रखते हैं। सभा में सब मिल कर एकजुट हो जाते हैं, सब सभासदों की आवाज एक हो जाती है। यह विज्ञानमय कोश है। समाधि की अवस्था सभा है तो समाधि से व्युत्थान की अवस्था समिति। जब सभा और समिति दोनों मिल जाएँ तो यह संविद अवस्था होती है, जैसे राज्यसभा और लोकसभा का सम्मिलित सत्र। यह अवस्था हिरण्ययकोश में होती है। वहाँ सब इच्छाएँ, भावनाएँ केवल बीज रूप में होती हैं।

समह- ऐसा संगम जिसमें सब कुछ एक ही हो जाए। ऐसा समुद्र परमात्मा है। हमारी समस्त चेतनाएँ-क्रियाओं की, भावनाओं की, विचारों की, एक हो जाएं। (ऋ० ७.८१.३)।

समुद्र-मन्थन ब्रह्म— व्यक्तित्व के चहुंदिश विकास, वर्धन की संभावना समुद्र है। मन्दराचल पर्वत ज्ञान का प्रतीक है। सन्त जन देवता हैं। जैसे देवों ने समुद्र मन्थन करके अमृत निकाला था, ऐसे ही सन्त जन कथा निकालते हैं। भक्ति का माधुर्य अमृत के समान मीठा होता है।

सरस्वती (ऋ० १.३)— (क) प्रयाग में द्रष्टव्य गंगा और यमुना के संगम पर एक अदृश्य नदी सरस्वती और मिलती है। गंगा और यमुना को पवित्र करने का काम सरस्वती का है। सरस्वती के बिना गंगा जाह्नवी (श्रम का नाश करने वाली अवांछनीय, जह धातु) है और यमुना काली की पुत्री कालिन्दी है जिसमें कालिय नाग का निवास हो सकता है। अपने शुभ्र वर्ण से सरस्वती विचार, अभिव्यक्ति और क्रिया की पवित्रता का प्रतीक है। पर्वतों रूपी ज्ञानेन्द्रियों और मन रूपी समुद्र से निकलने वाली सभी नदियों (चेतना धाराओं) का शुद्ध एकीकृत रूप सरस्वती है। (वे० स० फरवरी ८६)

(ख) सरस्वती सौ अयस् के पुरों में बंद है। जब यह प्रवाहित होती है तब सब पुर ढह जाते हैं। यह आत्मा की चेतना है, वह चेतना जो परमात्मा से दिव्य चेतना के रूप में आ सकती है। ध्यान का अर्थ है इसे खोजना। सरस्वती हिरण्यवर्तनी-सुनहरी ज्योति का मार्ग है। जब यह आती है तो सोने की धारा की तरह चमचमाती हुई।

(ग) वेद की सरस्वती समुद्र से भी निकलती है और पहाड़ों से भी, जबकि सामान्य रूप से नदियाँ पहाड़ों से निकलकर समुद्र में गिरती हैं। सरस्वती सप्तविध सिन्धु माता है, वह चेतना है जो आनन्दमय कोश रूपी समुद्र से भी निकलती है और विज्ञानमय कोश रूपी गिरि से भी। विज्ञानमय कोश की शक्ति की अभिव्यक्ति जिन माध्यमों से होती है उसे गिरा वाणी कहते हैं। चूंकि सरस्वती को वाक् की अधिष्ठात्री माना जाता है, अत: वह गिरि से भी निकलती है।

सवन– यज्ञ में तीन सवन होते हैं— प्रात: सवन, माध्यन्दिन सवन और सायं सवन। अध्यात्म में ध्यान में ऊर्ध्व गति या आरोहण प्रात: सवन है। यह समाधि अवस्था तक ले जाता है। व्युत्थान अर्थात् समाधि से जागना माध्यंदिन सवन है। इससे समाधि अवस्था मे अर्जित की हुई शक्ति कर्मों में दक्षता के रूप में प्रकट होती है। सायं सवन प्राप्त शक्ति का सामाजिक हित के लिए उपयोग करना, अपने व्यक्तित्व का विस्तार करना है। यही सोमयाग, सम्पन्नतम यज्ञ है।

सिन्धु (अथर्व० ३.१३)– मन एक अथाह गभीर समुद्र है। यह पश्चिम समुद्र कहलाता है। इससे भी पूर्व एक और समुद्र है जो उत्तर समुद्र या विज्ञानमय कोश कहलाता है। इसी विज्ञान समुद्र के मंथन से १४ रत्न निकलते हैं।

सिंह– सिंह अहंकार का प्रतीक है। पुराणों में सिंह गौ या मनुष्य को मार देता है। लेकिन जिस सिंह के ऊपर देवी ने पैर रख दिया वह सिंह अहिंसक हो जाता है। राजा दिलीप जब गौ को बचाने के लिए सिंह को मारने लगे तो सिंह ने कहा कि मैं तो देवी का सिंह हूँ: तुम मुझे नहीं मार सकते।

सीता (अथर्व० ३.१७)– सिनोति इति सीता। जो बांध लेती है, वह सीता है। शरीर को बंधन में डाले रखने वाली शक्ति सीता है। लेकिन इसी शक्ति का यदि विकास कर

लिया जाए तो यह बंधनों से मुक्त करने वाली बन जाती है। यदि आत्मा अन्नमय कोश के स्तर तक सीमित रहता है, अपनी चेतना का विस्तार नहीं करता, तो सीता मूलाधार या कटि प्रदेश रूपी लंका में कैद रहती है। यदि राम सीता को कैद से मुक्त करना चाहें तो उसके लिए पहले शंकर को प्रसन्न करना होगा (शिवलिंग की स्थापना करनी होगी) और लंका तक एक सेतु का निर्माण करना पड़ेगा। शरीर में ध्यानावस्था में ज्योति का विकसित होता हुआ स्फुलिंग, प्रकाश का स्तम्भ, अग्निशिखा ही शिवलिंग है। रीढ़ की हड्डी की सहस्रार से मूलाधार तक पुल है।

सुग्रीव– राम राज्याभिषेक के समय सुग्रीव जल से भरा कलश लिए खड़े होते हैं। सु का अर्थ है ब्रह्मज्योति और ग्रीव गृ-विज्ञाने से बना है। अर्थात् सुग्रीव विज्ञानमय कोश के शुद्ध आप: के प्रतीक हैं।

सुदास (ऋ० ३.५३.११)– सुदास का अर्थ है सु-ब्रह्मज्योति को देने वाला। साधारणतया जीव असु को अपनाता और वितरण करता है। ऋग्वेद में सुदास का दस राजाओं से युद्ध होता है जो प्रसिद्ध है।

सुपर्ण गरुत्मान– जिसने अपनी आत्मा को गुरु बना लिया है, वह गरुत्मान है। वह विज्ञान प्रदान करता है। हम अपने ध्यान को इतना बढ़ाएं कि विज्ञानमय में पहुँच जाएँ। द्र० काकभुशुण्डि। नीचे से ऊपर की ओर आरोहण करना गरुड़ का कार्य है। अहं प्रधान जीव जब विज्ञानमय और आनन्दमय कोशों की ओर बढ़ता है तब गरुत्मान कहलाता है क्योंकि अब इसकी धर्म में रुचि बढ़ती है।

सुरसा– हनुमान द्वारा लंका पहुँचने के लिए समुद्र पार करते समय उन्हें सुरसा का सामना करना पड़ता है। रामायण की सुरसा वेदों की असूर्या नदी है। जब अगस्त्य ऋषि दक्षता प्राप्त करने के लिए दक्षिण दिशा मे जाते हैं तब भी यह असूर्या बीच में आती है। असूर्या अर्थात् दुर्बुद्धि, अनृत की बुद्धि। सरस्वती अर्थात् सत्य की बुद्धि। सरस्वती बहती रहे, असूर्या दब जाए, यही अभीष्ट है। असुर असूर्या नदी में स्नान करते हैं।

सूर्य– वह आत्मा जो ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेता है, सूर्य है।

सूर्या (ऋ० १०.८५)— साधना द्वारा मन को अंतर्मुखी करने पर जब मन ब्राह्मी शक्ति के सम्पर्क में आता है तो उसका नाम सूर्या है। सूर्य के समान जिसकी ज्योति है, उसकी पुत्री सूर्या है। इस सूक्त का विवाह यज्ञ में उपयोग किया जाता है। अश्विनौ सूर्या को अपने रथ पर बैठा कर लाते हैं। सूर्या के चार पति हैं। ब्राह्मी ज्योति अपने पति की इच्छा करते हुए आती है। स्थूल शरीर में आने से पहले यह शक्ति सूक्ष्म शरीर में आती है, उससे पहले विज्ञानमय में, उससे भी पहले हिरण्यय कोश में। इस प्रकार आत्मा को विभिन्न रूपों में शक्ति प्राप्त होती है। वे रूप सूर्या के पति हैं। अन्तिम पति मनुष्य-जातः

है। अथर्ववेद २.३० में कहा गया है कि हे अश्विनौ तुम जो ब्राह्मी ज्योति को लाते हो, यह तो तन मन की औषधि है।

सूरि– सु + उर। उरण अर्थत विस्तार। परब्रह्म परमात्मा की ज्योति जिसमें सबसे अधिक प्रकट हो। सूरि वह है जो अपनी ब्राह्मीशक्ति को प्रकट कर सकता है।

संवत्सर (ऋ० १०.९०)– (क) तप के अदृश्य प्रभाव के फलस्वरूप प्रकृति की साम्यावस्था में क्षोभ होता है। इस क्षोभ के परिणामस्वरूप महत् का प्रादुर्भाव होता है जो प्रकृति-विकृति कहलाता है। इसे ही शान्त और अशान्त आपः भी कहा गया है। यह परिवर्तन विज्ञानमय कोश का है। इस परिवर्तन के कारण विज्ञानमय और मनोमय के बीच सम्बन्ध पुनः स्थापित हो जाता है और विज्ञानमय अपने वत्स (मनोमय) के साथ (सं + वत्स + र) एकजुट हो जाता है। (वे० स० जुलाई ८३)।

(ख) विज्ञानमय कोश का पुरुष महापुरुष या संवत्सर कहलाता है। मनोमय कोश का पुरुष वेदपुरुष कहलाता है, प्राणमय कोश का पुरुष छन्दस् पुरुष कहलाता है और अन्नमय का शरीर पुरुष कहलाता है।

(ग) भौतिक दृष्टि से जिस वस्तु के पाक में एक वर्ष का समय लगे उसे संवत्सर कह सकते हैं। आंतरिक दृष्टि से सं + वत्स। जब परमात्मा और आत्मा जुड़ जाएं तब संवत्सर होता है। संवत्सर के १२ मास होते हैं, वैसे ही पिता-पुत्र के मिलन के बीच १२ सीढ़ियां हैं– १० इन्द्रियाँ, एक मन, एक अहंबुद्धि। इन बारह से ऊपर उठना है, तभी मिलन होगा।

स्तोम– स्तो का अर्थ है प्रस्तुत करना। म को प्रस्तुत करना। म को गहराई में ले जाना। हमारे जो प्राण मन्त्र बनाने वाले, मनन करने वाले हैं, उससे स्तोम बनता है। स्तोम विषैली चेतना को साफ करने वाला है। सात तरह के स्तोम बनते हैं।

स्व और स्वः (अथर्ववेद ४.२४)– स्व वह व्यक्तित्व है जिसे हम मां के गर्भ से लेकर आते हैं। स्वः हमारा ज्योतिर्मय व्यक्तित्व है जिसे हमें प्राप्त करना है।

स्वस्ति– निरंतर बदलने वाले के लिए भवति शब्द का प्रयोग किया जाता है। न बदलने वाले के लिए अस्ति शब्द का प्रयोग होता है। जिसमें न बदलना है, न स्थिर रहना, द्वंद से परे की अवस्था, वह स्वस्ति कहलाता है। यह स्थिति विज्ञानमय कोश में होती है। आशीर्वाद में दूसरों के लिए स्वस्ति दी जाती है– स्वस्ति नं इन्द्रो...। कंस की पत्नियों और जरासंध की पुत्रियों का नाम अस्ति और प्राप्ति है।

स्वधा और स्वाहा– स्वधा जिसका प्रयोग पितरों के लिए होता है, का अर्थ है स्व को धारण करना, उसकी रक्षा करना। स्वाहा, जिसका प्रयोग मनुष्य देवताओं के लिए करता है, का अर्थ है स्व को चारों ओर से त्याग देना, देवताओं को समर्पित कर देना।

हनुमान– हनुमान राम-राज्याभिषेक के समय दीपक दिखाते हैं। यह अग्नि तत्त्व के प्रतीक हैं। इसी कारण यह लंका को जला देते हैं। स्वामी गंगेश्वरानन्द के शब्दों में वेदों का अग्नि तो हनुमान ही है।

हनुमान तीन पिताओं के पुत्र हैं। हमारे शरीर में तीन बुद्धियाँ हैं। स्थूल बुद्धि इन्द्रियों के माध्यम से काम करती है। सूक्ष्म शरीर की बुद्धि सोचती-विचारती है और कारण शरीर की बुद्धि अनेकता से परे, एकता ग्रहण किए हुए है। इस स्थूल शरीर में जो आत्मा विभिन्न इन्द्रियों के माध्यम से काम कर रहा है वह है पवन पुत्र हनुमान। जो जीवात्मा काम, क्रोध, द्वेष, ईर्ष्या आदि से रहित है, आत्मा का मन युक्त वह रूप केसरि पुत्र हनुमान है। केसरि अर्थात् जिसके केसर, बाल हों, जैसे शेर की संतान केसरि, पुष्पों के बीच के भाग केसर, सूर्य का किरणें केसरि। आत्मा का जो सूक्ष्म रूप विज्ञानमय कोश में शं-शान्ति से युक्त है, यहाँ सारे द्वेष, काम, क्रोध आदि मिट जाते हैं, वह रूप शंकर पुत्र हनुमान है। दूसरे शब्दों में, एक ही आत्मा के तीन पक्ष हैं— क्रियापरक रूप इन्द्र, ज्ञानपरक रूप अग्नि और भावनापरक रूप सोम। यह तीनों शक्तियाँ उसे परब्रह्म परमात्मा से मिला रही हैं।

हयग्रीव– प्रलयकाल में ब्रह्मा द्वारा उगले तीनों वेदों (ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और भावना या इच्छाशक्ति) को हयग्रीव निगल लेता है। अतः यह तीनों विषैले हो जाते हैं, नीरस हो जाते हैं। इनके शुद्ध करने के लिए ऊं की शक्ति को अवतरित कराना होगा।

हरि (ऋ० १०.९६)– ध्यान में ब्रह्मानन्द की ज्योति हरे वर्ण की होती है। ब्रह्मानन्द को प्राप्त करने पर आत्मा हरि हो जाता है। इन्द्र के घोड़ों का नाम भी हरि है। मनोमय कोश के स्तर तक, जहाँ प्राणों में विविधता रहती है, यह घोड़े हरयः (बहुवचन) कहलाते हैं। उससे ऊपर की स्थिति में केवल दो हरि रह जाते हैं। अंत में केवल एक हरि ही शेष बचता है।

हरिण (अथर्ववेद ३.७.२)— हरि-परमात्मा, हरि नः— जो हम सब में बैठा है, ऐसा आत्मा। जब हमारे व्यक्तित्व में द्वैत समाप्त हो जाता है तो वह हरिणः वृषा-ज्ञान की, प्रकाश की, आनन्द की वर्षा करने वाला हो जाता है। द्रष्टव्य-शृङ्ग।

हवि– (क) ध्यान में आध्यात्मिक यज्ञ चल रहा है, उसमें हम अपने अंदर की हविश की, वासना की आहुति दे रहे हैं।

(ख) जाठराग्नि के लिए अन्न की हवि, प्राणाग्नि के लिए सांस की और मनः अग्नि (दर्शनाग्नि) के लिए विचारों, भावनाओं की हवि दी जाती है।

हव्य अग्नि– हव्य अग्नि आत्मिक आनन्द की भूखी है तो क्रव्याद अग्नि मांस के आनन्द की भूखी है।

हिमालय– वेदों में मानव व्यक्तित्व की एक कल्पना हिमालय के रूप में की गई है। अहंकार, वृत्रासुर, शम्बर आदि मिलकर हमारे मेरुदंड के १०० केन्द्रों को बर्फ की तरह जमा देते हैं, शतहिमा बना देते हैं, वह हिमवान व्यक्तित्व कहलाता है। जब इस हिमवान व्यक्तित्व से शुद्ध बुद्धि रूपी उमा का जन्म होता है, वही शिव से विवाह करने में समर्थ होती है, उसे ही शिव राम की कथा, अर्थात् आत्मा को परमात्मा कैसे मिलता है, सुनाते हैं।

हिरण्यस्तूप ऋषि (ऋ० १.३१)– वह जिसकी स्वर्णिम ज्योति (हिरण्य) एक स्तूप बन गई हो। अहंकार रूप वृत्र के तमोमय राज्य में हिरण्य के ऊपर स्तूप (आवरण) छाया रहता है। इस अवस्था में जीव की जो दृष्टि होती है वह हिरण्यस्तूप से संकेतित है। (वे० स० जुलाई, अगस्त ८३)

हिरण्याक्ष (ऋ० १.३५.८)– हिरण्यकशिपु का भाई जो वेदों को चुराकर समुद्र में घुस गया था और जिसे मारकर भगवान वराह ने वेदों का उद्धार किया था। हिरण्याक्ष अर्थात् जिसकी आँख हिरण्य (स्वर्ण) की तरफ रहती है। हिरण्याक्ष धारणा में बाधक है (गर्ग संहिता)। जब हिरण्य की भी चाह न रहे तब धारणा होती है।

(ख) हिरण्याक्ष रूपी अहंकार का नाश तब होता है जब कर्मों का श्रेष्ठतम रूप, यज्ञवराह प्रकट होता है।

पुराणों में वैदिक सन्दर्भ

भाग- २

प्रस्तुत सामग्री डॉ० फतह सिंह से मार्च-अप्रैल १९८९ के बीच व्यक्तिगत वार्तालाप पर आधारित है। यह सोचा गया था कि यहाँ प्रस्तुत कई शीर्षकों जैसे कुबेर पर पूरा शोध प्रबन्ध ही लिख दिया जाए। लेकिन यह कार्य लंबा है और इतने समय तक जिज्ञासुओं को आवश्यक सूचना से वंचित रखना उचित न होगा। अत: अर्जित सामग्री का प्रकाशन ज्यों का त्यों किया जा रहा है।

रेवती- (क) ऋतवाक् मुनि का पुत्र दुष्ट इसलिए हुआ कि उसका जन्म रेवती के अन्त में हुआ था। मुनि ने शाप देकर रेवती नक्षत्र को नीचे गिरा दिया। जहाँ वह नक्षत्र गिरा वह पर्वत रेवतक पर्वत नाम से प्रसिद्ध हुआ और अतीव रम्य बन गया। नक्षत्र गिरने से जो कमल सरोवर बना उससे एक सुन्दरी युवती रेवती निकली जिसका विवाह प्रमुच मुनि ने दुर्गम राजा के साथ कर दिया। विवाह रेवती नक्षत्र में ही हो, कन्या रेवती की इस मांग को पूरा करने के लिए प्रमुच मुनि ने नक्षत्र को पुनः आकाश में स्थापित कर दिया। दुर्गम राजा का पुत्र रेवत मनु हुआ। उसका समय रैवत मन्वन्तर कहलाता है। (मार्क० पु० ७५ अ०)

(ख) राजा रेवत ककुद्मी अपनी पुत्री रेवती को लेकर ब्रह्मा जी की सभा में हो रहे गंधर्व गायन को सुनने चला गया। जब वहाँ से लौटा तो बहुत से युग बीत चुके थे और उसकी नगरी के स्थान पर द्वारवती खड़ी थी। उसने अपनी पुत्री रेवती का विवाह बलराम से कर दिया। बलराम ने रेवती को हल की नोक से खींचकर मनुष्य के आकार जितना छोटा कर दिया। (देवी भागवत पु० ७.८)

(ग) भरद्वाज की बहन रेवती अत्यन्त कुरूप थी। उसकी वाणी में भी दोष था। भरद्वाज ने अपने शिष्य कठ से गुरुदक्षिणा के रूप में रेवती का विवाह उससे कर दिया। शिवाराधना और गंगा स्नान से रेवती ने अनुपम सौन्दर्य प्राप्त किया। (ब्रह्म पु० २.५१)।

रेवृ धातु प्लवन और गति अर्थात् उड़कर जाना, तैर कर पार करना, आदि अर्थों में है। तांड्य ब्राह्मण में गायत्री को ही रेवती कहा गया है। इतनी सूक्ष्म शक्ति रेवती के साथ राजा ककुद्मी अंतर्मुखी होकर ब्रह्मा जी की सभा का दिव्य गंधर्व गान सुन सकता है। लेकिन इस सूक्ष्म शक्ति की बाहर अभिव्यक्ति होने लगे, वह वाक् बन जाए, यह कठिन है। जब यह शक्ति पार्थिव स्तर पर व्यक्त होने लगती है तो रमणीयता छा जाती है। बलराम पार्थिव स्तर के प्रतीक हैं। रेवती की पार्थिव अभिव्यक्ति होने के पश्चात् पुनः अंतर्मुखी होकर रेवती को ऊपर उठाना श्रेयस्कर है।

वामदेव- परीक्षित को कहीं एक सुन्दर युवती दिखाई पड़ी जिसने परीक्षित से विवाह के लिए शर्त रखी कि वह कभी उदक न देखे। एक दिन एक वापी में उदक देखने पर वह उसमें अदृश्य हो गई। परीक्षित ने वापी के समस्त मंडूकों को मारने का आदेश दिया। इस पर मंडूकों ने मंडूकराज आयु को स्थिति से अवगत कराया। आयु ने परीक्षित से कहा कि वह युवती उसकी कन्या सुशोभना है। वह पहले भी कई राजाओं को इसी प्रकार धोखा दे चुकी है। अतः उसने शाप दिया कि उसके पुत्र ब्राह्मण-द्रोही होंगे। कालांतर में परीक्षित व सुशोभना से शल, दल और बल तीन पुत्र हुए। राजा शल एक दिन मृगया के लिए एक मृग के पीछे दौड़ा लेकिन वह हाथ नहीं आया। उसके मंत्री ने कहा कि यदि वाम्य घोड़े रथ में जुड़े हों तो मृग हाथ लग सकता है। उसने यह भी बताया कि वाम्य अश्व महर्षि वामदेव से प्राप्त हो सकते हैं। शल ने वामदेव से अश्व

लेकर मृग को तो प्राप्त कर लिया लेकिन अश्व लौटाने से इन्कार कर दिया कि ऐसे अश्वों से महर्षि को क्या काम, यह तो राजा के पास होने चाहिएं। इस पर वामदेव ने एक राक्षस के माध्यम से शल के चार टुकड़े कर दिए। फिर वामदेव ने दल से अश्व वापस माँगे। दल ने विष बुझे बाण से वामदेव को मारना चाहा लेकिन बाण से उसका १० वर्षीय पुत्र श्येनजित् ही मर गया। वह वामदेव को नहीं मार सका। वामदेव ने उससे कहा कि यदि वह रानी से विष बुझे तीर का स्पर्श करेगा तो ब्रह्म हत्या के पाप से मुक्त हो जाएगा। उसने ऐसा ही किया (महाभारत वनपर्व १९२ अ०)। परित: क्षीयते इति परीक्षित– जो चारों तरफ फैला हुआ है, हमारा जीवात्मा। मंडूक विविध प्राण हैं जो विज्ञानमय कोश में जुड़ कर एक प्राण आयु हो जाते हैं। उसकी कन्या सुशोभना मन की शक्ति हो सकती है। उदंचतीति उदक– जो ऊपर की ओर चले वह। उदक ऊपर की ओर चलने पर, अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होने पर सुशोभना, मन की शक्ति अदृश्य हो जाती है।

शल, दल और बल तीनों भाई स्थूल, सूक्ष्म और कारण देह के प्रतीक हो सकते हैं जबकि वामदेव स्वयं ब्रह्म है। शल द्वारा मृग की खोज ब्रह्म की खोज है। मृग अर्थात् जो मृग्य-ढूँढने योग्य है। इस ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए वाम्य अश्वों की आवश्यकता है। प्राण-अपान के रूप में अश्वों का पहला युगल है। उसके पश्चात् मन की अर्वाक-पराक् गति के रूप में अश्वों का दूसरा युगल है। इसी प्रकार अन्य उच्चतर युगल हैं।

शल गति के और आच्छादक के अर्थों में, दल-विदारण के अर्थ में और बल-प्राण के अर्थ में आता है। वामदेव ने राक्षस द्वारा शल के चार टुकड़े करा दिये। अभी तक शल रूपी स्थूल शरीर समझता था कि मैं शरीर ही हूँ। लेकिन अब उसके स्थूल शरीर, प्राण, मन और बुद्धि रूपी चार टुकड़े हो गए। दल का दस वर्षीय पुत्र श्येनजित् पाँच कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों वाला मन है जो श्येनरूपी अग्नि को जीतना चाहता है। विष बुझे बाण का अर्थ विषयुक्त और जिसमें विष बुझ चुका है, दोनों हो सकते हैं। ऐसे विष बुझ चुके ऊर्ध्वमुखी बाण से श्येनजित् की मृत्यु हो जाती है।

अदिति- (क) अदिति ने देवताओं के लिए अन्न पकाया। ब्राह्मण बुध ने अदिति से भिक्षा माँगी। अदिति ने नहीं दी। बुध ने उसके पुत्र को दूसरे जन्म में मृत होने का शाप दिया। वही विवस्वान् मार्तण्ड हुआ। (महाभारत शान्ति पर्व ३४२ अ०)

बुध ग्रह जब अधोमुखी होता है तो दैनिक जीवन की क्षुद्र प्रवृत्तियों जैसे खेलना आदि में अभिव्यक्त होता है। इसकी पत्नी का नाम इडा या इला (तर्कबुद्धि तथा अंत:प्रज्ञा) है। जब बुध ऊर्ध्वमुखी होकर तपस्या करता है तो यह ब्रह्मबोध कराता है। ऐसा ऊर्ध्वमुखी बुध ब्रह्मबोध कराने के लिए अदिति से अन्न की भिक्षा माँग रहा है जिससे अदिति मना कर रही है। अदिति दो प्रकार की है, एक वह जो परमात्मा के साथ रहती है, दूसरी वह जो आत्मा के साथ रहती है। दोनों अदिति सहस्त्रार चक्र में साथ-

साथ रहती हैं, सहस्रवण करती हैं। यदि अदिति बुध की प्रेरणा से ऊर्ध्वमुखी होने में असफल रहती है तो परिणाम स्पष्ट है कि उसका पुत्र विवस्वान् इस मर्त्य शरीर के स्तर पर अवतरित होकर मार्तण्ड बन जाएगा, शनि बन जाएगा। विवस्वान् वासनारहित जीव है जो अमृतत्व के स्तर पर ही रहता है। मार्तण्ड (मृत अण्ड) मर्त्य स्तर पर ही रहता है। (मा० पु० ९९)।

(ख) अदिति का एक नाम सहस्राक्षरा वाक् है। सहस्रार चक्र में ब्रह्मात्मसायुज्य की अभिव्यक्ति होती है जिसमें परब्रह्म और जीव दोनो की वाक् शक्ति (अभिव्यक्त हो रही शक्ति) एक साथ सहस्रवण करने के कारण सहस्राक्षरा वाक् कहलाती है। सहस्राक्षरा वाक् से पुनर्मिलन जीव का चरम लक्ष्य है। शक्ति के सहस्रवण से अलग हुए जीव की शक्ति का नाम दिति है।

(ग) अथर्ववेद ११.३ में कहा गया है कि दिति छाज (शूर्प) बने और अदिति उस छाज को पकड़ने वाली (शूर्पग्राही) बने। तब कूड़ा-करकट छाज से बाहर फेंका जा सकता है। इस प्रकार तमोगुणी दिति का सार्थक उपयोग तभी हो सकता है जब अदिति उसका उपयोग कूड़ा-करकट बाहर फेंकने के रूप में करे। तब दिति के पुत्र ४९ मरुत, अदिति-पुत्र इन्द्र के मित्र बन जाएंगे। अन्यथा दिति-पुत्र दैत्य देवताओं के शत्रु बने रहेंगे। (पुराण कथा इस प्रकार है कि इन्द्र द्वारा अपने पुत्र के मार दिए जाने पर दिति ने एक ऐसे पुत्र की कामना की जो इन्द्र को परास्त कर सके। इन्द्र ने एक बार दिति में त्रुटि या छिद्र पाकर उसके गर्भ के ४९ टुकड़े कर दिए जिन्हें बाद में दिति की प्रार्थना पर इन्द्र ने अपना मित्र बना लिया)

(घ) अदिति को उभयत: शीर्ष्णी वाक् कहा जाता है। इस तथ्य को समझने के लिए अदिति के पुत्र इन्द्र को तुरीय आदित्य कहा जा सकता है। तुरीय आदित्य से तात्पर्य तुरीय ब्रह्म से है जो जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति से अगली अवस्था है। इस तुरीय आदित्य के लिए भी प्रास्रव्य तुरीयातीत परब्रह्म है यह वाक् का एक शीर्ष है। उस अवस्था में जीव की व्यष्टिगत अदिति उस अदिति में लीन हो जाएगी जिसे वेद में अस्रवन्ती नौका (स्रवण न करने वाली नौका) कहा गया है। यह स्थिर अदिति परब्रह्म की वह शक्ति है जो अपने परम रूप में ध्रुवा रहती है। इस ध्रुवा अवस्था की जीव की शक्ति को अनिपद्यमान गोपा भी कहा जाता है। अदिति इस शक्ति को पद्यमान गोपा बना देती है। अवरोहण करने पर अदिति विभिन्न स्तरों पर अलग-अलग मिथुनों को जन्म देती है जिनके नाम धाता-अर्यमा, मित्र-वरुण, अंश-भग और इन्द्र-विवस्वान् आदि हैं।

(ङ) पुराणों में वसुदेव-देवकी को कश्यप-अदिति का अवतार कहा गया है। देवकी के पहले छह पुत्र जिन्हें कंस ने मार डाला था, षड्गर्भ कहलाते हैं। यह पहले मरीचि और ऊर्णा के पुत्र थे जिनके नाम स्मर, उद्गीथ, पतंग, परिष्वंग, क्षुद्रभृत् और घृणि थे (भागवत १०.८५)। यह शापवश कालनेमि (कंस) के पुत्र हो गए जिनके नाम

सुषेण, कीर्तिमान आदि थे। क्या इन पुत्रों का आदित्यों से सम्बन्ध है? क्या छह नाम छह पाशों जाति, कुल, शील आदि से सम्बद्ध हैं?

उच्छिष्ट (झूठन)— (क) वेद में उच्छिष्ट का बहुत महत्त्व है। भोजन करने के पश्चात् जो शेष रहता है वह उच्छिष्ट है। सबसे निचले स्तर पर हम जो भोजन करते हैं वह शरीर को पुष्ट करता है। शरीर को पुष्ट करने के पश्चात् बची शक्ति मन या मस्तिष्क को पुष्ट करती है। यदि भोजन को पचाने में अधिक शक्ति की आवस्यकता पड़े, जैसे अधिक मात्रा में भोजन करने पर, तो मस्तिष्क को मिलने वाली ऊर्जा जिसे उच्छिष्ट कह सकते हैं, नहीं मिल पाती जिससे नींद आ जाती है। ऐसी स्थिति विकास के प्रत्येक स्तर पर है। अतः साधना में यह आवश्यक है कि प्रत्येक स्तर पर उच्छिष्ट ऊर्जा प्राप्त हो।

(ख) अदिति ने ओदन पकाया। पहले उसने देवों को खिलाया और फिर स्वयं खाया। इससे उसे गर्भ रहा जिससे आदित्यों का मिथुन उत्पन्न हुआ। उसने पुनः ऐसा ही किया लेकिन फिर मिथुन ही उत्पन्न हुआ। अंत में उसने पहले स्वयं खाया और उच्छिष्ट देवों को खिलाया। इससे उसने केवल एक आदित्य को जन्म दिया जिसका नाम मार्तण्ड हुआ।

वर्तमान संदर्भ की अदिति परब्रह्म की शक्ति है। जब तक उस शक्ति को केवल उच्छिष्ट प्राप्त होगा, तब तक आदित्य मिथुन रूप में ही उत्पन्न होंगे अर्थात् अदिति की शक्ति का पार्थिव स्तर पर आरोहण और अवरोहण चलता रहेगा, वह स्थिर नहीं हो पाएगा। लेकिन यदि देव स्तर इतना पुष्ट हो चुका है कि सारी शक्ति पहले अदिति को प्राप्त हो रही हो तो फिर एक ही आदित्य-मार्तण्ड, विश्वमार्तण्ड उत्पन्न होगा जो आरोहण-अवरोहण से मुक्त होगा।

मृग- (क) साधारण अर्थों में मृग का अर्थ हिरण और मृगया का अर्थ शिकार खेलना लिया जाता है। मृग का अर्थ है मृग्यमाण, वह वस्तु जिसकी खोज की जा रही है, और मृगया का अर्थ है खोज करना।

(ख) रैभ्य मुनि कृष्णमृगचर्म ओढ़ कर वन में तपस्या कर रहे थे। उनके पुत्र परावसु ने उन्हें मृग समझ कर मार डाला। ऐसा भरद्वाज के शाप के कारण हुआ था। (महाभारत वनपर्व १३७)।

कृष्णमृगचर्म का अर्थ है खोजने की, परब्रह्म की खोज की चरम अवस्था को प्राप्त हो जाना, जहाँ कर्षण समाप्त हो सकता है। ऐसी स्थिति में परावसु रूपी पराशक्ति द्वारा वध, पराशक्ति की प्राप्ति स्वाभाविक है।

नारद और पर्वत- (क) नारद और उनका भानजा पर्वत दोनों राजा सृंजय के यहाँ पहुँचे। पर्वत ने जान लिया कि नारद सृंजय की पुत्री दमयन्ती में आसक्त है। उसने नारद को शाप दे दिया कि तुम्हारा मुख वानर का हो जाए। इस पर नारद ने पर्वत को शाप दिया कि तुम्हें स्वर्ग प्राप्त न हो। दमयन्ती से विवाह होने पर नारद का वानर मुख हो

गया। पर्वत मुनि तीर्थयात्रा करने चले गए। तीर्थयात्रा से लौट कर पर्वत ने अपना शाप वापस ले लिया। (महाभारत शान्तिपर्व २९)।

नारद और पर्वत एक ही तत्त्व के दो पक्ष हैं। नारद का जन्म दिव्य आप: के अन्नमय कोश में अवतरित होने से उत्पन्न नर प्राणों से हुआ है। पर्वत शरीर के पर्व-पर्व में बसे प्राणों का प्रतीक है। यह दोनों मित्र हैं। पर्वत को तीर्थयात्रा करने की आवश्यकता है, नारद को नहीं। नारद ऊपर-नीचे कहीं भी जा सकते हैं। जिस प्रकार भी हो सके, जहाँ भी परमात्मा के अनुग्रह की आवश्यकता दिखाई पड़े, चाहे असुरों में या देवों में, नारद उसकी पूर्ति करने का प्रयास करते हैं। ऋग्वेद ९.१०४ व ९.१०५ के ऋषि पर्वत नारदौ हैं। वानर से तात्पर्य है कि वा-नर अर्थात् जो नर प्राणों के साथ जुड़ भी सकती है, नहीं भी, जो मानुषी त्रिलोकी में भी हो सकता है, दैवी त्रिलोकी में भी।

(ख) राजा सृंजय की सेवा से प्रसन्न होकर पर्वत ने उसे वरदान दिया कि उसे इन्द्र के बराबर शक्तिशाली पुत्र प्राप्त होगा लेकिन वह अल्पायु होगा। नारद ने कहा कि पुत्र की मृत्यु के समय राजा नारद को याद करे। वह उसको दीर्घायु प्रदान करेंगे। कालांतर में राजा को सुवर्णष्ठीवी नामक पुत्र प्राप्त हुआ जिसके शरीर के मल से (थूक से) स्वर्ण प्राप्त होता था। इन्द्र ने उसे मारने के लिए व्याघ्र के रूप में अपने वज्र को भेजा जिसने शिकार खेलते हुए पाँच वर्षीय सुवर्णष्ठीवी का वध कर दिया। राजा सृंजय द्वारा नारद को पुकारने पर नारद ने उसे पुन: जीवित कर दिया। तब उसका नाम हिरण्यनाभि हुआ।

सृंजय शब्द सृ-गतौ धातु से बना है जिससे संसार भी बना है। जो संसार को जीतने चला है, या जिसने जीत लिया है वह राजा सृंजय है। सायण ने ऋग्वेद ४.१५.४ में सृंजय को देववाति का पुत्र कहा है। वात का निहितार्थ प्राणायाम है। ऐसे सृंजय का पुत्र सुवणष्ठीवी है। ध्यान में जगह-जगह स्वर्ण के बिन्दु दिखाई देने वाली यह स्थिति है। यह अल्पायु है क्योंकि पर्वत की शक्ति इतनी ही है। इसके पश्चात् ध्यान में एक अंतराल आ जाता है। अगली स्थिति हिरण्यनाभि की है, जहाँ एक केन्द्र बिन्दु (नाभि) से हिरण्य रूप ज्योति बंध जाती है। इस स्थिति को नारद प्राण ही उत्पन्न कर सकते हैं। व्याघ्र रूपी वज्र द्वारा सुवर्णष्ठीवी को मार दिए जाने का तात्पर्य यह हो सकता है कि घ्र-गन्धोपादाने। जब ध्यान में एक गंध उत्पन्न हो जाती है तो सुवर्ण बिन्दु रूपी स्थिति समाप्त हो जाती है।

मरुत्त– राजा मरुत्त ने बृहस्पति से अपने यज्ञ में पुरोहित बनने का अनुरोध किया। लेकिन इन्द्र ने बृहस्पति से कहा कि वह अब किसी मनुष्य का यज्ञ न कराए। नारद ने मरुत्त को बृहस्पति के अनुज संवर्त को पुरोहित बनाने के लिए कहा और बताया कि संवर्त वाराणसी मे उन्मत्त अवस्था में रहते हैं। उनकी पहचान का तरीका यह है कि जो शिव मन्दिर के आगे रखे शव को देखकर लौट जाए वही संवर्त है। संवर्त ने मरुत्त का यज्ञ कराना स्वीकार किया। इन्द्र ने कहा कि बृहस्पति यज्ञ करा सकता है लेकिन मरुत्त

ने अब नहीं माना। मरुत्त के यज्ञ में मरुद्गणों सहित सभी देवताओं ने सोमपान किया। मरुत्त के यज्ञ में ब्राह्मणों को दक्षिणा के रूप में बहुत धन प्राप्त हुआ। बाद में युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भी मरुत्त के यज्ञ से बचे धन का उपयोग किया गया। (महाभारत आश्वमेधिक पर्व ६)

मरुद्गण मानुषी और देवी दोनों त्रिलोकियों में हो सकते हैं। लेकिन मरुत्त का यज्ञ मानुषी त्रिलोकी के यज्ञ का प्रतीक है। बृहस्पति, बृहती बुद्धि का पति, केवल देवों का यज्ञ करा सकता है। मनुष्यों का यज्ञ तो संवर्त अर्थात् जिसने अपनी चित्तवृत्तियों को संवृत्त कर लिया हो, समेट लिया हो, वही करा सकता है। संवर्त शिव (शव + ई शक्ति) के दर्शन करना चाहता है। यदि वह केवल शरीर रूपी शव देखेगा तो लौट जाएगा। एक बार संवर्त के पुरोहित बन जाने पर फिर बृहस्पति भी पुरोहित बन सकता है। स्वभावत: चित्तवृत्तियों का निरोध कर लेने पर प्रभूत आध्यात्मिक धन प्राप्त होगा।

मुसल– राजा विदूरथ ने अपने राज्य में भूमि में बहुत से जृंभ (गर्त) देखे। ज्ञात हुआ कि वह जृंभ कुजृंभ नामक राक्षस ने बनाए हैं जो पाताल तक जाते हैं। उस राक्षस के पास विश्वकर्मा की बनाई एक मुसल भी है। कुजृंभ ने विदूरथ की पुत्री राजकुमारी मुदावती का अपहरण कर लिया। भलंदन के पुत्र वत्सप्री ने गर्त में प्रवेश करके राक्षस से युद्ध किया। राक्षस ने मुसल का उपयोग करना चाहा लेकिन मुसल व्यर्थ हो गया क्योंकि मुदावती ने उसे अपनी अंगुलियों से छू दिया था। उसे पता था कि यदि मुसल को कोई स्त्री स्पर्श कर दे तो उसकी शक्ति एक दिन के लिए व्यर्थ हो जाती है। वत्सप्री (ऋ० ९.६८ का ऋषि) ने राक्षस का वध करके मुदावती से विवाह कर लिया। मुसल का नाम अब मुदावती के स्पर्श करने के कारण सुनन्दा हो गया और वह नागों के अधिपति अनंत या शेष को मिल गया। (मार्कण्डेय पुराण ११६)

विदूरथ– विद्-ज्ञाने, जिसका रथ ज्ञान युक्त है। उसे ही अपने देवराज्य में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि के गर्त दिखाई पड़ते हैं जिनसे आग निकला करती है। यह सब गर्त कुजृंभ के बनाए हुए हैं। इस कुजृंभ के पास श्वास का आना-जाना (प्राणापानौ) के रूप में एक मुसल है। यह मुसल ऊपर के स्तरों पर रूपांतरित होती जाती है (मन की अर्वाक्, पराक् गति आदि)। यदि इस मुसल का नारी, मुदावती रूपी मोद देने वाली पराशक्ति से स्पर्श हो जाए तो फिर राक्षस इसका उपयोग नहीं कर पाएगा। तब मुसल का नाम सुनंदा हो जाएगा जो अनन्त या बलराम का आयुध है।

उलूखन और कृष्ण– यशोदा ने कृष्ण को उलूखन से दाम (रस्सी) द्वारा बांधना चाहा लेकिन हर बार दाम दो अंगुल छोटी रह जाती थी। अंत में श्रीकृष्ण स्वयं ही उलूखन से बंध गए।

नन्द और यशोदा द्रोण वसु और उनकी पत्नी धरा हैं। यह पार्थिव स्तर की धरा पार्थिव वृत्तियों (दम) से ही श्रीकृष्ण को बांधना चाहती है जो संभव नहीं है। ब्राह्मण

ग्रंथो से ऐसा संकेत मिलता है कि उलूखल के विकास के कई स्तर हैं। पहले स्तर में यह अग्नि की नाभि है। दूसरे स्तर में यह अन्तरिक्ष है। तीसरे स्तर में यह उदुम्बर, ऊं की ओर जाने वाली शक्ति है। अथर्ववेद में उलूखल को काम और मुसल को चक्षु कहा गया है। इसका तात्पर्य है कि काम धीरे-धीरे विकसित होकर ऊर्ध्वमुखी काम बनेगा और बनेगा तब जब चक्षु रूपी मुसल इसके साथ होगी, सतत् अवलोकन होगा। यास्क के अनुसार उलूखन का अर्थ है उरु खं, विस्तृत आकाश। साधना में पहला चरण दम है, फिर शं, फिर खं।

कर्मकाण्ड में पहले लकड़ी के दो फलकों के ऊपर कृष्ण मृगचर्म बिछाया जाता है। उसके ऊपर उलूखल रखकर उसमें अन्न कूटा जाता है। उलूखन से छिटक कर जो दाने मृगचर्म पर गिर जाते हैं उन्हें एकत्र कर लिया जाता है। इस संदर्भ में ऋग्वेद १.२८ पठनीय है)।

उलूखन और मुसल– स्थूल शरीर के स्तर पर श्वास प्रश्वास रूपी मुसल शरीर रूपी उलूखन पर चल रही है। इससे शरीर का तुष रूपी मल बाहर निकाला जा रहा है।

अष्टावक्र- (क) उद्दालक मुनि के पुत्र का नाम श्वेतकेतु और पुत्री का नाम सुजाता था। सुजाता का विवाह कहोड मुनि के साथ हुआ। एक बार सुजाता के गर्भ में स्थित पुत्र ने कहोड मुनि को टोका कि वह वेदों का गलत उच्चारण कर रहे हैं। कहोड मुनि ने गर्भ के पुत्र को शाप दे दिया कि तू गर्भ में रह कर ही इतना टेढा बोलता है, तू आठ स्थानों पर वक्र हो जा। वही अष्टावक्र हुआ। (महाभारत वनपर्व १३२)

उद्दालक अर्थात् उत् + दालक, जिसने ऊपर की ओर चलना आरम्भ किया है। उसकी पुत्री का नाम सुजाता है। सुजाता का पति कहोड, जो क या प्रजापति से होड या प्रतिस्पर्धा करता है, यह जीवात्मा। गर्भ से तात्पर्य विज्ञानमय कोश का गर्भ है जहाँ वेदों का ज्ञान स्वत: ही हो जाता है। यह गर्भ आठ प्रकार से टेढा है— पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, अहं, बुद्धि और महत् बुद्धि। ऋग्वेद १०.१११। सूक्त के ऋषि का नाम अष्टदंष्ट्र है— जो आठ प्रकार से काटता है। जीवात्मा की पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, अहं बुद्धि और महती बुद्धि, आठ प्रकार से उसका दंशन करती हैं। (द्र० कल्याण साधना अंक पृ० २४६ घृणा, लज्ञा, भय, शंका, जुगुप्सा, कुल, शील, जाति)।

काक– (क) वेद शिरा मुनि विन्ध्य पर्वत पर तपस्या कर रहे थे। वहीं अश्वसिरा मुनि ने आकर तपस्या करनी चाही। वेदशिरा मुनि ने अश्वशिरा से वहाँ तपस्या न करने के लिए कहा। न मानने पर दोनों ने एक दूसरे को शाप दे दिया। वेदशिरा रमणक द्वीप में कालिय नाग बने। अश्वशिरा नील पर्वत पर काक (काकभुशुण्डि) बने। (गर्ग संहिता वृन्दावन खंड, अध्याय १३)।

वेदशिरा उस जीवात्मा का प्रतीक है जो ज्ञानमार्ग से ऊपर चढ़ता है। विन्ध्याचल

पर्वत अहंकार का पर्वत है। स्वभावतः ज्ञानमार्ग में अहंकार को प्रमुख स्थान मिल जाता है जिससे वेदशिरा को कालिय नाग बनना पड़ता है जिसका विष तभी दूर हो सकता है जब श्रीकृष्ण उसका दमन करें। दूसरी ओर अश्वशिरा (अश् व्याप्तौ-सर्वत्र व्याप्त हो जाने वाली भावना शक्ति है, ज्ञान और क्रिया शक्ति नहीं) भक्ति मार्ग से ऊपर चढ़ने वाला जीवात्मा है जिसे नील पर्वत पर काक नना पड़ता है। नीला रंग भक्ति का प्रतीक है? रामायण में काकभुशुण्डि भक्ति मार्ग के साधक हैं। गरुड़ जो ज्ञान मार्ग के साधक हैं, काकभुशुण्डि से शिक्षा ग्रहण करने जाते हैं और काकभुशुण्डि से रामायण सुनते हैं। कर्मकाण्ड में काक को श्राद्ध में सर्वप्रथम पितृबलि दी जाती है। काक पितरशक्तियों का, हमारी सहज पितरशक्तियों का प्रतीक है। काक का जैसा रंग है, वैसी ही उसकी वाणी भी कर्कश है। वह कुछ छिपाता नहीं है। इसी प्रकार भक्त भगवान् के सामने सब कुछ खोलकर रख देता है।

(ख) राजा मरुत्त के यज्ञ में रावण मरुत्त को जीतने की अभिलाषा से सारमेय (कुत्ते) का रूप धारण करके आया। उसके भय से देवता विभिन्न पक्षियों का रूप धारण करके छिप गए, जैसे इन्द्र मोर के रूप में, कुबेर गिरगिट के रूप में। धर्मराज ने वायस का रूप धारण किया। बाद में उन्होंने वायस को वरदान दिया कि तुम्हें श्राद्ध में सर्वप्रथम बलि प्राप्त होगी। (वा० रामायण ७.१८)

कुबेर- (क) अथर्ववेद ८.१३ में कुबेर विराज् वाक् रूपी गौ का वत्स बनता है और गौ से तिरोधान विद्या का दोहन किया जाता है। महाभारत द्रोणपर्व अ० ६९ में भी यही कथा पृथु की गौ के रूप में दी गई है। तैत्तिरीय आरण्यक १.३१ में वैश्रवण यज्ञ के मन्त्र दिये गए हैं जिनमें कुबेर से प्रार्थना की गई है कि वह हमारे सपत्नों (शत्रुओं) को जो शुद्ध आपः रूपी प्राणों को खा जाते हैं, तिरोहित करे। महाभारत वन पर्व अ० २८८ में रावण-पुत्र इन्द्रजित् का नाश तभी किया जा सका जब राम पक्ष के महारथियों ने अपने नेत्रों को कुबेर प्रदत्त जल से धोया जिससे उन्हें अदृश्य वस्तुओं के भी दर्शन होने लगे। ऐसा प्रतीत होता है कि यह तिरोधान विद्या चेतना को अंतर्मुखी करना है। चेतना को अंतर्मुखी करने के फलस्वरूप कुबेर को नौ निधियाँ प्राप्त हो जाती हैं, मन के अनुरूप चलने वाला पुष्पक विमान प्राप्त होता है। कुबेर का जन्म पुलस्त्य कुल में हुआ है। उसका पिता विश्रवा रावण आदि का भी पिता है (माताएँ अलग-अलग हैं)। इसका अर्थ है कि कुबेर रूपी जीवात्मा ने अंतर्मुखी होकर निधियाँ तो प्राप्त कर ली हैं, लेकिन उसका विस्तार इस शरीर रूपी पुर से बाहर नहीं हो सका है, वह इस पुर तक ही सीमित है (पुरस्त्यान या पुलस्त्य)। इस प्रकार कुबेर में राजसिक योग के फलस्वरूप सिद्धियाँ प्राप्त करने की कामना रहती है। इस योग के फलस्वरूप जो सिद्धियाँ और निधियाँ प्राप्त होती हैं, उनका हरण रावण रूपी तामसी शक्तियाँ भी कर सकती हैं (लङ्का का राज्य और पुष्पक विमान पहले कुबेर के पास था जिनका रावण ने अपहरण कर

लिया) और यदि साधना ऊर्ध्वमुखी हो जाए तो देवशक्तियाँ भी कर सकती हैं (राजा मरुत्त के यज्ञ में कुबेर प्रदत्त धन का उपयोग हुआ था)।

पुराणों में वैदिक सन्दर्भ

भाग ३

प्रस्तुत पौराणिक सामग्री डॉ० फतह सिंह से जुलाई और अक्तूबर १९८९ के बीच व्यक्तिगत वार्तालाप पर आधारित है। यह वार्तालाप श्रीमती माधुरी साहू द्वारा निघंटु में अश्व नाम पर अपना शोध प्रबंध लिखते समय तथा डॉ० फतह सिंह द्वारा वेदचक्षु ग्रंथमाला के लिए पृथिवी नामों पर विचार करते समय हुआ, अत: यह संकलन मुख्य रूप से पुराणों में अश्व और भूमि के कथानकों पर ही केन्द्रित है।

दीपावली– राजा अपने कुल देवता से ज्योति प्राप्त करता है। उस ज्योति से उसके सामंत ज्योति प्राप्त करते हैं। इस प्रकार ज्योति नीचे और नीचे अवतरित होती जाती है। इसका प्रतीक दीपावली है। वेद में दीपावली का प्रतीक यह मंत्र है–

आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयो अन्तरिक्षा।

तपा वृषन्विश्वत: शोचिषा तान्ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च॥ (ऋ० ६.२२.८)

अश्वमेध– (क) व्यास जी युधिष्ठिर से कहते हैं कि भीष्म ने अनंग पर विजय प्राप्त की थी। यदि तुम भी अनंग पर विजय प्राप्त करना चाहते हो तो अश्वमेध यज्ञ करो (जैमिनीय अश्वमेध पर्व)।

(ख) युधिष्ठिर के अश्वमेध उपरांत एक नेवला आया जिसने कहा कि यह यज्ञ तो एक उच्छवृत्तिधारी ब्राह्मण के द्वारा सेर भर सत्तू दान के बराबर भी नहीं है। एक ब्राह्मण और उसके परिवार ने स्वयं भूखे रहते हुए अपना भोजन अतिथि के लिए दे दिया था। उस सत्तू के भूमि पर गिरे कणों से उस नेवले का आधा शरीर कांचनमय हो गया। शेष आधे शरीर को कांचनमय बनाने के लिए वह प्रत्येक के यज्ञ में जाता है लेकिन आशा पूरी नहीं होती। (महाभारत अश्वमेध पर्व)

अनंग पर विजय पाना स्व पर विजय पाना है जबकि अतिथि को दान करना स्व के त्याग का प्रतीक है।

नकुल-सहदेव– यह सुझाव था कि चूंकि नकुल अश्वों का विशेषज्ञ है और सहदेव गौओं का, और यह अश्विनौ के अंश हैं, अत: नकुल को दस्र और सहदेव को 'नासत्य' कह सकते हैं। उत्तर— यहाँ अवस्था गौ अश्व जैसी है। एकमात्र गौ अश्व पशु है, बाकी सब अपशु हैं (तैत्तिरीय सं)। गौ ज्ञान शक्ति का और अश्व भावना शक्ति का (अश् व्याप्तौ) प्रतीक है। यह ज्ञानशक्ति और भावना शक्ति एक साथ मिलकर चलते हैं और मनुष्य व्यक्तित्व के हिरण्मय या आनन्द मय कोश तक जा सकते हैं।

शङ्का— इन्द्रियाणि हयानाहु: के अनुसार तो अश्व कर्मशक्ति का प्रतीक होना चाहिए। उत्तर: हय और अश्व अलग-अलग हैं।

मातलि– असुरों से लड़ते समय देवता हार जाते थे। तब देवों ने अपनी शक्तियों से इन्द्र के लिए एक रथ तैयार किया। इन्द्र ने रथ के सारथि की मांग की। देवों ने अपनी असमर्थता प्रकट की। तब इन्द्र पृथिवी पर गिर पड़ा। इन्द्र के गिरने से पृथिवी काँप उठी। इधर पृथिवी को काँपते हुए देखकर शमीक ऋषि की पत्नी शीला अपने पति से बोली कि वह पुत्र को पृथिवी पर रख दें। पृथिवी के काँपने पर उस पर रखी वस्तु द्विगुणित हो जाती है। वह बालक द्विगुणित हो गया। उसका दूसरा रूप अचेतन था। शीला ने बताया

कि यह बालक कारु और सूत कला विशेषज्ञ होगा। इस बालक को शमीक ने इन्द्र के सारथि कार्य के लिए नियुक्त कर दिया। यही मातलि है। (वामन पुराण ६९)

शमीक ऋषि शम् की उच्चावस्था है– जहाँ सब कुछ शाँत हो जाता है। ऐसी अवस्था में ब्रह्मानन्द रूपी सामरस जब अवतरित होता है, इन्द्र पृथिवी पर गिरता है, तो पृथिवी में कँपन उत्पन्न हो जाता है। यह ब्रह्मानन्द के जड़ शरीर में अवतरण की स्थिति है। ऐसी स्थिति में मनुष्य व्यक्तित्व की चेतना के दो भाग हो जाते हैं– एक तो बहुत गतिशील चेतना और दूसरी अपेक्षाकृत जड़ चेतना, यह हमारा अचेतन शरीर (मन को भी अचेतन कहा जाता है)। तब यह अचेतन तत्त्व इन्द्र का सारथि मातलि बन जाता है।

जरा– (क) ययाति शुक्राचार्य के शाप से बूढ़ा हो गया। एक दिन उसे वन में अश्रुबिंदुमती/विश्वाची अप्सरा मिली जो रति की पुत्री थी। जब रति अनंग के वियोग से आंसू बहा रही थी तो उन आंसुओं से शोक, मूर्छा, जरा आदि उत्पन्न हुए। फिर जब उसने सुना कि अनंग आ गया है तो उसके आनन्द अश्रुओं से अश्रुबिंदुमती का जन्म हुआ (पद्म पुराण २.७७)। अश्रुबिंदुमती ने ययाति से विवाह के लिए शर्त रखी कि वह युवा हो। ययाति ने अपनी जरा अपने चार पुत्रों यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु को देनी चाही, लेकिन उन्होंने नहीं ली। सबसे छोटे पुत्र पुरु ने जरा स्वीकार कर ली। राज्य पुरु को मिला। विवाह के पश्चात् अश्रुबिंदुमती ने ययाति से सशरीर स्वर्ग ले चलने का आग्रह किया। ययाति द्वारा असमर्थता प्रकट करने पर वह छोड़ कर चली गई। तब ययाति को शोक हुआ। उसने जरा अपने पुत्र से वापस ले ली और तप करने चला गया। फिर वह स्वर्ग में चला गया।

(ख) जरासंध दो टुकड़ो से उत्पन्न हुआ था जिन्हें जरा राक्षसी ने जोड़ दिया। अपने दामाद कंस के मरने पर जरासंध ने मथुरा पर अपनी गदा फेंकी। इस गदा के प्रतिकार के लिए बलराम ने अपना स्थूणाकर्ण अस्त्र छोड़ा। यह दोनों पाताल में रह रही जरा राक्षसी पर गिरे और जरा राक्षसी अपने बच्चों सहित नष्ट हो गई। (महाभारत द्रोणपर्व १८१.१२)

बलराम का स्थूणाकर्ण अस्त्र उनका हल ही कहा जा सकता है। यह हल इस शरीर पर चलाना है। यह हल यम, नियम, आसन प्राणायाम का है। इससे बुढ़ापा नष्ट हो जाएगा। स्थूणाकर्ण का अर्थ है कानों तक स्थूल। हमारी सारी इन्द्रियां कानों तक ही हैं। समाधि में जब सभी इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं तो एक दूसरी जरा-सायण और यास्क के अनुसार जृ-स्तुति के अर्थ में (अन्यथा जृ-जरणे) उत्पन्न होती है जो अपने जार (हिन्दी में यार) परमात्मा से प्रेम करती है। वेद में इसका नाम जराबोध साम है।

यदु– कर्म में प्रवृत्त जीवात्मा, तुर्वसु-तुर + वसु-जल्दी भावना में डूबने वाला, भक्ति मार्ग पर चलने वाला (तुर्वसु के लिए द्रष्टव्य-देवी भागवत ६.१७)। ऐसा प्रतीत होता है कि वेद का तुर्वसु पुराणों में दुर्वासा ऋषि के माध्यम से चित्रित किया गया है।

द्रुह्यु- आध्यात्मिक स्तर से प्रेम लेकिन स्थूल शरीर के स्तर से द्रोह करने वाला। यह विभिन्न स्तरों के बीच सेतु का कार्य करता है। पूरु— इस शरीर में सीमित जीवात्मा का रूप। यह ऊपर और नीचे, दोनों ओर जा सकता है।

अश्व विद्या और अक्ष विद्या- (क) नल अश्व विद्या को जानता था। लेकिन अक्ष विद्या (जुआ) में वह पुष्कर से हार गया। उसके शरीर में कलि प्रवेश कर गया। अंत में नल ने अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण के यहाँ रसोइये की नौकरी कर ली। नल की पत्नी दमयन्ती ने नल की खोज में ऋतुपर्ण को संदेश भिजवाया कि अगले दिन दमयन्ती स्वयंवर में दूसरे पति का वरण करने जा रही है। एक ही दिन में अयोध्या से कुंडिनपुर पहुँचाने की शक्ति अश्व विद्या के जानकार नल/बाहुक में ही थी। अत: वह ऋतुपर्ण का सारथी बना। रास्ते में ऋतपर्ण ने बिभीतक का पेड़ देख कर उसके पत्ते और फल तुरन्त गिन कर बता दिए। वह अक्ष विद्या जानता था। नल ने अश्व विद्या के बदले अक्ष विद्या सीख ली। अक्ष विद्या सीखते ही कलि उसके शरीर से निकल कर बाहर खड़ा हो गया।

(महा० वनपर्व के अंतर्गत नलोपाख्यायन पर्व)

नल के बार में पुराणों में वैदिक संदर्भ सूत्र प्रथम भाग में थोड़ा लिखा गया है। अक्षै: मा दीव्येत्, कृषिमित् कृषस्व। अक्ष, अपनी इन्द्रियों के साथ जुआ न खेले। उनका दुरुपयोग न करे। उनका उपयोग शक्ति के कर्षण के लिए, शक्ति का आरोहण करने के लिए करे। आँख को अक्षि कहते हैं। जब तक आँखे इधर-उधर जाती हैं, तब तक वह आंखों का जुआ है। नल अश्व विद्या जानता है। अश्-व्याप्तौ। अश्व का अर्थ होगा जिसकी चेतना व्याप्त हो गई है। यह सामूहिक आरोहण है। इसके विपरीत अक्ष जिससे प्रत्यक्ष, परोक्ष आदि शब्द बने हैं, सीधे आरोहण करने की, एकांगी साधना है। अक्ष विद्या जानते ही कलि बाहर निकल जाता है।

(ख) वनवास के दिनों में युधिष्ठिर बहुत डरे हुए थे कि यदि जुआ खेलने का निमंत्रण दोबारा मिला तो उनको स्वीकार करना पड़ेगा और वह हार जाएंगे। ऋषि बृहदाश्व ने उन्हें अश्वविद्या और अक्ष विद्या सिखा दी। अब वह जूए में नहीं हार सकते।

(महाभारत वनपर्व ५२ नलोपाख्यान)

विराट पर्व (महाभारत)— विराट पर्व में पाण्डवों का असली रूप प्रकट होता है। युधिष्ठिर विराट को अक्ष विद्या सिखाते हैं। उनका नाम कंक (कं-सुखं करोति इति) है। भीम पौरोगव (पाकशाला का अध्यक्ष) है या दूसरे अर्थ में पुरो गवि, पुरोवाक् है। यह विज्ञानमय कोश की वाक् है। भीम का नाम बल्लव-बल को काटने वाला है। वह कीचक (वंश, बांस) रूपी मन के बल का नाश करता है। भीम वायु है जो सोम को शुद्ध करता है। प्रथम दृष्टि में भीम का प्रतिनिधित्व मृगो न भीमो कुचरो गिरिष्ठः मंत्र करता प्रतीत होता है। अर्जुन नपुंसक है जिसका नाम बृहन्नला-बृहत् नल है। वह नर का अवतार है।

अब विराट नगर में वह बृहत् बन गया है। अब वह नपुंसक है (कर्मों से फल उत्पन्न नहीं करता)। नकुल-सहदेव अश्विनौ के रूप हैं जिनका नाम दस्र-दक्षता और नासत्य-सत्य और असत्य से परे समाधि की अवस्था है। नकुल का विराट नगर में नाम ग्ंथिक है। वह घोड़ों का विशेषज्ञ है। गीता में इन्द्रियाणि हयानाहु हरंति-इन्द्रियाँ अश्व हैं। इन्द्रियों के ऊपर नियंत्रण कर लेने पर, उनका ग्रंथन कर लेने पर मनुष्य कर्म मार्ग में दक्षता प्राप्त कर लेगा। यही अश्व विद्या है जिसको राजा नल जानता है लेकिन कलि से बच नहीं पाता है। फिर अक्ष विद्या सीखने पर ही वह मुक्त होता है। सहदेव गौओं का विशेषज्ञ है। उसका नाम तंतिपाल-ज्ञान रूपी गौओं की, ज्ञान रश्मियों की रक्षा करने वाला है। इस प्रकार सहदेव का नाम और काम नासत्य नामक अश्विनौ के रूप की व्याख्या करते हैं।

बडवानल– हैहय वंशी राजा ब्राह्मणों को मार कर उनका धन छीन रहे थे। एक ब्राह्मणी ने अपने ऊरु (जंघा) को फाड़कर उसमें अपना बच्चा छिपा लिया। जब हैहय वंशी उस ब्राह्मणी को मारने आए तो उस बच्चे ने ऊरु से निकल कर अपनी क्रोधाग्नि से उन्हें अंधा कर दिया। फिर वह क्रोधाग्नि सारे लोक को जलाने लगी तो उसे बडवा (घोड़ी) के रूप में समुद्र में डाल दिया गया। वह बडवा रूपी क्रोधाग्नि समुद्र का जल पीती रहती है। यह बडवाग्नि उदान का रूप है। (महाभारत वन पर्व २१९)।

ऊरु— विस्तीर्ण चेतना। ऐसी विस्तीर्ण चेतना से ऊर्ध्वमुखी क्रोध उत्पन्न होता है। इसे महाभारत में उदान प्राण की संज्ञा दी गई है। वेदों में उदान प्राण से देवमाता अदिति पाँच प्रकार के ओदन पकाती है। (देखें पुराणों में वैदिक संदर्भ सूत्र भाग २)। उदान प्राण का विकास होने पर हमारे चेतना समुद्र के सारे दोषों को यह बडवाग्नि पीने लगती है। बडवा परमात्मा की आनन्द वृत्ति है। (देवीभागवत में तुर्वसु-हैहय के प्रसंग में रमा बडवा का रूप धारण करके मर्त्यलोक में आती है)।

व्युषिताश्व– राजा पाण्डु कुन्ती से आग्रह कर रहे थे कि वह दूसरे राजा से पाण्डु के लिए पुत्र उत्पन्न करे। इस पर कुन्ती ने राजा व्युषिताश्व की कथा सुनाई जो अपनी पत्नी भद्रा पर अत्यधिक आसक्त होने के कारण राजयक्ष्मा रोग से ग्रस्त हो कर मर गया। तब आकाशवाणी हुई कि उसकी पत्नी भद्रा अपने पति के शव के साथ सोए। इससे उसे सात पुत्र प्राप्त होंगे। (महाभारत आदिपर्व १२०)।

व्युषित— वि-उषित, जिसमें उषा मर गई है, समाप्त हो गई है। ऐसा व्यक्ति राजयक्ष्मा रोग से मर ही जाएगा। चेतना के इस निचले स्तर के समाप्त होने पर ही चेतना के भद्र स्तर (अनकांक्शस स्तर) से सात पुत्रों के रूप में सप्त सिंधु लहराने लगेंगे।

हर्यश्वः दक्ष— असिक्नी के संयोग से १०० हर्यश्व पुत्र उत्पन्न हुए। दक्ष ने उनसे सृष्टि करने को कहा लेकिन नारद ने उन्हें बहका कर तप करने भेज दिया। तब दक्ष ने वीरिणी से १०० शबलाश्व पुत्र उत्पन्न किए। नारद ने उन्हें अपने बड़े भाइयों की खोज करने भेज दिया। तब दक्ष ने ६० कन्याएं उत्पन्न की जिनसे सृष्टि हुई। (पद्म पुराण १.६)।

वेद में हरि शब्द बार-बार आया है। यह परमात्मा का द्योतक है। हरि इन्द्र के घोड़े हैं। पहले यह हरय:— बहुत से हरि होते हैं। फिर चेतना के आरोहण पर केवल दो हरि रह जाते हैं। इससे भी ऊपर केवल एक ही हरि रह जाता है। हर्यश्व से सृष्टि उत्पन्न नहीं हो सकती।

ऋतंभर और जाबालि– ऋतंभर राजा बिना संतान था। उसने ऋषि जाबालि से संतान का उपाय पूछा। ऋषि ने कहा कि राजा गाय की सेवा करे। राजा गौ को जंगल में चराने ले गया। वहाँ राजा की पूरी सावधानी होने पर भी एक व्याघ्र आया और गौ को खा गया। राजा वापस लौटा और जाबालि से गौ हत्या निवारण का उपाय पूछा। जाबालि ने उसे अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण के पास जाकर उपाय पूछने की सलाह दी। राजा ऋतुपर्ण ने कहा कि राजा राम भक्ति करे और पुन: गौ की सेवा करे। (पद्म पु० ५.३०)।

ऋतंभर राजा की धेनु ऋतंभरा प्रज्ञा है (वह प्रज्ञा जिसके द्वारा यह ज्ञात हो जाए कि किस समय कौन सा कार्य करना है, त्रिकाल दृष्टि)। जाबालि ऋषि उपनिषदों में सत्यकाम है जो जबाला का पुत्र है। सत्यकाम से गुरु ने पूछा कि वह किसका पुत्र है? उसने उत्तर दिया कि मेरी माता कहती है कि उसने बहुत से ऋषियों की सेवा की है। पता नहीं वह किसका पुत्र है। ऋषि का अर्थ ज्ञानवृत्ति है। अज का अर्थ है जिसका जन्म नहीं, जो अजात है। जबाला के ज का अर्थ है वह सत्य जो जायमान है, जन्म ले सकता है। बाला का अर्थ है जिसने जायमान सत्य को बल दिया हो, उसे प्रज्वलित कर दिया हो। ऐसी जबाला ने सत्य को, ज्ञान को विभिन्न ऋषियों से एकत्र किया है। तभी सत्य उत्पन्न हो सकता है। उसी का पुत्र सत्यकाम है। वह जाबालि ऋषि है, वही ऋतंभर को सत्य बता सकता है। ऋत और सत्य का परस्पर संबंध है।

जंगल से व्याघ्र का आना ऋतंभरा प्रज्ञा में अहंकार का उत्पन्न होना है। (व्याघ्र के लिए देखें पुराणों में वैदिक संदर्भ सूत्र भाग १)। मैं प्रज्ञावान हूँ, ऐसा अहंकार ऋतंभरा प्रज्ञा रूपी गौ को खा जाता है। इस अहंकार को नष्ट करने का उपाय अयोध्यापति ऋतुपर्ण बताता है— रामभक्ति। इससे अहंकार नष्ट हो जाएगा। फिर राजा कौ की सेवा करे तो सन्तान उत्पन्न होगी। चित्तवृत्तियाँ जो अंतर्मुखी हैं, गौ कहलाती हैं।

उत्तंक और कूप– वसिष्ठ ऋषि की गौ नंदिनी वन में चर रही थी। वह एक श्वभ्र (कूप) में गिर पड़ी। वसिष्ठ खोजते हुए वहाँ पहुँचे। उन्होंने सरस्वती का आवाहन किया। सरस्वती ने वह श्वभ्र भर दिया तो नंदिनी गौ ऊपर आ गई। वसिष्ठ हिमवान के पास गए कि वह अपने पुत्र नंदिवर्धन को भेज दे जो श्वभ्र को भर दे। हिमवान ने डर कर नंदिवर्धन को भेज दिया जिसने अपने मित्र अर्बुद के साथ श्वभ्र को भर दिया। वसिष्ठ ऋषि के आश्रम के पास यह श्वभ्र कैसे बना, इसके बारे में ऋषि ने बताया कि सौदास की पत्नी मदयंती से कुंडल लेकर लौटते समय उत्तंक को भूख लगी। वह कृष्णाजिन में बंधे कुंडलों को भूमि पर रख कर बिल्व वृक्ष पर चढ़ा। तक्षक ने उन कुंडलों का

अपहरण कर लिया और एक बिल में घुस गया। उत्तंक ने उस बिल को एक काष्ठ दंड से खोदना आरम्भ किया। इंद्र का वज्र उस काष्ठ में प्रवेश कर गया। खोदते-खोदते वह नागलोक में पहुँचा। वहाँ एक सफेद घोड़ा खड़ा था। आकाशवाणी ने उत्तंक से कहा कि वह घोड़े के अपान में फूंक मारे। ऐसा करते ही नागलोक धूम्र से व्याप्त हो गया। नागों ने व्याकुल होकर कुंडल लौटा दिए। उत्तंक द्वारा खोदा गया वह श्वभ्र ही यह श्वभ्र है।

(स्कंद पुराण ७.३.१)

उत्तंक– उत्-तंक। तंक धातु दुख उठाने के अर्थ में है। उत्-ऊपर। उत्तंक तप का प्रतीक है। ऐसे तपस्वी के मार्ग में विभिन्न बाधाएँ अपना सिर उठाती हैं। भूख उनमें से एक है। इसी समय में उसकी सत्य की प्राप्ति-कुंडलों का हरण तक्षक नाग कर लेता है। तपस्वी फिर श्वभ्र खोदने के रूप में तप आरम्भ करता है। इन्द्र का वज्र-वज्र संकल्प-अटूट संकल्प का प्रतीक है। अश्व के अपान में फूंक मारने का अर्थ है कि उसने कुंभक प्राणायाम द्वारा प्राण और अपान को मिला दिया है। ऐसा करने से एक अश्व के रूप में अग्नि उत्पन्न होती है जिसके धूम्र से विषैला नागलोक व्याकुल हो जाता है और उत्तंक को कुंडलों की प्राप्ति हो जाती है।

उत्तंक की तपस्या ऐसी है जिसमें उसने अपने आनन्द को भी भुला दिया है। अत: उत्तंक के द्वारा खोदा गया श्वभ्र शुष्क है, आनन्द रहित है। वसिष्ठ की नंदिनी गौ उसमें गिर पड़ती है। सरस्वती-रस वाली जब इस श्वभ्र को रसमय बना देती है, जब परमानन्द रूपी रस प्राप्त होने लगता है तो नंदिनी, आनन्द वृत्ति का भी उद्धार हो जाता है। हिमवान पुत्र नंदिवर्धन का कार्य भी इस शुष्क श्वभ्र को आनन्द रस से पूर्ण करना हो सकता है। सौदास की पत्नी मदयन्ती शुद्ध अहंकार की आह्लादिनी शक्ति का प्रतीक हो सकता है।

द्यावापृथिवी– सोमकुल में उत्पन्न मित्रवर्मा की पत्नी पांड्य-कन्या मनोरमा से वियतराज राजा का जन्म हुआ। वियतराज की पत्नी धरणी है। वियतराज ने यज्ञ करते समय भूमि में स्वर्णमय हल चलाया और मुट्ठीभर बीज डाले। इससे उसे पद्मशय्या पर लेटी हुई एक कन्या पड़ी मिली, जैसे जनक को सीता मिली थी। राजा ने कन्या का नाम पद्मावती रखा। फिर वियतराज का पत्नी धरणी से एक पुत्र वसुदान उत्पन्न हुआ। एक दिन पद्मावती अपनी सखियों के साथ वन में खेलने गई थी। वहाँ एक सुंदर पुरुष अश्व पर सवार होकर आया और उसने पद्मावती से पूछा कि उसे ईहामृग की तलाश है। क्या उसने देखा है? पद्मावती ने उत्तर दिया कि इस वन में शिकार खेलना मना है। यदि राजा वियतराज को पता चलेगा तो वह दंड देगा। तब वह पुरुष लौट गया लेकिन वे दोनों एक दूसरे पर आसक्त हो गए। वह पुरुष भगवान् श्रीनिवास हैं। अंत में भगवान् श्रीनिवास की सखी बकुलमालिका और शुक की सहायता से पद्मावती का श्रीनिवास के साथ विवाह सम्पन्न हो जाता है। राजा वियतराज भक्ति रूपी वर प्राप्त करता है। पद्मावती कौन है, इस बारे में बताया गया कि अग्नि ने राम से अनुरोध किया था कि वेदवती सदा

सीता की सहायता करती है (अग्नि ने राम वनवास की अवधि में सीता की जगह छाया को रख दिया था। एक अन्य कथा में रावण द्वारा सती वेदवती को छू देने से सती जलकर भस्म हो गई थी, वही सीता बनी), अत: राम को वेदवती से विवाह कर लेना चाहिए। राम ने कहा कि वह कलियुग में जब वेदवती वियतराज की पुत्री बनेगी तब वह उससे विवाह करेंगे। (स्कंद पुराण २.१.३)

वेद में वियतराज (आकाश) और धरणी का साम्य द्यावापृथिवी है। द्यावापृथिवी को पिता और माता कहा जाता है। द्युलोक दिव्य है। ईहा मृग का शिकार (ईहा-चेष्टा) का अर्थ है कि श्रीनिवास चेष्टाओं को, इच्छाओं को मारना चाहते हैं लेकिन यह ईहामृग अब राजा वियतराज के वन में, द्युलोक में है, वहाँ यह अनंग काम है, पार्थिव काम नहीं। अत: यहाँ अनंग काम को मारा नहीं जा सकता। यह गीता का धर्म-अविरुद्धो काम: अहं है। अत: श्रीनिवास लौट जाते हैं।

वेद शब्द के दो रूप हैं— वेद और वेदस्। वेद शब्द शुद्ध सत्य है। लेकिन यह शुद्ध सत्य जब मर्त्यस्तर पर प्रवेश करता है, कलियुग में आता है तो वेदस् कहलाता है। यह वेदस् स्वरूप वेदवती है। इस वेदवती का स्पर्श रावण भी कर सकता है। यह वेदवती सीता की सहायता करती है।

सावित्री और गायत्री– ब्रह्मा ने यज्ञ में अपनी पत्नी सावित्री को लाने के लिए नारद को भेजा। सावित्री ने उत्तर दिया कि जब अन्य देवपत्नियाँ आ जाएँगी तब वह आएगी। ब्रह्मा ने पुन: पुलस्त्य को भेजा कि ब्रह्मा सोमभार से परिश्रांत हैं, सावित्री तुरन्त आए। सावित्री ने फिर वैसा ही उत्तर दिया कि पहले देवपत्नियों को लाने के लिए वायु को भेजा जाए। ब्रह्मा ने शक्र से कहा कि यज्ञ यानसमुद्भव काल व्यतीत होता जा रहा है। किसी कन्या को पत्नी के स्थान पर लाओ। इन्द्र ने एक तक्र बेचती हुई गोपकन्या को पकड़ कर उसका तक्र तो फेंक दिया और गोपकन्या को पकड़ कर गौ के मुख में डाला और अपान से बाहर निकाल लिया। इससे वह मेध्य, पवित्र हो गई। ब्रह्मा के साथ उसका विवाह हो गया। वही गायत्री है। (स्कंद पुराण ६.१८१)

इस प्रसंग का ब्रह्मा मनोमय कोश का ब्रह्मा है। हमारा मन ही ब्रह्म है। (ब्रह्मा अन्नमय, प्राणमय, मनोमय आदि स्तरों पर अलग-अलग हैं और इनकी संख्या ५ है)। एक सर्वोच्च स्तर का ब्रह्म है जो परमब्रह्म परमात्मा कहलाता है। मनोमय कोश के स्तर के यज्ञ में सावित्री तभी आ सकती है जब पहले अन्य देवपत्नियाँ भी आ जाएँ। गोपकन्या ऊर्ध्वमुखी चेतना रूपी गौ की मनोमय के स्तर पर अवतरित शक्ति है। मनोमय के स्तर पर आकर यह तक्र ही बेच सकती है, पयस तो ऊपर के कोशों में ही रह गया। शक्र, इन्द्र रूपी परब्रह्म परमात्मा को इस तक्र की आवश्यकता नहीं है, वह इसे फेंक देता है। इस गोप कन्या को मेध्य बनाने के लिए इन्द्र इसे ऊर्ध्वमुखी चित्तवृत्तियों रूपी गौ के मुख में डालता है। ब्राह्मण ग्रंथो में गायत्री श्येन बनकर स्वर्ग से सोम लाती है। यहाँ

मुख में गोपकन्या को डालकर अपान से निकालने का तात्पर्य यह हो सकता है कि मुख में सोमपान करने के पश्चात् फिर जब चित्तवृत्तियाँ निचले स्तर पर आती हैं तब वे मेध्य बन जाती हैं। वही गायत्री है। मनोमय के स्तर पर सावित्री नहीं आ सकती, जब तक अन्य देवपत्नियाँ भी न आ जाएँ। यहाँ गायत्री ही काम देती है।

सावित्री-सत्यवान की कथा को अब सरलता से समझा जा सकता है।

हिरण्याक्ष– हिरण्याक्ष दिति व कश्यप का पुत्र है। हिरण्याक्ष के पुत्र शम्बर, शकुनि, वृक, भूतसंतापन, हरिश्मश्रु आदि हैं। शम्बर ने कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न का प्रसूतिगृह से अपहरण किया। अंत में प्रद्युम्न ने शम्बर को मार दिया। शम्बर के शेष भाइयों का वध कृष्ण-पुत्रों ने उग्रसेन के राजसूय यज्ञ के अवसर पर अश्व की रक्षा करने के संदर्भ में किया। शकुनि का जीव रूपी शुक पांचजन्य द्वीप में सुरक्षित था। उस शुक को मारने के पश्चात् शकुनि का वध किया गया। शकुनि को वरदान था कि भूमि से स्पर्श होते ही वह जीवित हो जाएगा। अंत में उसे बाण मार-मार कर ऊपर और ऊपर ही रखा गया। इससे उसकी मृत्यु हो गई। हिरण्याक्ष की मृत्यु भगवान् यज्ञवराह द्वारा मुष्टि से मारने पर हुई। वह वराह द्वारा पृथिवी के उद्धार में बाधा डालता था। (गर्ग संहिता विश्वजित् खण्ड)

वेद में शम्बर के सौ पुर हैं। शम्बर का दैवी पक्ष शम्बर-शम् का भरण करने वाला कहा जा सकता है। शम्बर अर्थात् जो शम् को वृणोति, आच्छादन करता है। राजसूय यज्ञ साधना आरम्भ करने का प्रतीक है, ऊर्ध्वमुखी साधना (जबकि अश्वमेध-यज्ञ समाधि से व्युत्थान की अवस्था, समाधि से प्राप्त शक्ति को सारे राष्ट्र, सारे व्यक्तित्व में वितरित करने की साधना है। शम्बर का वध राजसूय यज्ञ से पहले ही हो जाता है। शकुनि रूपी मन का जीव शुक पांचजन्य द्वीप, पाँच इन्द्रियों में सुरक्षित है। यह जीवरूपी शुक पाँच इन्द्रियों से मुक्त होगा तभी मन ऊर्ध्वमुखी हो सकता है। लेकिन फिर भी यदि यह भूमि से सम्पर्क कर लेगा, कभी नीचे इन्द्रियों में आ जाएगा, तो फिर जीवित हो जाएगा। हिरण्याक्ष-पुत्रों की मृत्यु होने के पश्चात् हिरण्याक्ष के वध की बारी आनी चाहिए। उसकी मृत्यु वराह की मुष्टि से होती है। मुष्टि अर्थात् सारे व्यक्तित्व को समाहित कर लेना, बांध लेना, तब हिरण्याक्ष की मृत्यु हो सकती है।

शिला– युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ के लिए जो अश्व छोड़ा था, वह विन्ध्याचल पर्वत पर जाकर शिला बन गया। अंत में कारण पता लगा कि उद्दालक ऋषि की पत्नी चंडी बड़ी कर्कशा थी। जो उससे कहा जाता, वह उसका उल्टा करती। उद्दालक काम कराने के लिए पहले ही उससे उल्टा बोलते। एक बार गलती से उद्दालक कह बैठे कि यह पितरों के श्राद्ध का पिंड गंगा जी में डाल आओ। चंडी ने वह गंगा के बदले नाली में या भूमि पर फेंक दिया। इस पर उद्दालक ने उसे शिला बन जाने का शाप दे दिया। उसके सम्पर्क में आने से यज्ञ का अश्व भी शिला बन गया। उद्दालक ने उसे वरदान दिया था

कि जब कोई रामभक्त शिला का स्पर्श करेगा तब वह मुक्त हो जाएगी। अर्जुन का स्पर्श पाकर शिला और अश्व दोनों मुक्त हो गए। (जैमिनीय अश्वमेध पर्व)

उद्दालक ऋषि वह है जो ऊपर की ओर चलना चाहता है। उसकी पत्नी चंडी उसकी बहिर्मुखी वृत्तियाँ हैं जो उसकी आज्ञा का पालन नहीं करती, अंतर्मुखी नहीं होती। विंध्याचल पर्वत देह के अहंकार का प्रतीक है— अर्थात् मैं शरीर ही हूं, मैं शुद्ध-बुद्ध निरंजन आत्मा नहीं हूं। इस अहंकार रूपी पर्वत पर आकर यज्ञीय अश्व जो आत्मा के उस रूप का प्रतीक है जो सर्वत्र विचरण करता है, पत्थर बन जाता है, यहाँ से मुक्त नहीं हो सकता (अश्व-अश् व्याप्तौ)। इसका उद्धार रामभक्त ही कर सकता है।

गोकर्ण क्षेत्र– राजा मित्रसह/कल्माषपाद वसिष्ठ के शाप के कारण राक्षस हो गया। उसने वसिष्ठ के पुत्र शक्ति का भक्षण कर लिया। इससे बाद में ब्रह्महत्या पिशाची के रूप में उसके पीछे पड़ गई। वह जगह-जगह गया लेकिन ब्रह्महत्या से छुटकारा नहीं मिला। अंत में उसे गौतम ऋषि मिले। उन्होंने उसे गोकर्ण क्षेत्र में उपासना का परामर्श दिया। गौतम ने गोकर्ण क्षेत्र की महिमा के संबंध में एक कथा भी सुनाई।

(स्कन्द पुराण ३.३.२)

गोकर्ण क्षेत्र भ्रूमध्य से आरम्भ करके कानों तक जाता है। वास्तव में सिर का ऊपर का सारा भाग ही गोकर्ण क्षेत्र है। ध्यान में पहले ज्योति भ्रूमध्य से आरम्भ होकर कानों तक फैलती है।

प्रेत– गौतम ने वैष्णव वन में पाँच प्रेतों के दर्शन किए जो एक महावृक्ष पर आसीन थे। उनके नाम लेखक, रोहक, सूचक, शीघ्रग और पर्युषित थे। उनके नामों का कारण यह था कि पहले जन्म में किसी के भिक्षा माँगने पर लेखक भूमि खोदने लगता था, रोहक छत पर चढ़ जाता था, सूचक पीड़ा देता था, शीघ्रग दौड़ने लगता था और पर्युषित स्वयं स्वादिष्ट भोजन खाता था लेकिन भिक्षार्थी को पर्युषित/बासी भोजन देता था। गौतम ऋषि ने उनकी मुक्ति के लिए श्राद्ध किया जिससे चार प्रेत तो मुक्त हो गए लेकिन पर्युषित की मुक्ति नहीं हुई क्योंकि उसने तडाग के लिए नियत धन का हरण किया था। उत्तरायण में उसके लिए श्राद्ध करने पर वह भी मुक्त हो गया।

(स्कंद ७.१.२२३)

प्रेत-प्र + इत्। वेद में दो शब्द हैं— ईति और ऊति। ईति ई अग्नि के रूप में मूलाधार से उठकर ऊपर जाती है तो ऊति ऊं अग्नि या सोम के रूप में नीचे आती है। इस कथानक में पाँच प्रेतों के नामों का तात्पर्य अन्वेषणीय है कि यह पाँच कोशों अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और हिरण्मय से संबंध रखता है, या यह काम (लेखक), क्रोध (रोहक), लोभ (सूचक या सूचीमुख, जो किसी को देना नहीं चाहता), मोह (शीघ्रग, जो मोह के वशीभूत होकर अपने विषय की ओर शीघ्रता से

दौड़ता है)। और मद (पर्युषित, जिसकी मुक्ति सामान्य श्राद्ध से नहीं हो पाती, उसके लिए उत्तरायण, ध्यान का मार्ग अपनाना पड़ता है, काम, क्रोध, मोह आदि से मुक्त होने पर भी मद अर्थात् अहंकार से मुक्ति नहीं हो पाती) का प्रतीक है, या यह पाँच ज्ञानेन्द्रियों से सम्बन्धित हैं।

गौतम और निमि– इक्ष्वाकु-पुत्र निमि गौतम के आश्रम के पास जयंतपुर में रहता था। वह एक दीर्घकालीन राजसी यज्ञ करना चाहता था जिसके लिए उसने अपने पुरोहित वसिष्ठ से आचार्य बनने को कहा। वसिष्ठ ने उत्तर दिया कि अभी वह इन्द्र का पराशक्ति यज्ञ कराने जा रहे हैं. तब तक राजा निमि प्रतीक्षा करे। चूँकि यज्ञ की सारी सामग्री एकत्र की जा चुकी थी, अतः निमि ने गौतम को आचार्य बनाकर यज्ञ पूरा कर लिया। लौटने पर जब वसिष्ठ को ज्ञात हुआ तो उन्होंने निमि को विदेह/देहरहित हो जाने का शाप दिया। निमि ने भी वसिष्ठ को देहरहित होने का शाप दिया। दोनों विदेह हो गए। बाद में वसिष्ठ ने तो मैत्रावरुण के वीर्य के माध्यम से पुनः देह धारण कर ली, लेकिन निमि ने विदेह रहना ही पंसद किया। उसका निवास आँखों की पलकों में है। उसके शरीर का मंथन करने से विदेह जनक का जन्म हुआ। (देवी भागवत पुराण ६.१४)

निमि स्थिति आँख बंद करके ध्यान करने पर है। राजसी यज्ञ का अर्थ है रजोगुण की आहुति, उसे समाप्त् करना। गौतम, जो ज्ञान की पराकाष्ठा है, ऐसे यज्ञ का आचार्य बन सकता है। गौतम ऋषि या प्राण ऊर्ध्व स्तर पर रहना ही पंसद करते हैं, जबकि वसिष्ठ प्राण सारे शरीर में बसने वाले प्राण हैं। राजसी यज्ञ के पश्चात् रजोगुण समाप्त होने के पश्चात् ही निमि ध्यान में विदेह बन सकता है, देहभाव से रहित हो सकता है। निमि को मुक्त होने के पश्चात् देह की आवश्यकता नहीं है, जबकि वसिष्ठ को है।

गौतम-शिष्य और कूप– गौतम ने अपने तीन शिष्यों मेधावी, कपिल और सुमति को वन में फलमूल लाने के लिए भेजा। तीनों दोपहर को बिना फलमूल लिए लौट आए। गौतम ने क्रोधित होकर उन्हें पुनः भेजा। वह तीनों प्यासे थे। उन्होंने पहले अपनी प्यास बुझाई और फिर फलमूल की खोज में वन में गए। वहाँ वे तीनों तृण से आच्छादित एक कूप में गिर पड़े जहाँ सर्पदंश से उनकी मृत्यु हो गई। गौतम अपने शिष्यों को ढूंढते हुए कूप पर पहुँचे और यम को शाप देने को उद्यत हो गए लेकिन अन्य देवताओं ने उन्हें रोक दिया। वह तीनों शिष्य पुनः जीवित हो गए। उन्हें वेद स्वयं आ गए।

(स्कंद पुराण २.४.२ की टीका)

मेधावी, कपिल और सुमति तीनों ज्ञान पक्ष के हैं जिनमें इच्छा, ज्ञान और क्रिया की प्रधानता होनी चाहिए। फलमूल की खोज का अर्थ विषय भोगों की खोज हो सकता है जिनकी खोज में वह कूप में गिर पड़ते हैं।

ध्यान काष्ठ– सोमवंशी राजा नंद का पुत्र धर्मगुप्त मृगया के लिए वन में गया। वहाँ

रात्रि में वह विश्राम के लिए एक वृक्ष पर चढ़ गया। एक ऋक्ष। रीछ, जिसका पीछा एक सिंह कर रहा था, भी उस पेड़ पर चढ़ गया। ऋक्ष ने राजा से कहा कि पहले राजा सोएगा और और रीछ उसकी रक्षा करेगा, फिर ऋक्ष सोएगा और राजा उसकी रक्षा करेगा। जब राजा सो गया तो सिंह ने रीछ से कहा कि वह राजा को नीचे गिरा दे क्योंकि राजा तो उसका शत्रु है। रीछ ने कहा कि यह अधर्म है। फिर रीछ सोया तो सिंह ने राजा से कहा कि वह अपने शत्रु रीछ को नीचे गिरा दे। राजा ने रीछ को नीचे गिराना चाहा लेकिन रीछ गिरने से बच गया। रीछ ने सिंह से कहा कि वह तो रीछ के वेश में ध्यानकाष्ठ मुनि है। उसने राजा को उन्मत्त हो जाने का शाप दिया। रीछ ने सिंह के बारे में बताया कि वह पहले जन्म में कुबेर का सचिव भद्रनामा था जो गौतम के आश्रम में अपनी पत्नी के साथ निर्वस्त्र घूमने के कारण गौतम के शापवश सिंह बन गया था। गौतम ने यह भी कहा था कि जब सिंह का ध्यानकाष्ठ मुनि से संवाद होगा तो वह मुक्त हो जाएगा। अत: अब सिंह मुक्त हो गया। राजा धर्मगुप्त के उन्मत्त होने पर उसकी चिकित्सा की गई लेकिन वह ठीक नहीं हुआ। अंत में जैमिनि ऋषि के परामर्श से उसने धनुष्कोटि तीर्थ की यात्रा की जिससे वह ठीक हो गया। (स्कंद पुराण ३.१.३२)

कुबेर निधियों का रक्षक है। उसके सचिव में लोभवृत्ति उत्पन्न हो सकती है। यह लोभवृत्ति गौतम के ज्ञानमार्ग में बाधक है। यह लोभवृत्ति अपनी पत्नी ममता के साथ आती है। फिर यह अहंकार रूपी सिंह में परिणत हो जाती है। इस अहंकार का, लोभ का विनाश तभी होगा जब काष्ठ जैसा ध्यान लग जाएगा, एकदम जड़वत्। जो साधक ध्यानकाष्ठ मुनि को गिराने का प्रयत्न करता है,ध्यान का तिरस्कार करता है, उसकी मुक्ति के लिए उपाय है कर्ममार्ग में प्रवृत्ति, तीर्थयात्रा। जैमिनि कर्मकाण्ड के ज्ञाता हैं।

चिरकारी– अहल्या द्वारा इन्द्र के साथ मैथुन करने पर गौतम ने अपन पुत्र चिरकारी को आज्ञा दी की वह अपनी माता का सिर काट डाले। चिरकाल ने तुरन्त स्वीकार कर लिया। चिरकारी हर काम देर से करता था। वह देर से ही सोकर भी उठता था। गौतम वन में चले गए। वहाँ वह दुखी होकर सोचते रहे कि चिरकारी ने मेरी पत्नी का वध कर दिया होगा। वन से लौटने पर उन्होंने देखा कि चिरकारी अस्त्र लिए हुए है और अहल्या का वध करने की सोच रहा है। वह प्रसन्न हो गए कि अहल्या का वध चिरकारी की बिलम्ब से कार्य करने की वृत्ति के कारण नहीं हो पाया। (महा० शान्तिपर्व २६६ अ०)

इस कथा द्वारा दिखाया गया है कि गौतम रूपी ज्ञान शक्ति में संशय की वृत्ति विद्यमान रहती है जिसका लाभ कभी-कभी मिल जाता है।

स्कंद– (क) यास्क निघंटु में पृथिवी नामानि पर विचार करते समय स्कंद और गणेश पर विचार किया गया। सर्वप्रसिद्ध कथा के अनुसार गणेश और स्कंद में प्रतिस्पर्द्धा हुई कि पहले पृथिवी की परिक्रमा कौन करता है। स्कंद अपने वाहन मोर पर बैठकर सारी पृथिवी का चक्कर लगाने लगे। गणेश ने अपने वाहन मूषक पर बैठकर

अपने माता-पिता शिव-पार्वती का चक्कर लगा लिया। गणेश की विजय हुई। स्कंद रुष्ट होकर तप करने चले गए।

इस कथा से यह संकेत मिलता है कि गणेश सर्वोच्च सत्ता के एकदम निकट रहते हैं, जबकि स्कंद तत्त्व सारी पृथिवी का, सारे विश्व का चक्कर लगाने वाले हैं।

(ख) यज्ञ अनुष्ठान में स्रुवा से आज्य की आहुति डालते समय आहुति की एक बूंद प्रोक्षणी पात्र में रखे हुए जल में टपका दी जाती है। यह आहुति का स्कंदित भाग है। तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार यदि स्कंदित भाग का समुचित उपयोग यज्ञ के माध्यम से न किया जाए तो वह अंश बेकार चला जाता है। यह स्थिति ऐसी ही है जैसे शरीर में उत्पन्न वीर्य का शरीर में उपयोग होने से जो अंश बच जाता है, उसका उपयोग या तो ऊर्ध्वरेता होने में किया जा सकता है, अथवा उसे शरीर से बाहर फेंका जा सकता है। उच्छिष्ट (पुराणों में वैदिक संदर्भ सूत्र भाग २) और स्कंद में अंतर यह है कि उच्छिष्ट तो अदिति को, देवताओं को प्राप्त होना अनिवार्य है, लेकिन स्कंद के साथ ऐसी स्थिति नहीं है।

(ग) शिव पार्वती क्रीड़ारत थे। देवताओं ने उस स्थान पर अग्नि को शुक के रूप मे भेजा। शिव ने अग्नि को पहचान लिया और अपना वीर्य शुक रूपी अग्नि के मुख में उड़ेल दिया। उससे अग्नि स्वर्णमय हो गया। अग्नि से वह वीर्य सहन नहीं हुआ तो उसने उसे गंगा में डाल दिया। गंगा से सहन नहीं हुआ तो उसने उसे शरवण में डाल दिया। इससे शरवण स्वर्णय हो गया। वहाँ पड़े बालक को देखकर छह कृत्तिकाओं ने अपना दूध पिला कर उसका पालन किया। स्कंद ने छह मुख बना कर एक साथ छहों कृत्तिकाओं का दूध पिया। बाद में स्कंद कार्तिकेय के रूप में कृत्तिकाओं का पुत्र हुआ, स्कंद के नाम से शंकर का, विशाख नाम से पार्वती का, शाख नाम से अग्नि का इत्यादि। (वामन पुराण ५७)

इस कथा में अग्नि शुक रूप में शिव का वीर्य लाया है। ब्राह्मण ग्रंथों में गायत्री श्येन बनकर सर्वोच्च स्तर के सोम का हरण करके लाती है। इस प्रकार शिव का वीर्य हिरण्मय कोश का वीर्य है जिससे सब कुछ स्र्वणिम हो जाता ही। इस वीर्य को अग्नि पृथ्वी स्तर पर लाती है।

(घ) स्कंद द्वारा तारकासुर का वध होने के पश्चात् महिषासुर या बाणासुर क्रौंच पर्वत की गुफा में छिप जाता है। स्कंद क्रौंच पर्वत सहित महिषासुर को विदीर्ण कर देते हैं। (वामन पुराण ५८)

यहाँ क्रौंच पर्वत का प्रसंग वाल्मीकि के संदर्भ में दो क्रौंच पक्षियों में से एक को व्याध द्वारा मार दिए जाने से तुलनीय है। क्रुं-क्रुं की ध्यान में ध्वनि, अनाहत नाद, की भी समाप्ति होनी चाहिए। वही अंतिम स्तर नहीं है।

(ङ) दक्षिण भारत में, जहाँ कार्तिकेय की विशेष मान्यता है, कार्तिकेय को मुरुगन

कहा जाता है। यह मुरुगन शब्द वेदों का मरुद्गण प्रतीत होता है। स्कंद और मरुद्गण, दोनों ही सेनानी हैं, दोनों इन्द्र के सहायक हैं (स्कंद द्वारा इंद्र की सहायता का वचन-महाभारत), दोनों कुमार हैं, खिलौनों से खेलते हैं।

जैसी की सर्वविदित कथा है, मरुद्गणों के सात स्तर/स्कंध हैं। यह स्कंध इन्द्र द्वारा दिति के गर्भ के पहले सात टुकड़े और फिर प्रत्येक टुकड़े को पुनः सात भागों में विभाजित करने से उत्पन्न हुए हैं। मरुतों का पहला स्कंध पृथिवी तक सीमित है, दूसरा स्कंध भास्कर और पृथिवी के बीच, चौथा चंद्र और सूर्य के बीच, पाँचवा सोम और नक्षत्रों के बीच, छठा सप्तर्षि गण और चंद्र के बीच और सातवाँ ध्रुव और सप्तर्षि गण के बीच है। (ब्रह्माण्ड पुराण ३.५)

स्कंद और स्कंध एक ही धातु से निर्मित शब्द हैं। महाभारत वनपर्व २३०.५५ में महादेव कार्तिकेय से कह रहे हैं कि सातवें मारुत स्कंध की रक्षा अतंद्रित होकर करनी चाहिए।

(च) वामन पुराण ७१ में प्रत्येक मन्वन्तर के अलग-अलग मरुद्गणों की कथा दी गई हैं। भागवत के आरंभिक माहात्म्य में धुंधुकारी प्रेत की कथा है जो भागवत कथा सुनने के लिए बांस में बैठ जाता है। भागवत का एक स्कंध सुनने पर बांस का एक पोर फट जाता है। इस प्रकार बांस के ७ पोर फटते हैं। अंत में भागवत के १२ स्कंधों को सुनने के पश्चात् उसकी मुक्ति हो जाती है।

जैन ग्रंथों में १४ गुण स्थान हैं जिनमें सबसे नीचे मिथ्यात्व का स्थान है और सबसे ऊपर जिनत्व का। ऐसा प्रतीत होता है कि भागवत के स्कंधों की गणना करते समय मिथ्यात्व का स्थान छोड़ दिया गया है क्योंकि मिथ्यात्व दूर होने पर ही प्रेत कथा सुनने को उत्सुक होगा। इसी प्रकार जिनत्व का स्थान मुक्ति का स्थान है, अतः गणना में वह भी छोड़ दिया गया है। शेष १२ स्कंध रह जाते हैं। यह संभव है कि इनमें छह स्कंध स्थूल शरीर के स्तर के और छह सूक्ष्म शरीर के स्तर के हों।

गरुड़- (क) बालखिल्य गण दक्ष के यज्ञ के लिए समिधा और जल ला रहे थे। रास्ते में उन्हें गोष्पद पार करने में कठिनाई हुई। शक्र (इन्द्र) ने गौ के पद जैसे छोटे से स्थान को पार करने में हुई कठिनाई पर उनका उपहास किया। इस पर बालखिल्यों ने शक्र को मारने वाले एक इन्द्र की कामना से आथर्वण यज्ञ किया। तब इन्द्र ने दक्ष से प्रार्थना की और दक्ष के अनुरोध पर बालखिल्यों ने अपना यज्ञ रोक दिया। अभिमंत्रित जल के कलश को कश्यप ले गए और विनता को पिला दिया। उससे गरुड़ का जन्म हुआ। (स्कंद पुराण ६.७९)

वेद में दक्ष शब्द दक्षता प्राप्त करने के अर्थ में आता है। यह दक्षता इस मर्त्य शरीर के स्तर पर ही प्राप्त की जा सकती है। अतः दक्ष से आरंभ करके मैथुनी सृष्टि का आरंभ

होता है। ब्राह्मण ग्रंथों मे आता है कि प्राणाः वै बालखिल्याः— अर्थात् प्राण ही बालखिल्य हैं। शिव-पार्वती के विवाह के अवसर पर पार्वती को देख कर ब्रह्मा का वीर्य बिखर गया। उसे देवताओं ने एकत्रित कर लिया। उससे बालखिल्य उत्पन्न हुए। इस प्रकार बालखिल्य हमारे बिखरे हुए सूक्ष्म प्राण हैं जो दक्ष के यज्ञ में हमारी शारीरिक दक्षता में सहयोग करते हैं। स्वभावतः ऐसे प्राणों के गौ के पद, जो साधना के विकास के नौ स्तर हैं, को पार करने में कठिनाई होती ही है। इन्द्र, इन्द्रियों के स्वामी द्वारा उपहास करने पर बालखिल्य अथर्वण मंत्रों द्वारा यज्ञ करते हैं। अथर्वण-अथ अर्वाक— अब ब्राह्मी शक्ति नीचे को, शरीर के स्तर पर उतरनी आरंभ हो गई है। उसी ब्राह्मी शक्ति का सहारा लेकर बालखिल्य इन्द्रियों के स्वामी को पराभूत कर सकते हैं। अंत में इस ब्राह्मी शक्ति से, जो शारीरिक स्तर पर अवतरित हो चुकी है, गरुड़ का जन्म होता है।

(ख) अपनी माता विनता को कद्रू से मुक्त कराने के लिए गरुड़ सोम या अमृत को लाने के लिए देवलोक गया। वहाँ से आते समय इन्द्र ने उस पर वज्र और अग्नि का प्रहार किया। गरुड़ ने वज्र की प्रतिष्ठा रखने के लिए अपना एक पंख गिरा दिया।

ब्राह्मण ग्रंथों में आख्यान आता है कि जगती, त्रिष्टुप् आदि छन्द सोम प्राप्त करने के लिए ऊपर गए लेकिन उन्हें सोम प्राप्त नहीं हुआ, उल्टे उनके अक्षर गिर गये। अंत में गायत्री सुपर्ण बन कर ऊपर से सोम लाने में सफल हुई। लाते समय उसका एक पंख गिर गया। उससे पृथिवी पर यज्ञीय वृक्ष पलाश, खदिर आदि उत्पन्न हुए। पंख गिरने का अर्थ है कि उनकी शक्ति का शारीरिक स्तर पर अवतरण हो गया है।

(ग) सोम का अपहरण करने से पूर्व गरुड़ ने अपने माता-पिता से अपनी भूख को शान्त करने के लिए भोजन मांगा। कश्यप ने उसे बताया कि एक हाथी और जल में रहने वाला कच्छप एक दूसरे को पकड़ कर खींचते रहते हैं। पहले जन्म में कच्छप विभावसु ऋषि और हाथी सुप्रतीक नाम से उस ऋषि का भाई था। सुप्रतीक अपने धन का भाग विभावसु से मांगता था। विभावसु ने उसे शाप दिया कि वह हाथी हो जाए। सुप्रतीक ने भी अपने भाई को कच्छप होने का शाप दिया। (महाभारत आदिपर्व २९)

ब्राह्मण ग्रंथों में आया है कि करोति इति कूर्मः। अतः यह संभव है कि कच्छप तन का, अर्थात् अन्नमय और प्राणमय कोश का प्रतीक हो, क्रिया शक्ति का प्रतीक। जबकि हाथी मनोमय कोश का प्रतीक हो। इन दोनों— तन और मन का भक्षण कर लेने पर ही गरुड़ अतिमानसिक जगत में जा सकता है।

(घ) एक ब्राह्मण की कन्या माधवी के लिए उसके उपयुक्त वर नहीं मिल रहा था। गरुड़ उन दोनों को लेकर विष्णु के पास गया और विष्णु से बोला कि वह माधवी को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। लक्ष्मी ने अपनी भावी सौत को शाप दिया कि वह अश्वमुखी हो जाए। विष्णु ने कहा कि वह द्वापर में उनकी भगिनी बनेगी। वही अश्वमुखी कृष्ण की बहन सुभद्रा हुई। गरुड़ ने विष्णु के पास बैठी वृद्धा ब्रह्मचारिणी

शाण्डिलिनी का अपमान किया। इस पर शाण्डिलिनी ने शाप तो नहीं दिया, लेकिन उसके क्रोध से गरुड़ के पंख जल गए। बाद में शिव अथवा सूर्य की उपासना से गरुड़ ने अपने पंख प्राप्त किए। (स्कंद पु० ६.८४)

शण्ड अर्थात् नपुंसक, जिसने अपने पाप जला दिए हों। शांडिल्य, जो शण्ड का लालन करता हो और शाण्डिलिनी, शाण्डिल्य की शक्ति। शाण्डिल्य भक्ति सूत्र प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार शाण्डिलिनी भक्ति का प्रतीक है। दूसरी ओर गरुड़ ज्ञान का प्रतीक है (रामायण में शिव ज्ञान रूपी गरुड़ को भक्ति रूपी काकभुशुण्डि से राम कथा सुनने भेजते हैं)। यदि ज्ञान केवल ज्ञान रहेगा, तो नष्ट हो जाएगा। ज्ञान भक्ति का आदर करे तभी कल्याण हो सकता है।

(ङ) विश्वामित्र ऋषि का शिष्य गालव अपने गुरु को दक्षिणा देने के लिए आठ सौ एक कान काले वाले श्वेत अश्वों को खोज कर रहा है। गरुड़ उसकी सहायता करता है और उसे सब दिशाओं में घुमाता है। अंत में वह ययाति की कन्या माधवी को दिलवा देता है। माधवी चार राजाओं से प्रतर्दन, शिबि, वसुमना और अष्टक आदि पुत्र उत्पन्न करती है और राजा लोग बदले में २००-२०० घोड़े गालव को दे देते हैं। माधवी में यह गुण है कि एक बार पुत्र उत्पन्न करने के पश्चात् वह फिर कन्या हो जाती है।

(महाभारत उद्योग पर्व)

वेद में उषा को युवती पुराणी कहा जाता है। उषा नित नयी रहती है। इस प्रकार माधवी ब्राह्मी शक्ति का प्रतीक है। यह मधुविद्या है जिसका उपदेश दधीचि ऋषि अश्विनौ को अश्वमुख से करते हैं। इस ब्राह्मी विद्या का निचले स्तर पर, शरीर के स्तर पर अवतरण अश्वमुख से ही हो सकता है।

पुराणों में वैदिक सन्दर्भ

भाग ४

कंस के बारे में प्रस्तुत इस सामग्री का संकलन वेद संस्थान, नई दिल्ली में अप्रैल १९९० में होने जा रही वेद गोष्ठी (वेद में विश्वेदेवा) के संदर्भ में किया गया है। चूंकि पुराणों में विश्वेदेवा के अन्य संदर्भों पर भी ध्यान देना है, अतः कंस पर सामग्री का प्रस्तुत संकलन पूरा नहीं है।

पुराणों में वैदिक संदर्भ सूत्र में प्रस्तुत कथाओं की व्याख्या कोई ब्रह्मवाक्य नहीं है, अपितु उपलब्ध सामग्री का तर्क के आधार पर विश्लेषण मात्र है। असली रहस्य तो साधना से ही खुल सकते हैं। कथाओं पर आगे विचार करने के लिए इस संकलन में पर्याप्त सामग्री दी गई है।

कंस

कंस कालनेमि असुर का अंश था। वह भोजराज कहलाता था (भोज का अर्थ है— जो दूसरों को भोजन दे, उनका पालन करे)। उसने बहुत से महाबली असुरों जैसे अघासुर, बकासुर, प्रलम्ब आदि को हरा कर उन्हें अपना मित्र बना लिया था। जब देवकी का वसुदेव से विवाह हुआ तो वह रथ पर बैठे वसुदेव-देवकी का स्वयं सारथी बना। तभी आकाशवाणी हुई कि जिसका रथ तू वहन कर रहा है उसका आठवां पुत्र तेरा वध करेगा। कंस देवकी का वध करने के लिए तत्पर हुआ लेकिन इस शर्त पर छोड़ दिया कि वह अपने पुत्रों को कंस को सौंप दे। कंस ने यह सोचकर कि केवल आठवां पुत्र ही उसका घाती होगा, उसे जीवनदान कर दिया लेकिन तभी नारद मुनि ने प्रकट होकर कंस से कहा कि कहीं से गिनती आरम्भ करने पर कोई भी पुत्र आठवां हो सकता है। तब कंस सभी ६ पुत्रों को उत्पन्न होते ही मारता गया। देवकी के सातवें गर्भ को योगमाया ने स्थान्तरित करके रोहिणी के गर्भ में स्थापित कर दिया। आठवों पुत्र कृष्ण को वसुदेव ने यशोदा व नन्द की पुत्री से बदल दिया। जब कंस उस पुत्री को मारने लगा तो वह छूटकर आकाश में चली गई। और विद्युत बन गई। उसने कहा कि कंस को मारने वाले का जन्म गोकुल में हो चुका है।

कंस श्रीकृष्ण के हाथों मरने के पश्चात् विश्वेदेवों के लोक में गया।

कंस ने देवकी के जिन ६ पुत्रों को मारा, वह पहले मरीचि और ऊर्णा के पुत्र स्मर, उद्गीथ, पतंग, परिष्वंग, क्षुद्रभृत् और घृणि थे (भागवत १०.८५)। उन्होंने ब्रह्म की अवहेलना की, इस कारण वह शापवश कालनेमि के पुत्र बने। कालनेमि के पुत्रों ने ब्रह्मा की आराधना की जिस पर कालनेमि के पिता हिरण्यकशिपु ने उन्हें शाप दिया कि तुम पाताल में जाकर सो जाओ। अगले जन्म में तुम्हारा वध तुम्हारे पिता के हाथ से ही होगा। उन्हीं पुत्रों को योगमाया ने पाताल से उठाकर देवकी के गर्भ में स्थापित कर दिया था। उनके नाम कीर्तिमान, सुषेण, उदायु, भद्रसेन, ऋजुदास और भद्रदेव थे।

उग्रसेन की पत्नी पद्मावती अपने मायके गई हुई थी। उसे खेल में अपने पति का स्मरण ही नहीं रहा। तब गोभिल दैत्य ने पद्मावती में अपना वीर्य स्थापित किया। उससे कंस का जन्म हुआ जिसका पालन उग्रसेन राजा ने किया। (पद्म पु० २.४९)

कर्मकांड के अंतर्गत आता है कि जो महत् की प्राप्ति करना चाहता है, वह द्वादश दिन का व्रत लेकर उदुम्बर (गूलर) के कंस में या चमस में सब औषधियों के रस एकत्र करके पुरुष नक्षत्र में उस रस का दधि-मधु के साथ मंथ बनाकर होम करता है (शतपथ ब्राह्मण १४.९.३.१)। जातकर्म में जातक को गोद में लेकर कंस (कांसे या कांस्य का कटोरा) में पृषदाज्य ले... होम किया जाता है (शतपथ १४.९.४.२३)।

आचार्य यजमान का अभिषेक करने के अनंतर दक्षिणा पाने के बाद क्षत्रिय के हाथ में सुराकंस (सुरा-अन्नरस) रखता है (ऐतरेय ब्राह्मण ८.२०)। क्षत्र शिल्पों हस्ति, अश्वतरी, अश्वरथ आदि के साथ कंस का आहरण करने से ब्रह्म को प्राप्त करता है (जैमिनीय ब्राह्मण १.२६३)। इससे साम का परिष्कार होता है। आचार्य की दक्षिणा में धेनु, कंस, वास और क्षौम दिया जाता है (तैत्तिरीय आरण्यक १.३२.३), आदि। वेद में आता है कि वशा गाय के पृष्ठ के ऊपर सौ कंस हैं, सौ दुहने वाले हैं, सौ रक्षा करने वाले हैं इत्यादि (निहितार्थ अस्पष्ट) (अथर्व० १०.१०.५)। पुराणों में वसुगण शिव के कांस्य लिंग की उपासना करते हैं (स्कंद पु० १.२.१३)। प्रश्न यह है कि क्या कर्मकाण्ड का उदुम्बर का कंस जिसमें सब औषधियों का रस भरा जाता है और पुराणों का राजा कंस जिसका वध कृष्ण करते हैं, एक ही हैं? पुराणों में वैदिक संदर्भ सूत्र भाग १ में कहा जा चुका है कि उदुम्बर की संधि उत्-ऊं-वर, ऊं की ओर जाने वाला होता है। पुराणों में कंस का चरित्र चित्रण करने का उद्देश्य इतना ही है कि मानव देह रूप इस कंस या चमस को कैसे इतना शुद्ध किया जाए कि यह सब औषधियों का, ऊपर से आने वाली शक्तियों का, सोम का रस धारण करने में समर्थ हो सके, यह उदुम्बर कंस बन सके।

कालनेमि

(क) हिरण्यकशिपु के दो पुत्र हैं— प्रह्लाद और कालनेमि। प्रह्लाद का युद्ध काल से होता है (हरिवंश ३.५३), नैमिष तीर्थ में नर-नारायण से होता है (वामन पु ७)। नैमिष तीर्थ वह है जहाँ नेमि शीर्ण हो गई हो, नष्ट हो गई हो। प्रह्लाद भगवान् का भक्त है। समस्या कालनेमि के उद्धार की है।

(ख) हिरण्यकशिपु तप करने के लिए गया। फिर कुछ समय पश्चात् वह लौटकर आ गया। उसकी पत्नी कयाधू ने पूछा कि तुम इतनी जल्दी कैसे लौट आए। उसने बताया कि जब वह तब करने बैठा तो देवों के कहने से पर्वत और नारद शुक का रूप धारण करके आए और नारायण शब्द का उच्चारण किया। नारायण शब्द कान में पड़ते ही हिरण्यकशिपु अपनी तपस्या छोड़कर वापस आ गया।

हिरण्यकशिपु असुर दिति व कश्यप का पुत्र है। उसका तप किस लिए? केवल सिद्धियाँ प्राप्त करने के लिए, नारायण पाने के लिए नहीं। इस अहंकार की सिद्धि करने वाले व्यक्तित्व में दो पक्षों का जन्म होता है— एक भगवान् की भक्ति करने वाला प्रह्लाद और दूसरा काल की नेमि या परिधि पर ही टिकने वाला कालनेमि। मरीचि व ऊर्णा के ६ पुत्रों स्मर, उद्गीथ आदि का सम्बन्ध भक्ति के ६ अङ्गों से हो सकता है। यदि यह ब्रह्म की, परमात्मा की अवहेलना करेंगे तो इन्हें असुर लोक में आना पड़ेगा। असुर लोक में इनका क्या रूप होगा, यह कहना कठिन है। हो सकता है यह काम, क्रोध, लोभ, मोह,

मद और मत्सर से संबंधित हों। हिरण्यकशिपु इन सबको सुला देता है, सिद्धि प्राप्त करने के लिए यह ठीक ही है। फिर द्वापर में, दो से परे अर्थात् तमो और रजोगुण से परे सत्त्व गुण की उपस्थिति में इनका जन्म सत्त्व गुणरूपी देवकी से होता है। नारद का कहना है कि क्या पता कहाँ से गिनने पर कौन सा पुत्र आठवां बैठे जो कंस का वध कर दे। नारद का दृष्टिकोण ठीक ही है क्योंकि यदि साधक अपने में, पुत्रों के ६ नामों में से किसी भी एक नाम के गुणों का वर्धन करेगा तो आठवें पर मुक्ति मिल ही जाएगी। जैसे पहले पुत्र कीर्तिमान में कीर्ति की महिमा कीर्ति-वृषभानु युगल से समझी जा सकती है जिनसे राधा का आविर्भाव हुआ (गर्ग संहिता १.८)। वामन अवतार की पत्नी का नाम कीर्ति है (भागवत ६.१८)। पक्षियों की बोली समझने वाले और विष्णु पार्षद भगवान् विष्वक्सेन को जन्म देने वाले ब्रह्मदत्त की माता का नाम कीर्तिमालिनी है (ब्रह्माण्ड पु० ३.१०)। सत्त्व गुण के कारण उत्पन्न यह ६ पुत्र जब दूषित कंस को प्राप्त होते हैं तो वहाँ इनका वर्धन नहीं होता, यह मर ही जाते हैं। लेकिन साधक का देहरूपी कंस कितना भी दूषित हो, जब कृष्ण का जन्म होगा तो पता ही नहीं चलेगा कि कृष्ण का जन्म हो गया है। कृष्ण के जन्म की एकमात्र घोषणा वह विद्युत करेगी जो देहरूपी कंस से छूट कर आकाश में चली जाएगी। पहली घोषणा तब हुई थी जब साधक वसुदेव-देवकी रूपी सत्त्वगुण को रथ पर बैठाकर उनका सारथि बना था। इसके पश्चात् यदि साधक सत्त्वगुण की हत्या नहीं करता, उन्हें जीवित छोड़ देता है, तो उसके आसुरी व्यक्तित्व का विनाश होना निश्चित हो जाता है, भले ही सत्त्वगुण असुर की कैद में पड़ा हो।

(ग) रामायण की राम कथा में लक्ष्मण मेघनाद की शक्ति से मूर्छित हो जाते हैं। सुषेण वैद्य के कहने से हनुमान द्रोण पर्वत पर संजीवनी औषधि लेने जाते हैं। रास्ते में कालनेमि तापस का रूप धारण करके उनके उद्देश्य में बाधा डालता है। छल का पता लगने पर हनुमान कालनेमि का वध कर देते हैं।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, कंस कालनेमि का अंश है। कर्मकाण्ड के कंस को सब औषधियों का, ऊं शक्ति का रस भरने में समर्थ होना चाहिए। रामायण का कालनेमि रूपी कंस संजीवनी औषधि प्राप्त करने में बाधा डाल रहा है। रामभक्त हनुमान उसका वध त्रेतायुग में, जब सत्त्वगुण प्रबल होता है, करते हैं। लेकिन वर्तमान संदर्भ के कालनेमि का जन्म द्वापर में, जब सत्त्वगुण निर्बल होता है, हुआ है। उसकी मुक्ति तो कृष्ण ही कर सकते हैं।

(घ) समुद्र मंथन के पश्चात् देवासुर संग्राम में दैत्यों को हारते देख कालनेमि सिंह पर बैठ कर आया। देवताओं ने अपने को दुर्बल जानकर विष्णु को उससे युद्ध करने के लिए बुलाया। विष्णु ने कालनेमि से कहा कि वह या तो आकाश में युद्ध कर ले या पृथिवी पर। कालनेमि ने आकाश में युद्ध करना स्वीकार किया और वह अपने पंखयुक्त सिंह के द्वारा आकाश में चला गया। विष्णु ने वाम कर से उस पर प्रहार किया। वह मूर्छित हो गया। फिर कालनेमि ने विष्णु से अनुरोध किया कि वह उसे कैवल्य प्रदान

कर दें। विष्णु ने कहा कि वह अन्य जन्म में उसे कैवल्य प्रदान करेंगे। (स्कंद पु० १.१.१३)।

सिंह अहंकार का प्रतीक है। कालनेमि का अहंकार कोई साधारण अहंकार नहीं है, वह पंख युक्त है, आकाश में उड़ सकता है। यह महायोगियों का अहंकार है, अहं ब्रह्मास्मि। उच्च अवस्था के इस अहंकार को मूर्छित कर देना मात्र पर्याप्त है। जब इस उच्च अहंकार के कारण निम्न स्तर पर चेतना में विकृतियाँ प्रकट होंगी, उनका शोधन कृष्ण करेंगे।

(ङ) तारकासुर-देव संग्राम में चंद्रमा ने शीत से असुरों को पीड़ित किया। तब कालनेमि कुंजर वाहन वाले रथ में, जिसकी ध्वजा पर महाकाल का चिह्न है, बैठ कर लड़ने आया। उसने मानवी माया का आश्रय लेकर अपनी शरीर को महान, भास्कर युक्त बना लिया जिससे चंद्रमा के शीत का प्रतिकार हो गया। फिर सूर्य द्वारा अपनी उष्णता से पीड़ित किए जाने पर कालनेमि ने मेघों और वर्षा की सृष्टि कर दी। फिर उसने अश्विनीकुमारों से युद्ध किया, फिर वासव या इन्द्र से। देवों ने विष्णु की स्तुति की। विष्णु ने कालनेमि से युद्ध किया और उसे पराजित करके छोड़ दिया, वध नहीं किया।

(स्कंद पु० १.२.१८, मत्स्य पु० १५०)

(च) तारकासुर संग्राम में असुरों की और्वी माया का विनाश होने तथा वायु और अग्नि द्वारा असुरों को त्रस्त किए जाने पर कालनेमि का आगमन हुआ। वह भास्कराकार, मंदरपर्वत के समान मुकुट धारण किए, रजत संवृत, शतबाहु, शतानन, शतशीर्ष, धूम्रकेश आदि था। वह देवों को हराकर गरुड़ासीन विष्णु से युद्ध करने गया। उसने गरुड़ पर चोट करके विष्णु को क्रोधित कर दिया। विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र से पहले उसकी भुजाएँ काट डाली, फिर सिर काट दिए। लेकिन उसका धड़ खड़ा ही रहा। तब गरुड़ ने धक्का मार कर उसे पृथिवी पर गिरा दिया। (पद्म पु० ६.५., मत्स्य पु० १७८)

कालनेमि को मुक्ति देने वाला सुदर्शन चक्र कैसा है, इसका आभास निम्नलिखित वर्णन से मिल सकता है—

१. सुग्रीव ने वानरों से कहा कि पूर्व दिशा में काल पर्वत को पार करने के पश्चात् सौमनस शिखर के सामने सुदर्शन द्वीप है। इसमें सब प्राणियों को तेज प्राप्त होता है और चक्षुओं को प्रकाश प्राप्त होता है। वहाँ भी सीता की खोज करनी है। (रामायण ४.४०)

२. राजा प्रियव्रत के रथ की नेमि के सात बार पृथिवी पर घूमने से सुदर्शन द्वीप के सात समुद्र और द्वीप बने हैं। सुदर्शन चक्र के भीतर सुदर्शन द्वीप है। (पद्म पु० ३.३, भीष्म पर्व ५)। इस प्रकार साधना में पहली अवस्था सुदर्शन द्वीप की और दूसरी सुदर्शन चक्र की है, ऐसा प्रतीत होता है।

३. सुदर्शन चक्र की सबसे बाहर की नेमि पर हिरण्यकशिपु का वध करने वाले नृसिंह भगवान् की स्थिति है। यह नेमि आठ सिद्धियों, आठ ऐश्वर्यों की भी है (नृसिंह पूर्वतापनीयोपनिषद)। सुदर्शन चक्र की आठ नेमियों में से सातवीं पर सारे अस्त्र, छठी पर लोकपाल, दिग्गज आदि, पाँचवी पर पाँच भूत, ११ रुद्र, चौथी पर १२ आदित्य, तीसरी पर सात मातृका, आठ वसु, गणेश आदि, दूसरी पर अवतार मत्स्य, कूर्म, वराह आदि, पहली नेमि पर राधा और उसकी सखियाँ, नाभि में कृष्ण हैं। (लक्ष्मीनारायण संहिता ३.१३०)

४. देवों की प्रार्थना पर दैत्यों के विनाश के लिए विष्णु ने शिव की आराधना की। उन्होंने मानसरोवर के १००० कमलों को १००० शिवनामों के साथ शिव को अर्पित किया। शिव ने परीक्षा लेने के लिए एक कमल चुरा लिया। जब विष्णु को सारी पृथिवी पर ढूँढने पर भी वह कमल नहीं मिला तो उन्होंने कमल के रूप में अपनी आँख उखाड़ कर अर्पित कर दी। तब शिव ने प्रसन्न होकर उन्हें सुदर्शन चक्र प्रदान किया। (शि० पु०, ४.३४, लि० पु० १.९८)

५. सुदर्शन चक्र में १२ अरे, ६ नाभि, दो युग हैं। इसके अरों में देव, मास, राशि, ६ ऋतु, अग्नि, सोम, आदि १२ मास प्रतिष्ठित हैं। कालचक्र की यह स्थिति साधना काल में प्रकट होती है। (वामन पुराण ८२)

जब किसी रथ के चक्र का वर्णन करना होता है तो उसमें परिस्थिति के अनुसार अरों और नेमियों की संख्या और उनके प्रतीकार्थ अलग-अलग होते हैं। कालनेमि के संदर्भ में ऐसा प्रतीत होता है कि चक्र की नेमि या परिधि पर बैठा कालनेमि यदि कालचक्र के भीतर प्रवेश कर जाए तो मुक्त हो सकता है। कालनेमि के रथ का ध्वज महाकाल है। शिव का उज्जैन और वाराणसी में नाम महाकाल है जो सब पापों को नष्ट करता है।

कालनेमि की नेमि योग से भी जुड़ी है। यह शाम्भवी मुद्रा या त्राटक में निमेष-उन्मेष से, पलक झपकने से सम्बन्धित हो सकती है। शाम्भवी मुद्रा से काल पर जय प्राप्त होती है (हठ योग प्रदीपिका)। कालनेमि का देवों से युद्ध तारकासुर संग्राम के संदर्भ में होता है। हो सकता है कि तारकासुर आँख के तारक को स्थिर करने से सम्बन्धित हो। निघंटु में नेमि, मेनि, नमः आदि शब्द वज्र नामों में गिनाए गए हैं। मेनि अर्थात् मन को ऊपर की ओर ले जाने से मिलने वाली शक्ति जबकि नेमि मन को बाहर से अंदर की ओर मोड़ने पर मिलने वाली शक्ति। हिमालय की पत्नी मेना की पुत्री काली है जिसका विवाह शिव से होता है। वज्र नामों में परिगणित होने के कारण हो सकता है कि नेमि शांभवी मुद्रा में पलकों को स्थिर करने के वज्र, दृढ़ संकल्प से जुड़ी हो। ऋग्वेद ८.९६.१२ में आया है कि विप्र लोग विशेष अंतर्दृष्टि से युक्त होकर नेमि का नमन करते हैं। प्राप्त होने वाला प्रकाश आंखों को शीतलता देने वाला, कर्णों को प्रिय लगने वाला है।

प्रसंगवश यह उल्लेख करना उपयुक्त होगा कि काल की दो अवस्थाएँ हैं। एक सांख्य की, एक योग की। सांख्य में योगी कालातीत अवस्था से क्रमशः संवत्सर, अयन (दक्षिणायन और उत्तरायण), मास पक्ष, दिन-रात, आदि से लेकर काल के अल्पतम मान क्षण तक जाता है। इसके विपरीत योग में योगी काल के अल्पतम मान से आरम्भ करके कालातीत अवस्था तक पहुँचता है।

(छ) राजा वल्लभशक्ति का पुरोहित कालनेमि ब्राह्मण था। वल्लभशक्ति का पुत्र विक्रमशक्ति दुष्ट था, जैसे दुर्योधन कौरव। कालनेमि ने अग्नि में यज्ञ करके पुत्र की कामना की। अग्नि ने कहा कि उसे पुत्र प्राप्त होगा, लेकिन चूँकि उसने अग्नि की इष्टि ईर्ष्या, द्वेष से युक्त होकर की है, अतः उसकी (कालनेमि की) मृत्यु फाँसी से होगी। कालनेमि का पुत्र श्रीदत्त हुआ। कालांतर में विक्रमशक्ति के राजा बनने पर उसने कालनेमि को फाँसी दे दी। श्रीदत्त बच निकला। उसने मृगांकवती की विष से रक्षा की और मृगांक नामक एक तलवार प्राप्त की। उसने मृगांकवती से विवाह कर लिया। फिर मृगांकवती खोई गई, उसकी तलवार मृगांक भी खोई गई। वह भील के बंधन में पड़ गया। फिर वह मृगांकवती की खोज करके अंत में उसे प्राप्त करता है। --कथासरित्सागर २.२.१५८।

इस कथा में श्रीदत्त का सम्बन्ध श्रीचक्र से प्रतीत होता है। विशेष तथ्य यहाँ यह है कि कालनेमि ईर्ष्या, द्वेष से युक्त है।

(ज) देवों पर विजय पाने के लिए असुरों ने अंधकासुर के नेतृत्व में देवों से युद्ध किया। अंधक नन्दी से लड़ा। कालनेमि का युद्ध विश्वक्सेन के नेतृत्व में विश्वेदेवों से हुआ। (वामन पु० ६९)

(झ) जालंधर-देव संग्राम में कालनेमि का युद्ध नंदी से हुआ। (पद्म पु० ६.१०)

(ट) उग्रसेन के राजसूय यज्ञ में अश्व की रक्षा के लिए प्रद्युम्न हिरण्मय खण्ड पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् रम्यक वर्ष में गए। उसके उत्तरवर्ती काले देश में भयंकर नाद से परिपूर्ण भीमनादिनी नगरी है। उसमें कालनेमि का पुत्र कलंक रहता है जो त्रेतायुग में राम से डरकर युद्धभूमि में भाग आया था। वह गधे पर बैठकर युद्ध करने आया। कृष्ण-पत्नी लक्ष्मणा के दस पुत्रों प्रघोष आदि ने बाणों द्वारा उसका प्रतिरोध किया। अंत में प्रघोष ने कपीन्द्रास्त्र चलाया जिससे हनुमान प्रकट हुए। हनुमान ने उसके ऊपर वैदूर्य पर्वत गिरा दिया जिससे वह चूर-चूर हो गया। (गर्ग संहिता ७.३०)

(ठ) राधा-कृष्ण रति द्वेषिणी वृन्दा गोलोक से पृथिवी पर आकर कालनेमि की पुत्री बनी। उसका विवाह जालंधर असुर से हुआ। (लक्ष्मीनारायण संहिता १.३२४)

(ड) प्रह्लाद-पुत्र विरोचन के पाँच पुत्र— गवेष्ठी, कालनेमि, जम्भ, बाष्कल और शंभु हुए। कालनेमि के पुत्र ब्रह्मजित्, क्षत्रजित्, देवान्तक और नरान्तक हुए।

(वायु पु० ६७.७६)

पूतना

(क) कंस ने प्राणों के समान प्यारी प्रेयसी सती पूतना से कहा कि तुम मनोगामिनी, मायाशास्त्र विशारद हो। दुर्वासा से प्राप्त मंत्र से सर्वत्रगामिनी हो, तुम सब रूप धारण कर सकती हो। अत: गोकुल जाकर कृष्ण को मार डालो। पूतना तप्तकांचन वर्ण वाली, नानालंकार भूषित, गोकुल में गई और अपने को मथुरावासिनि, अब एक विप्र-पत्नी बताया। यह भी कहा कि उसे पता चल गया है कि यशोदा के दिव्य पुत्र उत्पन्न हुआ है। उसने कृष्ण को अपना विष से लिप्त स्तन दे दिया। कृष्ण उसके प्राणों सहित सारा दूध पी गए। पूतना निष्प्राण होकर गिर पड़ी। गिरते समय उसकी चिल्लाहट से सातों लोक और सातों पाताल सहित सारा ब्राह्माण्ड गूंज उठा, इत्यादि। (ब्रह्मवैवर्त ४.१०, गर्ग संहिता १.१३)

(ख) पूतना कंस की धाय थी। आधी रात के समय अपने पंख हिलाती हुई वह शकुनि/पक्षी के रूप में आई। वह व्याघ्र के समान बार-बार गर्जना कर रही थी। वह शकट के अक्ष के नीचे छिप गई। उसके स्तनों से दूध झरने लगा। उसने अपना स्तन सोते हुए कृष्ण के मुख में दे दिया। कृष्ण पूतना के प्राणों सहित उसे पी गए। छिन्न-स्तन होकर शकुनी भूमि पर गिर पड़ी। उसके गिरने पर चिल्लाहट से सब गोप जाग पड़े। (हरिवंश २.६)

(ग) पूतना पहले जन्म में बलि की पुत्री रत्नमाला थी। बलि के यज्ञ में वामन भगवान् को देखकर उसे कामना हुई कि यदि मेरा भी ऐसा ही पुत्र हो तो मैं उसे अपना स्तन पिलाऊँ। भगवद्भक्त बलि ने द्वापर में पूतना के रूप में उसकी मनोकामना पूर्ण होने का वरदान दिया। (गर्ग संहिता १.१३, ब्रह्मवैवर्त ४.१०)

पूतना को समझने के लिए साहित्य में निम्नलिखित कथाएँ उपलब्ध हैं—

(घ) स्वारोचिष के पुत्र ऋतुध्वज के सात पुत्र इन्द्र पद की प्राप्ति के लिए ब्रह्मा की तपस्या करने लगे। इन्द्र ने तप भंग करने के लिए अप्सराओं में प्रधान पूतना को मेरु पर्वत पर भेजा। पूतना को देखकर उन पुत्रों का वीर्य स्खलित हो गया। उस स्खलित वीर्य को शंखिनी नामक मछली ने पी लिया। वह मछली सात पुत्रों को जन्म देने के बाद मर गई। तब वह बालक बिना माता के दुग्ध के लिए रोने लगे। पितामह ने कहा मत रोओ। तुम वायुस्कन्धचारी होंगे। वह स्वारोचिष मन्वन्तर में मरुद्गण हुए। (वामन पु० ७२)

ऋतु उस कर्म को या यज्ञ को कहते हैं जो फल उत्पन्न नहीं करता। उच्च स्तर का यज्ञ। प्रयास ब्रह्म को, परमात्मा को प्राप्त करने का है लेकिन इन्द्रियों के स्वामी इन्द्र ने पूतना के रूप में विघ्न उपस्थित कर दिया है। ऋतुध्वज के सात पुत्र पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि हो सकते हैं। इस कथा से यह संकेत मिलता है कि पूतना इन्द्रियों को

बहिर्मुखी करने वाली एक शक्ति है। वह अप्सरा है, शक्ति को बाहर फैलाती है (द्रष्टव्य पुराणों में वैदिक संदर्भ सूत्र भाग-१ में अप्सरा और गंधर्व)।

(ङ) देवासुर संग्राम के पश्चात् जब स्कंद ने दुंदभी राक्षस को हरा दिया तो वह हिमालय में अपने चाचा क्रौंच की गुफा में घुस गया। स्कंद ने दुंदुभी को क्रौंच और गुफा सहित नष्ट कर दिया। इससे स्कंद दूषित हो गए और कालांतर में मेघों, नदियों, समुद्र, पंच महाभूतों आदि द्वारा धूपन करने से शुद्ध हुए। जिस भूमि पर यह शुद्धिकरण हुआ, उससे पूतना ग्रह उत्पन्न हुआ।

काश्यप संहिता, चिकित्सा स्थान, बालग्रह चिकित्सा अध्याय न० प० जोशी: मातृकाज मदर्स इन कुशाण आर्ट (कनक प्रकाशन, नई दिल्ली, १९८६) पृष्ठ सं १७२ से उद्धृत।

जैसा कि पुराणों में वैदिक संदर्भ सूत्र भाग ३ में स्कंद शीर्षक के अंतर्गत दिया गया है, स्कंद चेतना का ऊपर की ओर प्रसार है जबकि दुंदुभि योग साधना रूपी संग्राम का आरम्भ है। इस कथा से संकेत मिलता है कि दुंदुभि, क्रौंच आदि जितनी अशुद्धियाँ (क्रुं-क्रुं शब्द सुनाई पड़ना) योग मार्ग में हैं, वह सब पूतना के अंतर्गत आती हैं।

(च) पूतना बकी बकासुर राक्षस की बहन है— देवीभागवत ४.२२)

जो कुछ भी हमारी अभिव्यक्ति संसार में होती है वह सब वाक् कही जाती है। वाक् दो प्रकार की है— परावाक् और अपरावाक्। बक से अभिप्राय उस वाक् से हो सकता है जो बाहर आकर दूषित हो गई है।

(छ) स्कंद के उत्पन्न होने के पश्चात् मातृकाओं ने स्कंद से प्रार्थना की कि पहली मातृकाओं (ब्राह्मी, ऐन्द्री आदि) का स्थान हमें मिले। हमें संतान प्राप्त हो। स्कंद ने उन्हें पहली मातृकाओं की प्रजाएं रक्षा करने के लिए दे दी। पति के हेतु अपना अंश स्कंद अपस्मार ग्रह दिया। इन मातृकाओं में पूतना मातृका राक्षसी, घोररूप, निशाचरी है जबकि शीतपूतना पिशाची है और मनुष्यों के (दुष्ट) गर्भों का हरण कर लेती है। (महाभारत वनपर्व २३०)

जैसा कि बकासुर-भीम के संदर्भ में कहा गया है, पूतना आदि मातृकाएँ हमारे दोषों का हरण करने वाली हैं, वह माता है, पालन करने वाली है।

(ज) रावण की १६ बहनें पूतना के नाम से प्रसिद्ध थीं। उन्होंने शिव की तपस्या की और वरदान स्वरूप नवजात शिशुओं का मांस खाने को माँगा। शिव ने शर्तों के साथ वरदान दिया— रावणकृत बालतंत्र, न० प० जोशी की पुस्तक से उद्धृत।

(झ) वरुण की पत्नी शुना देवी से कलि और वैद्य पुत्र उत्पन्न हुए। कलि ने त्वष्टा की पुत्री हिंसा से चार पुत्र नाक, विघ्न, सद्रम/भद्रम, और विधम उत्पन्न किए। विघ्न बिना सिर वाला बिना शरीर वाला, सद्रम एक हस्त वाला और विधम एक पाद वाला

हुआ। सद्रम की पत्नी तामसी पूतना हैं, विधम की रेवती, नाक की शकुनि, विघ्न की अयोमुखी। (वायु पु० ८४, ब्रह्माण्ड पु० ३.५८)

(ट) पूतना संकुली ग्रही, एक मास के वत्स का हरण करती है। उसका लक्षण काकवत् रोदन, श्वास में मूत्रगंध, अक्षिमीडन आदि है। उपाय गोमूत्र स्नपन, गोदंत द्वारा धूपन, पीत वस्त्र, रक्त गन्ध, तैल, दीपक, त्रिविध पायस, तिल, मांस आदि का दान। (अग्नि पुराण २९९)

कुमार तंत्र के अनुसार पूतना का प्रभाव ३ दिन या ३ मास या ३ वर्ष के बालक पर पड़ता है।

(ठ) पूतना के अन्य प्राप्त नाम शीत पूतना, अंध पूतना, कठ पूतना, दृष्टि पूतना, गंध पूतना, तासमी पूतना आदि हैं। रेवती के २१ नामों में से एक नाम पूतना है। आर्या देवी का एक नाम पूतना भी है। रेवती मातृका की षण्मुख मूर्ति में रेवती, शकुनि, पूतना, अंधपूतना, शीतपूतना और मुखमंडिका का होना संभव है। मूर्ति कला में पूतना की मूर्ति को छांटना कठिन है। कृष्ण लीला के चित्रणों में एक स्थान पर पूतना को पक्षी के रूप में चित्रित किया गया है। अन्य स्थानों पर जहाँ पक्ष युक्त मातृका की मूर्ति प्राप्त होती है, वह शकुनि मातृका भी हो सकती है। (न० प० जोशी, वही)

(उ) गायत्री ने श्येन बनकर सोम का हरण किया। उस समय सोम रक्षक ने उसका जो पंख काटा और उसका जो अंश पृथिवी पर गिरा वह पूतीक हो गया। उसमें देवों ने ऊति की खोज की। यह जो सोम का अभिषुण्वन करते हैं, यह ऊति की ही खोज करते हैं। (तांड्य ब्राह्मण ९.५.४)

इस आख्यान में ऊति और पूति दो शब्द हैं। वेद में ईति और ऊति शब्द बार आए हैं जिन्हें इस प्रकार समझ सकते हैं कि ईति ऊपर जाने वाली शक्ति है। यह ईति शक्ति, जिसे गायत्री कह सकते हैं, ऊपर से ऊति शक्ति, ओंकार या परमात्मा की शक्ति को नीचे लाती है। इस ऊति का जो अंश पृथिवी पर गिरा, वह यहाँ दूषित होकर पूति कहलाता है। यज्ञ में सोम को दशापवित्र नामक कम्बल से छानकर शुद्ध किया जाता है, उसे पूत बनाया जाता है। इस प्रकार पूतना पूतीक, परमात्मा या ओंकार की दूषित शक्ति हो सकता है। शुद्ध होने पर यह शक्ति वेद में पूत दक्ष, शुद्ध बल कलाएगी। उसे ही देव पसंद करते हैं।

(ढ) ऊपर ग शीर्षक में रत्नमाला के संदर्भ में पितरों की तीन मानसी कन्याएँ मेना, रत्नमाला या धन्या और कलावती हुई। मेना ने हिमालय से पार्वती को जन्म दिया, रत्नमाला ने जनक से सीता को और कलावती ने सुचंद्र या वृषभानु से राधा को। (ब्रह्मवैवर्त्त ४.१७)। अन्य कथा में उपबर्हण गंधर्व (नारद) की पत्नी सती मालावती ने अपने पति को पुनर्जीवित करने के लिए तप किया। उसे वरदान मिला कि वह अगले

जन्म में राजा संजय की पुत्री रत्नमाला/दमयन्ती बनेगी और तब नारद उसके पति बनेंगे। नारद अपने भानजे पर्वत के साथ आए और रत्नमाला से विवाह किया। पर्वत ने उन्हें शाप देकर वानरमुख बना दिया और तीर्थयात्रा करने चला गया। तीर्थयात्रा से लौटकर उसने नारद को शाप से मुक्त कर दिया (ब्रह्मवैवर्त्त १.२४)। नारद-पर्वत की कथा का निर्वचन पुराणों में वैदिक संदर्भ सूत्र भाग २ में देखा जा सकता है।

इस प्रकार रत्नमाला के तीन रूप हैं। उच्चतम रूप में वह सीता को जन्म दे सकती है। यह ऊति का रूप हो सकता है। मध्यम स्तर पर वह मन से जुड़ कर ऊर्ध्वमुखी होकर वामन के दर्शन कर सकती है। अथवा नारद रूपी देव स्तर, जो बंदर रूपी मन से जुड़ा है, से विवाह कर सकती है। और तीसरे स्तर पर वह कंस की प्रेयसी बन सकती है, अथवा चाहे तो नारद के भानजे पर्वत से, जो शरीर के पर्वों से अथवा शरीर से जुड़ा है, प्रेम कर सकती है।

साधना पक्ष में रत्नमाला कौन है? १४ प्रकार के रत्न हैं। उनमें चक्र, रथ, मणि, खड्ग, चर्म, केतु और निधि यह सात अप्राण रत्न कहलाते हैं और भार्या, पुरोहित, सेनानी, रथकृत्, अश्व, कलभ/हाथी यह सात प्राणीरत्न कहलाते हैं। रत्नों की उत्पत्ति के सम्बन्ध ने गरुड़ पुराण ६८ में बल नामक असुर की कथा है जिसका विशुद्ध सत्त्व रत्नों की खानों के रूप में प्रकट हुआ। लेकिन अधिक उपयुक्त कथा दीर्घनिकाय में महावग्ग के अंतर्गत महासुदर्शन सुक्त की है। कुशावती के राजा महासुदर्शन के समक्ष सहस्र अरों वाला दिव्य चक्र रत्न प्रकट होता है। राजा जान जाता है कि मैं चक्रवर्ती राजा बनूँगा। राजा चक्र को आगे करके सारी पृथिवी पर घूमा। फिर राजा के सामने हस्ति रत्न प्रकट हुआ जिस पर बैठकर राजा ने समुद्र पर्यन्त पृथिवी का चक्कर लगाया। फिर अश्वरत्न, फिर स्त्री रत्न, फिर निधिरत्न आदि प्रकट हुए। अतः बलि की पुत्री रत्नमाला की कथा से संकेत मिलता है कि साधक को रत्नों की माला मिल जाने के पश्चात् भी, सीता के प्रकट होने के बाद भी, इन्द्रियों की अशुद्ध बाहरी वृत्तियों के रूप में पूतना विद्यमान रहेगी जिसका अंत कृष्ण की बाल अवस्था प्रकट होने पर ही हो सकता है।

(ण) वेद में पूतः शब्द शुद्ध किए गए सोम के लिए आता है। शुद्ध करने की विधि का यज्ञ में प्रतीक दशापवित्र या अन्य कुछ हो सकता है। यह प्रार्थना की गई है कि शुद्ध पूत सोम योषित, यज्ञीय हों (अथर्व० ११.१.२७)। योषा यज्ञ में यजमान पत्नी को कहते हैं। अतः अनुमान लगाया जा सकता है कि सोम के पूतिकरण से शारीरिक स्तर पर कुछ स्वर्णिम रुक्म, चिह्न प्रकट होंगे। पूतना को स्त्री कहने के पीछे भी यही कारण हो सकता है। सोम का यह पूतिकरण घृत के स्तर पर बताया गया है। (ऋग्वेद ३.२.१)। योग में घृत के आविर्भाव के साथ घृं.... ई की ध्वनि जुड़ी है। यह कहा जा सकता है कि पूतना की चिल्लाहट यह घृं.... ई की ध्वनि है। इसे सुन कर ही गोप, हमारे शरीर की रक्षा करने वाली शक्तियाँ जाग पड़ती हैं, अन्यथा तो वे सोती ही रहती हैं। अथर्ववेद ६.५१ में

प्रार्थना की गई है कि माताएँ परमात्मा से प्राप्त होने वाले शुद्ध प्राणों (आप:) को प्रवाहित करें, रिप्र नामक पाप को हटाएँ आदि। यहाँ पूति करने वाली मातृशक्ति है जैसे पूतना।

आशा है कि पूतना की यह कथा वेद में पूत: सोम: तथा पूतदक्ष या पूतबल को समझने में सहायक होगी।

(त) ऋग्वेद १०.१६५ (विश्वेदेवा सूक्त) में कहा गया है कि यह जो निर्ऋति का दूत कपोत भीतर (घर में) घुस आया है, यह हमारे लिए कल्याणकारी हो। हेति पक्षिणी हमें हानि न पहुँचाए, आदि। इस सूक्त में कपोत शब्द का पोत शब्द भी सोम के पूतिकरण से सम्बन्धित है। इस सूक्त में हेति पक्षिणी पूतना हो सकती है। इस सूक्त की व्याख्या अलग से यथासंभव करने का प्रयास किया जाएगा। यहाँ इतना बताना पर्याप्त होगा कि हम जो भोजन आदि से शक्ति प्राप्त करते हैं, उसका एक अंश तो शुद्ध होकर ब्रह्मोदन कहलाता है। यह देवताओं का भाग है, उनकी पुष्टि करता है। दूसरा अंश रौद्र रूप धारण करता है। हमें क्रियाशक्ति देता है। तीसरा रूप निर्ऋति का भाग है। यह हमें हानि पहुँचाता है (अथर्व० ११.१.२५)

शकटासुर

कृष्ण को शकट या छकड़े के नीचे सुलाकर यशोदा यमुना में स्नान करने चली गई। शकटासुर, जिसे कंस ने हरा कर अपना मित्र बना लिया था, आकर शकट पर बैठ गया जिससे शकट भारी होकर टूट जाए, कृष्ण के ऊपर गिर पड़े और कृष्ण मर जाए। कृष्ण ने अपना पैर शकट पर मारा और शकट चूर-चूर हो गई। उल्टी हो गई। उस पर रखे दूध-दही के मटके पृथिवी पर बिखर गए। शकटासुर शकट के नीचे दबकर मर गया।

शकटासुर हिरण्याक्ष का पुत्र उत्कच था। एक बार वह लोमश ऋषि के आश्रम में घुस कर उपद्रव करने लगा तो लोमश ने उसे शाप दे दिया कि तुम देह रहित हो जाओ। द्वापर में कृष्ण तुम्हारा उद्धार करेंगे। वही वायुमय शरीर वाला उत्कच शकट पर आकर बैठा था (गर्ग संहिता १.१४)

इस कथा को समझने के लिए निम्नलिखित नामों को समझने की आवश्यकता होगी—

कच– बृहस्पति के पुत्र कच को देवताओं ने असुरों के गुरु शुक्राचार्य से संजीवनी विद्या सीखने के लिए भेजा। इसका कारण यह था कि देवासुर संग्राम में जो योद्धा मारे जाते थे, उनमें असुरों को तो शुक्राचार्य संजीवनी विद्या से जीवित कर लेते थे, लेकिन देवताओं के पास संजीवनी विद्या थी ही नहीं। अत: देवता जीवित नहीं हो पाते थे। कच ने शुक्राचार्य की सेवा करनी आरम्भ की तो असुरों ने देवताओं के भय से कच को

मारकर व्याघ्रादि को खिला दिया। शुक्राचार्य ने अपनी पुत्री देवयानी के कहने के कच के अवशेषों को एकत्र किया और संजीवनी विद्या से जीवित कर दिया। फिर असुरों ने कच को मारकर, जलाकर उसकी राख को सुरा में मिला कर शुक्राचार्य को ही पिला दिया। जब देवयानी के आग्रह से शुक्राचार्य ने कच को जीवित किया तो उसे अपने उदर में ही पाया। तब शुक्राचार्य ने कच को संजीवनी विद्या सिखा दी। कच शुक्राचार्य का पेट फाड़कर बाहर निकल आया और फिर संजीवनी विद्या से शुक्राचार्य को जीवित कर दिया। अब वह शुक्राचार्य का पुत्र बन गया। उसने देवयानी को अपनी बहन मान कर उससे विवाह करना अस्वीकार कर दिया। देवयानी ने उसे संजीवनी विद्या भूलने का शाप दिया। कच ने कहा कि वह स्वयं तो भूल जाएगा लेकिन जिसे वह सिखा देगा वह नहीं भूलेगा। उसने देवताओं को संजीवनी विद्या सिखा दी। (मत्स्य पु० २५, महा०)

कच धातु दीप्ति अर्थ में और बालों के अर्थ में प्रयुक्त होती है। शुक्र का अर्थ है शुक्ल, सफेद। यह कच, दीप्ति दैवी है, अतः बृहस्पति का पुत्र है। जब तक कच या दीप्ति केवल देवताओं के पास है असुरों के पास नहीं, तब तक देवता अमर नहीं हो सकते। अतः हमारे व्यक्तित्व का दैवत्व पक्ष अमरता प्राप्त करे, इसके लिए यह आवश्यक है कि कच शुक्राचार्य का पुत्र भी बने, हमारा आसुरी पक्ष, शारीरिक पक्ष भी ज्योतिर्मय बने। जब कच शुक्राचार्य रूपी आसुरी व्यक्तित्व में प्रकट होता है तो वहाँ काम, क्रोध आदि दुर्गुण उसे समाप्त करने में सफल होते हैं। उच्चतर पथ पर अग्रसर होने की इच्छा रूपी देवयानी के आग्रह से कच को पुनः जीवित करना पड़ता है। फिर तो कच यदि मरता है तो वह सारे शरीर में ही व्याप्त हो जाता है। अब यदि कच को पुनः जीवित किया जाता है तो उसका परिणाम होगा हमारे आसुरी व्यक्तित्व की मृत्यु होकर एक नए रूप में उसका जीवित होना, जिसके लिए कच उसका अभिन्न अंग है, उसका पुत्र है। अब यह कच केवल आसुरी व्यक्तित्व तक ही सीमित नहीं रह सकता, वह देवयानी से विवाह करने से इन्कार कर देता है। अब देवता कच के माध्यम से अमरत्व प्राप्त कर लेते हैं, लेकिन कच संजीवनी विद्या भूल जाता है। कच भी अंतिम अवस्था नहीं है, वह अमर नहीं हो सकती।

उत्कच– उत्कच पहले जन्म में परावसु गंधर्व का पुत्र श्रीभानु था। एक बार ब्रह्मा ने अपनी पुत्री वाग्देवी सरस्वती की ओर वासना दृष्टि से देखा। इस पर श्रीभानु और उसके भाइयों ने ब्रह्मा का उपहास किया। ब्रह्मा ने शाप देकर उन्हें आसुरी योनि में भेज दिया (गर्ग संहित ७.४२)।

राधा-कृष्ण के अंतःपुर में पहुँचने के लिए १४ द्वार पार करने पड़ते हैं और प्रत्येक द्वार पर द्वारपाल खड़े हैं जिनके नाम वसुभानु, देवभानु, आदि हैं। (ब्रह्मवैवर्त्त ४.५)। अतः भानु शब्द बहुत से स्तरों का द्योतक है। कृष्ण-पत्नी सत्यभामा, जो वसुधा का अंश

है, के पुत्र का नाम भी श्रीभानु है। जब ब्रह्मा अपने को व्यक्त करना चाहता है, वाक् की ओर देखता है तो श्रीभानु जो परावसु का पुत्र है, वह आसुरी स्तर पर व्यक्त होना नहीं चाहता। जो दीप्ति दैवी स्तर पर श्रीभानु कहलाएगी, वही आसुरी स्तर पर अवतरण करने पर उत्कच कहलाएगी। वायु पु० ४० अ० में आता है कि उत्कच शरीर की पुष्टि करते हैं।

घटोत्कच– घटोत्कच के जन्म लेने का उद्देश्य यह है कि इन्द्र की शक्ति, इन्द्रियों की शक्ति, जो ऊर्ध्वमुखी मन रूपी अर्जुन को मारने में समर्थ है, का प्रतिकार हो जाए। इसके अतिरिक्त उन आसुरी शक्तियों से, जहाँ मनुष्य की पहुँच नहीं है, मुकाबला करने में घटोत्कच उपयोगी सिद्ध होता है (वह लङ्का में विभीषण के पास पहुँच कर सहदेव के लिए कर रूप में धन लाता है)।

लोमश– साधना अवस्था में रोम-रोम पुलकित होने की अवस्था लोमश ऋषि है। ब्राह्मण ग्रंथों में आता है कि यज्ञ में पशु की आहुति लोम सहित दी जाती है। लोम चर्म (चरम अवस्था) को ढके रहते हैं। सबसे पहले सिर के लोम उत्पन्न होते हैं। सबसे पहले सिर पलित होता है, इत्यादि। यद्यपि शकटासुर की कथा को समझने के लिए लोमश का इतना ही वर्णन पर्याप्त होगा, फिर भी प्रसंग वश अन्य कथाएँ भी दी जा रही हैं—

(क) लोमश ऋषि का वक्षःस्थल रोमचक्रों से भूषित है, मध्य में कुछ रोम हीन है। एक कल्प में लोमश के एक रोम का उत्पाटन हो जाता है। जब सब रोम उत्पाटित हो जाएंगे तो लोमश की मृत्यु हो जाएगी। लोमश के जीवन काल में न जाने कितने इन्द्रों की मृत्यु होगी। फिर भी लोमश ने अपने को अल्पायु समझकर न घर बनाया, न विवाह किया। (लक्ष्मीनारायण संहिता १.४८६)

(ख) राजा इन्द्रद्युम्न ने लोमश को आचार्य बनाकर कच्छप के पृष्ठ को ऋतुक्षम जानकर उसके पृष्ठ को वेदी बनाकर इतने यज्ञ किए कि कच्छप की पीठ जल गई। तब दयालु लोमश ने कच्छप को मानसरोवर जाने का परामर्श दिया। वहाँ रहने से कच्छप ने नीरोगिता प्राप्त की। (लक्ष्मीनारायण संहिता १.५२०)

कूर्म या कच्छप प्राण का स्थान ललाट से सिर के मध्य का स्थान है। यह उदान प्राण कूर्म का भाँति धीरे-धीरे गति करता है। यह प्राण का उत्कृष्ट रूप है। कच्छप लोमश से बहुत डरता है कि यह फिर मेरे पृष्ठ को यज्ञ की वेदी बनाएगा।

(ग) केवल वह मनुष्य ही ईश्वर की प्राप्ति कर सकता है जिसके रोम उषा समाप्त होने पर विश्व से ऊपर की ओर खिल उठते हों। केवल खिलना ही पर्याप्त नहीं है, विश्व से ऊपर की ओर। (ऋग्वेद १०.८६.१६)

(घ) लोमश ऋषि ने इन्द्र के बराबर में अर्जुन को बैठा देखकर आश्चर्य प्रकट किया। इन्द्र ने कहा कि अर्जुन केवल मनुष्य नहीं है, वह नर का अवतार है। इन्द्र ने लोमश के माध्यम से पाण्डवों को काम्यक वन में संदेश भिजवाया और लोमश से पाण्डवों की रक्षा करने को कहा। लोमश ने पाण्डवों से मिलकर उनके साथ तीर्थयात्रा की। (महाभारत वनपर्व)

इसका अर्थ है कि लोमश ऋषि की गति ऊर्ध्वमुखी भी है और अधोमुखी भी।

(ङ) वंग देश का राजा दृढ़ाश्व लोमश ऋषि की कुरुपता पर हंसा। लोमश ने उसे शाप देकर कोल (सुअर) नामक क्रोड मुख असुर बना दिया। फिर बलराम ने उसकी मुक्ति की। (गर्ग संहिता ५.२४)

निहितार्थ यह है कि लोमश की कुरुपता, रूपवान स्थिति से या इस व्यक्त जगत से ऊपर अव्यक्त की स्थिति, का राजा दृढ़ाश्व आदर नहीं करता। अत: वह निश्चय ही असुर होने योग्य है।

(च) राजा महीजित् ने लोमश ऋषि से अपने पुत्रहीन होने का कारण पूछा। लोमश ने बताया कि वह पहले जन्म में एक वैश्य था जिसने सरोवर पर जल पीने के लिए आई हुई सवत्सा गौ को दूर भगा दिया था। यदि राजा श्रावण शुक्ल एकादशी को पुत्रदा व्रत और पवित्रारोपण करे तो उसे पुत्र की प्राप्ति हो सकती है। (पद्म पु० ६.५५)

सवत्सा गौ से तात्पर्य उस चेतना से है जिसकी पराक् और अर्वाक दोनों ओर गति हो सकती है– वह चेतना जो ऊर्ध्वमुखी भी हो सकती है और अधोमुखी होकर इस व्यक्ति जगत में भी अभिव्यक्त हो सकती है। पृथिवी पर जब भी संकट आता है तो वह गौ बन देवताओं के पास जाती है। सवत्सा गौ का दान बहुत उत्तम समझा जाता है। लोमश की गति दोनों ओर है।

(छ) शत्रुघ्न और उनके सहायक रामाश्वमेध के अश्व की रक्षा के संदर्भ में आरण्यक ऋषि के आश्रम पर पहुँचे। आरण्यक ऋषि ने बताया कि एक दिन उन्हें स्वर्ग से पृथिवी पर तीर्थयात्रा करने के लिए आए हुए लोमश ऋषि मिले। पूछने पर उन्होंने बताया कि रामभक्ति ही श्रेष्ठ है। (पद्म पुराण, रामाश्वमेधपर्व)

(ज) नैमिषारण्य में जमदग्नि ऋषि ने अन्य ऋषियों से पूछा कि किस देवता की पूजा करें– इन्द्र की, सूर्य की, पूषा की जिससे सबसे अधिक वांछित फल प्राप्त हो। लोमश ने कहा कि परा प्रकृति ही देवताओं की जननी है। आदि प्रकृति संसार वृक्ष की मूल है। उसी की पूजा करो। लोमश ने एक कथा सुनाई कि देवदत्त के यज्ञ में उद्गाता गोभिल ऋषि ने श्वास-प्रश्वास के द्वारा स्वरभंग कर दिया। इस पर देवदत्त ने गोभिल को भला-बुरा कहा। गोभिल ने शाप दे दिया कि उसका पुत्र मूर्ख होगा। फिर प्रसन्न होने पर वरदान दिया कि वह मूर्ख होने पर भी विद्वान होगा। कालांतर में देवदत्त की पत्नी रोहिणी

से उतथ्य उत्पन्न हुआ। वह मूर्ख था और कोई भी कर्मकाण्ड, ध्यान आदि न जानता था। एक बार वह अपनी अवस्था पर शोक करता हुआ मूक होकर बैठ गया। इतने में उसके पास एक बाण-विद्ध सूअर आया। थोड़ी देर बाद ही व्याध ने आकर सूअर के बारे में पूछा। दुविधा में उतथ्य के मुख से परा प्रकृति की कृपा से श्लोक निकल पड़ा कि जो देखा है वह कहा नहीं जा सकता, जो कहा है वह देखा नहीं जा सकता। तब उतथ्य का नाम सत्यव्रत हो गया। (देवीभागवत ३.१०)

(झ) लोमश ने राजा माँधाता को कथा सुनाई कि मेधावी ऋषि की तपस्या भंग करने के लिए इन्द्र ने मंजुघोषा अप्सरा को भेजा जिसने ऋषि के समीप जाकर कोकिल स्वर किया। ऋषि मंजुघोषा में आसक्त हो गए। अनंत संध्याएँ व्यतीत हो गई, तब ऋषि को चेत हुआ और वह अपने पिता च्यवन के पास उद्धार का उपाय पूछने गए। च्यवन ने चैत्र शुक्ल एकादशी का व्रत करने का परामर्श दिया। (पद्म पु० ६.४६)

राजा मांधाता का पालन इन्द्र करता है। वह क्षत्रियत्व तक ही सीमित है।

अच्छोदा सरोवर के निकट पाँच अप्सराओं ने एक ब्रह्मचारी का जबरन आलिंगन कर लिया। ब्रह्मचारी ने शाप देकर अप्सराओं को पिशाची बना दिया और अप्सराओं ने ब्रह्मचारी को पिशाच बना दिया। एक दिन लोमश ऋषि पौष मास की चतुर्दशी को सरोवर पर स्नान करने आए। ब्रह्मचारी के पिता वेदनिधि ने लोमश से पिशाचत्व से मुक्ति का उपाय पूछा। लोमश ने माघ मास में प्रयाग में या रेवा नदी में स्नान करने का उपाय बताया। (पद्म पु० ६.१२८, ३.२३)

पेश अर्थात् शरीर। लोमश इस शरीर की अवस्था से ऊपर उठाने का उपाय जानते हैं।

शकट– शकट शब्द शक्ति, शकत् से बना है। यह शक्ति के प्रवाहित होने का मार्ग है। चंद्रमा या सोम की अपनी २७ पत्नियों में से रोहिणी के प्रति बहुत आसक्ति है जिसके कारण उसे अपने श्वसुर दक्ष के शाप के कारण यक्ष्मा रोग हो गया। फिर वरदान के कारण उसका पहले क्षय होता है, फिर वृद्धि। चंद्रमा रोहिणी की शकट में बैठकर जाता है। एक बार शनि ने रोहिणी शकट का भेदन करना चाहा तो राजा दशरथ ने अपने बाणों से शनि को रोक दिया। शनि द्वारा रोहिणी शकट का भेदन दुर्भिक्ष उत्पन्न करने वाला, अशुभ माना जाता है। शनि ने दशरथ को रोहिणी शकट का भेदन न करने का वचन दिया।

जीव की शक्ति का आरोहण-अवरोहण (सुषुम्ना के माध्यम से) रोहिणी है।

उत्कच यदि लोमश के आश्रम में घुस जाता है तो फिर वह देहरहित हो जाता है, वायुमय हो जाता है, शरीर की अवस्था का अतिक्रमण करके ऊर्ध्वमुखी हो सकता है, वैसे ही जैसे शंकर के क्रोध से काम का देहरहित होना। यदि कच को बालों के अर्थ में लिया जाए तो उत्कच के केवल सिर के बाल ही पुलक होने से खड़े हुए हैं, जबकि

लोमश का तो रोम-रोम पुलकायमान है। कंस व्यक्तित्व की पहुँच उत्कच तक है। लेकिन शकटासुर की कथा यह संकेत करती है कि यदि शक्ति का आरोहण उत्कच अवस्था के माध्यम से होगा तो शकट टूट जाएगी, कृष्ण अवस्था मर जाएगी उत्कच के कारण शकट भारी हो जाएगी। (कृष्ण का पैर मारना) ?

एक अन्य दृष्टिकोण से, पूतना की स्थिति का सोम रस, भक्ति रस अब शुद्ध होकर पोत बन गया है, शकट बन गया है। लेकिन इसमें असुरत्व है।

तृणावर्त

कंस ने तृणावर्त असुर को हराकर उसे अपना मित्र बना लिया। कालांतर में उसे गोकुल में कृष्ण को मारने के लिए भेजा। तृणावर्त को गोकुल में आता जानकर कृष्णतने भारी हो गए कि यशोदा ने उन्हें गोद से उतार कर भूमि पर रख दिया। तृणावर्त कृष्ण को लेकर आकाश में उड़ गया। कृष्ण ने तृणावर्त को मार दिया। तृणावर्त भूमि पर गिर पड़ा। फिर गोपों ने कृष्ण को पृथिवी पर ही पाया। तृणावर्त मरने पर दिव्यता को प्राप्त होकर स्वर्ग चला गया। वह पहले पांड्य देश का राजा सहस्राक्ष था। एक बार वह पुष्पभद्रा नदी पर अपनी एक हजार स्त्रियों के साथ स्नान कर रहा था। उन्होंने दुर्वासा ऋषि का स्वागत नहीं किया जिससे उन्होंने शाप देकर तृणावर्त बन दिया।

(ब्रह्मवैवर्त्त पुराण ४.११)

सहस्राक्ष- (क) शिवशर्मा ने गणों से पूछा कि नयनों को आनन्द देने वाली यह पुरी किसकी है? गणों ने बताया कि यह सहस्राक्ष की पुरी है जिसे विश्वकर्मा ने तपोबल से बनाया है। यहाँ दिन में भी कौमुदी/चांदनी रहती है। जब अमावस्या को चंद्रमा छिप जाता है तो अपनी प्रेयसी ज्योत्स्ना को यहाँ छोड़ जाता है। यहाँ नीलमणि की नीलिमा छाई रहती है। चंद्रकांत शिलाजाल से ऐसा प्रभूत जल निकलता है जिसे लेकर अन्य जल लेने की इच्छा नहीं रहती। यहाँ कामधेनु से सब प्रकार के रस मिलते हैं। यहाँ उच्चैःश्रवा अश्व, ऐरावत हाथी, पारिजात तरुरत्न, स्त्रीरत्न उर्वशी, वनरत्न नंदन, जलरत्न मंदाकिनी आदि हैं। (स्कंद पु० ४.१.१०)

क्या यह सहस्राक्ष की स्थिति वह विराट रूप की स्थिति है जिसके लिए पुरुषसुक्त ऋग्वेद १०.९० में कहा गया है— सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्र पात् ?

(ख) सहस्राक्ष/इन्द्र गौतम ऋषि की अनुपस्थिति में गौतम का रूप धारण करके गौतम-पत्नी अहल्या के पास आया और उससे मैथुन किया। गौतम ऋषि जब नदी में स्नान के पश्चात् अपने आश्रम को लौटे तो सहस्राक्ष मार्जार का रूप धारण करके भागा। गौतम ऋषि ने जान लिया। उन्होंने शाप दिया कि तुम सहस्रयोनि हो जाओ। उसके वृषण भी कट गए। बाद में देवताओं ने मेष के वृषण जोड़े। (ब्रह्मवै० पु० ४.४७ तथा अन्य)

अहल्या के बारे में पुराणों में वैदिक संदर्भ सूत्र भाग १ में लिखा गया है।

गौतम— गौ की सर्वोच्च स्थिति है। गौतम को निचले स्तर पर अवतरित होना बिल्कुल पसंद नहीं है। (प्रमाण के लिए, गौतम की कसमें पर जो अगस्त्य के विसों की चोरी होने पर गौतम ने खाई— महाभारत अनुशासन पर्व)। ऐसी उच्चतम स्थिति सर्वदा नहीं रह सकती। गौतम की अनुपस्थिति का लाभ सहस्राक्ष उठाना चाहता है। यह सहस्राक्ष सहस्रशीर्ष होने की प्रवृत्ति जान पड़ती है। गौतम का तर्क है कि सहस्राक्ष होते हुए सहस्रशीर्ष होना संभ्‌व नहीं, अत: उसे सहस्रयोनि बनना पड़ा। योनि के दो अर्थ हैं। यहाँ जो अर्थ अभिप्रेत है, वह योग से संबंधित सिर में स्थित योनि है जिसमें सारी ऊर्जा भरी रहती है। सहस्रयोनि को सहस्रशीर्ष का विकृतरूप कह सकते हैं। सहस्राक्ष को यदि हजारों इन्द्रियों वाला माना जाए तो वृषण कटने का अर्थ है कि मानसिक स्तर की शक्ति की वर्षा से ही इन्द्रियां जीवित रहती हैं। गौतम ने इन्द्र के यह वृषण काट दिए हैं। अब मेष अर्थात् निमेष-उन्मेष से वृषण प्राप्त होंगे। उन्मेष-निमेष का अर्थ है, ऊपर से, ऊंकार से शक्ति प्राप्त करके निचले स्तर पर उसे वितरित करना।

(ग) राजा सहस्राक्ष सत्य लोक, पाताल लोक, भूलोक, कहीं भी अपने विमान में बैठकर जा सकता है। वह व्योमतंतुओं से सुनता है, एक गृह में स्थित रहते हुए भी उसकी प्रजा चारों दिशाओं में फैली है। वह सत्यलोक में परमेष्ठी की संसद में आता जाता है लेकिन उसे चिन्ता है कि वहाँ उसे प्रथम स्थान प्राप्त नहीं है। उसने विप्रों के कहने से अग्निष्टोम, वाजपेय आदि सब यज्ञ किए, लेकिन शान्ति नहीं मिली। फिर आयु के अन्तिम वर्षों में अधिक मास या पुरुषोत्तम मास में यज्ञ करते हुए उसे हरि की दुंदुभी सुनाई पड़ी। वह समझ गया। उसने व्रत किया। उसे वैराज पद की प्राप्ति हुई।

(लक्ष्मीनारायण सं० १.३०८)

एक साधक के समक्ष जो उषाएं प्रकट होती हैं, उनमें १२ रंग बदलते हैं, जैसे कि बाहर १२ मास होते हैं। यह १३वां मास विशेष महत्त्वपूर्ण है।

(घ) सुचंद्र-पुत्र पुष्कराक्ष/सहस्राक्ष के गले में महालक्ष्मी का कवच और दाहिनी भुजा में दुर्गा कवच बंधा था, अत: परशुराम उसका वध न कर सके। यह कवच उसने सनत्कुमार से प्राप्त किए थे। जब विष्णु ने उससे दोनों कवच मांग लिए, तब परशुराम कठिनता से उसका वध कर सके। (ब्रह्मवैवर्त्त पु० ३.४०)

(ङ) वर्तमान तृणावर्त संदर्भ का सहस्राक्ष पांड्य देश का राजा है। दक्षिण दिशा में पांड्य देश का राजा हरिचंदन से शोभित है, उसका पुत्र मलयध्वज है (महाभारत)। दक्षिण दिशा यम-नियम आदि से जुड़ी है। जिस साधक ने यम-नियम द्वारा सहस्राक्ष की स्थिति प्राप्त की है वह पांड्य देश का राजा है। उसने अपनी साधना से शरीर में चंदन की सुगंध प्राप्त कर ली है, लेकिन उसने दुर्वासा से संबंधित अपनी व़ासनाओं का

परिष्कार नहीं किया है। अतः जब वह देह के स्तर पर अवतरण करेगा तो वह तृणावर्त असुर बनेगा। यदि सहस्राक्ष की शुद्ध स्थिति होती तो वह पुरुष सूक्त का सहस्रपाद बनता।

तृण– (क) दर्भ के ऊपर से तृण हटाकर इषीका/सींक अलग कर ले— शतपथ। वेद में इष और उष् दो शब्द हैं, वैसे ही जैसे ईति और ऊति। इष तृण से ऊपर जाने वाले शक्ति है, उष् ऊपर से तृण में अवतरित होने वाली शक्ति है।

(ख) यज्ञ में औषधि से सोम निकाल कर तृण या काष्ठ को सोम से बाहर निकाल कर फेंक देते हैं। ऐसा न करें। सोम क्षत्र है, अन्य औषधि विट है। (शतपथ ३.२.२.८)

(ग) अग्नि ने तृण को जलाया। पर्जन्य ने वर्षण किया। उससे कल्याणप्रद औषधि उत्पन्न हुई। उन्हें धेनुओं ने खाया। उससे दूध हुआ। उसका यज्ञ में उपयोग हुआ।

(जैमिनीय ब्राह्मण २.१५७)

(घ) अग्नि देवों और असुरों दोनों के पास है। देव अग्नि से अमृत की प्राप्ति करते हैं। जब असुरों से पूछा गया कि वह अग्नि का क्या करेंगे तो उन्होंने कहा कि हम तृण जलाएंगे, काष्ठ जलाएंगे, मांस पकाएंगे, ओदन पकाएंगे। (काण्व शतपथ १.२.२.८)

यहां मांस से तात्पर्य मांसल भोगों से हो सकता है। तृण की शक्ति इष का उपयोग चाहे तो अमृत की प्राप्ति में कर सकते हैं अथवा विषयभोगों में।

(ङ) यज्ञ में तृण को बीच में से काट दिया जाता है। बाएं हाथ में तृण का अग्र भाग और दक्षिण हाथ में तृण का मूल भाग (काण्व शतपथ ४.८.२.९)।

(च) जैसे जलायुका (जौंक) तृण के अंत में पहुंचकर फिर शरीर का संकोचन करती हैं, ऐसे ही यह पुरुष इस शरीर को मार कर अविद्या को लांघकर आत्मा का संकोचन/उपसंहार करता है। (शतपथ १४.७.२.४)

(ज) ऋषि के शाप से जाम्बवती-पुत्र साम्ब के गर्भ से मुसल उत्पन्न हुआ। उसे राजा उग्रसेन ने चूर्ण कराकर समुद्र में फिंकवा दिया। उससे समुद्र तट पर एरका तृण उत्पन्न हुआ। यादवों ने मदमत्त होकर एरका तृण को मुष्टि से उखाड़ कर एक दूसरे पर प्रहार किया। वह एरका तृण वज्र बन गया जिससे सब यादवों की मृत्यु हो गई।

(झ) गौतम ने दुर्भिक्ष के समय में अन्य ऋषियों को अपने आश्रम में शरण दी क्योंकि उसके आश्रम की सस्य दुर्भिक्ष से प्रभावित नहीं होती। जाते समय ऋषियों ने एक मायामयी गौ की रचना कर गौतम के आश्रम में छोड़ दी। जब वह गौ गौतम की सस्य खाने लगी तो गौतम ने तृण की मुष्टि से गौ पर प्रहार किया। गौ मर गई। बाद में गौतम ने प्रायश्चित्त किया।

(ट) हे अ-हननीय गौ, तुम तृण का भक्षण करो, शुद्ध उदक पिओ। (ऋ० १.१६४.४०)

(ठ) वृष के मुख में जो तृण है वह भी देवों के लिए है। (ऋ० १.१६२.८)

(ड) शर्करा, सिकता, अश्मा, ओषधि, वीरुध, तृण, अभ्र, विद्युत यह उच्छिष्ट से उत्पन्न होते हैं– अथर्ववेद ११.९.२१। उच्छिष्ट के बारे में पुराणों में वैदिक संदर्भ सूत्र भाग २ में लिखा गया है। यह अवशिष्ट ऊर्जा है जो हमारे शरीर का पोषण होने के पश्चात् बची रहती है। यह चाहे तो क्षुद्र आनन्द में व्यर्थ की जा सकती है, चाहे इसे ऊर्ध्वमुखी बनाया जा सकता है।

(ढ) जैसे भूमि पर वात तृण का मंथन करती है ऐसे ही मैं तेरे मन का मंथन करता हूँ जिससे तेरा मन अन्य कहीं न जाए। (अथर्ववेद २.३०.१)

ऐसा प्रतीत होता है कि यह तृण का मंथन सारी मानसिक शक्ति को देह में समाहित कर देना है। फिर मन कहीं और नहीं जाएगा। यह स्थिति ऐसी ही है जैसे शवासन में हो सकती है।

(ण) वनवास के समय पाण्डव काम्यक वन में तृणबिन्दु राजर्षि के आश्रम पर पहुँचे। तृणबिन्दु और अपने पुरोहित धौम्य के कहने से पाण्डव मृगया के लिए चले गए। पीछे जयद्रथ ने द्रौपदी का हरण कर लिया। बाद में पाण्डवों ने जयद्रथ को लज्जित करके द्रौपदी को छुड़ाया। (वनपर्व २६४.५, शल्य पर्व ६१.४६)

(त) पुलस्त्य ऋषि राजर्षि तृणबिन्दु के आश्रम में रहते थे। विघ्न से बचने के लिए पुलस्त्य ने शाप दिया कि जो कन्या इस आश्रम में प्रवेश करेगी वह गर्भ धारण कर लेगी। गलती से तृणबिन्दु की कन्या इडविडा ने वहाँ प्रवेश किया जिससे वह गर्भवती हो गई। उससे विश्रवा का जन्म हुआ। विश्रवा से रावण, कुबेर आदि (रामायाण ७.२)।

पुलस्त्य के बारे में पु० वै० सं० सू० भाग १ देखें। पुर का स्त्यान, फैलाव पुलस्त्य ऋषि है। वह देहरूपी पुर से मुक्त नहीं है। अतः उसके पौत्र आसुरी प्रवृति वाले हैं। ऐसे ही तृणबिन्दु है जिसने तृण का अतिक्रमण नहीं किया है, अपितु, बिन्दु रूप में तृण से बंधा है।

तृणावर्त– ऐसा प्रतीत होता है कि तृणों की इष् शक्ति का ह्रास तृण के ऊपर भंवर/लहर बनने में हो रहा है। यह शक्ति का ह्रास कृष्ण शक्ति को हानि पहुंचा सकता है। यह कृष्ण को आकाश तक तो ले जा सकता है लेकिन उसे सर्वोच्च स्थिति में स्थापित कर देने की क्षमता तृणावर्त में नहीं है। अतः साधना काल में इस देह के ऊपर बन रही लहरियों का भी नाश हो यह अपेक्षित है जो कृष्ण करते हैं।

बकासुर

कंस ने बहुत से असुरों को पहले हराया, फिर उन्हें अपना मित्र बना लिया। बकासुर उनमें से एक है। कृष्ण जब मधुवन में गाय चरा रहे थे तो बकासुर ने आकर कृष्ण को निगल लिया। तब सभी देवताओं ने अपने-अपने अस्त्रों से बकासुर पर प्रहार

किया। कुबेर ने अपना अर्धाचंद्राकार बाण मारा। उससे बकासुर के पैर कट गए लेकिन वह मरा नहीं। ऐसे ही किसी के अस्त्र से उसके पर कट गए, किसी से वह मूर्छित हो गया लेकिन मरा नहीं। कृष्ण के शरीर को वज्र रूप में पाकर बकासुर ने उन्हें बाहर निकाल दिया। तब कृष्ण ने उसकी चोंच को चीर कर बकासुर को मार दिया। बकासुर पहले जन्म में हयग्रीव का पुत्र उत्कल था जो जाजलि ऋषि की पर्णशाला में मछली पकड़ रहा था। जाजलि ने उसे शाप दिया कि वह बगुले की तरह मछली पकड़ रहा है, अत: बक हो जा। कृष्ण तेरा उद्धार करेंगे। (गर्गसंहिता)

बक– महाभारत आदिपर्व में कथा आती है कि वारणावत नगर के जतुगृह से सुरक्षित निकलने के पश्चात् पाण्डव एकचक्रा नगरी में एक ब्राह्मण के घर ठहर गए। ज्ञात हुआ कि उस नगरी के बाहर बकासुर राक्षस रहता है जो प्रतिदिन नगरी से एक महिष और पुरुष की बलि लेता है। इसके बदले वह नगरी की शत्रुओं से रक्षा करता है। भीम ने उसे मार दिया। मार्कण्डेय पुराण में हरिशचन्द्र को कष्ट देने के अपराध में वशिष्ठ विश्वामित्र को बक हो जाने का शाप दे देते हैं। एक अन्य कथा (स्कंद ५.३.८) में जब ऋषि मार्कण्डेय प्रलय के पश्चात् एकार्णव में तैर रहे थे तो शिव ने बक का रूप धारण कर अपने पंखों पर मार्कण्डेय को बैठा लिया। बक वाक् का एक रूप है। वेद में वाक् शब्द से अभिप्राय है हमारी चेतना का व्यक्त रूप। जो कुछ भी हम अभिव्यक्त करते हैं— विचार, क्रियाएँ आदि, सब वाक् के अंतर्गत आते हैं। एकचक्रा नगरी–वेद में सूर्य के एक चक्र रथ का वर्णन आता है। यदि रथ में दो चक्र हों तो उसका अर्थ होगा कि चेतना की दो प्रकार की गति है— एक ऊर्ध्वमुखी, एक अधोमुखी। जब केवल एक चक्र रह जाता है तो केवल ऊर्ध्वमुखी गति रह जाती है। अत: ऊर्ध्वमुखी गति में बकासुर रूपी वाक् का होना एक दोष होगा।

जाजलि– महाभारत शान्तिपर्व २६१ में कथा आती है कि जाजलि ऋषि की जटाओं में पक्षियों ने घोंसला बना लिया, फिर अंडे दिए, फिर अंडों से बच्चे उत्पन्न हुए। फिर वह उड़ने लगे। पहले वह दिनभर बाहर रह सांयकाल लौट आते थे, फिर वह कई दिन में लौटते, फिर जब एक मास में भी नहीं लौटे तो जाजलि ने समझ लिया कि अब मुझे सिद्धि प्राप्त हो गई है। तभी जाजलि ने सुना कि उससे बड़ा सिद्ध तो वैश्य तुलाधार है। जाजलि ने तुलाधार से शिक्षा ग्रहण की। जाजलि पश्चिम समुद्र तट पर तपस्या करते हैं। यज्ञ में जाजलि को पश्चिम द्वार का रक्षक ऋत्विज नियुक्त किया गया (पद्म पुराण ५.१०)। इस कथा से स्पष्ट है कि जाजलि की जटाओं का आश्रय लेकर उड़ने वाले पक्षी उसकी चेतना है। योग में चेतना, जिसका नाम कुंडलिनी शक्ति या अन्य कुछ हो सकता है, एक स्थिति में शरीर से बाहर निकल ऊपर और ऊपर के लोकों में चढ़ती जाती है। तुलाधार के उपदेश का आशय हो सकता है कि केवल ऊपर चले जाना पर्याप्त नहीं है, तुला की तरह संतुलित स्थिति होनी चाहिए। जाजलि की तपस्या की दिशा पश्चिम है जो

वरुण की दिशा है, अर्वाक गति, पराक गति की दिशा है, सत्यानृत विवेक की दिशा है। दूसरे दृष्टिकोण से, जाजलि की जटाओं के पक्षी उसके मन के विचार हैं जो उड़ते रहते हैं। जब यह विचार एक बार समाप्त होकर वापस नहीं लौटते, मन निर्विचार हो जाता है तब जाजलि अपनी साधना की सिद्धि समझता है। जाजलि– जिसने जायमान को जला दिया है।

हयग्रीव– कथा आती है कि भगवान् हयग्रीव ने वेद अपहरण करने वाले हयग्रीव असुर का वध किया। अन्य कथा में भगवान् यज्ञवराह हयग्रीव का वध करते हैं। हयग्रीव कौन है? शारदा तिलक तंत्र में आता है कि हयग्रीव को ढकने वाला पहला आवरण प्रज्ञा हय, स्मृति हय, मेधा हय, विद्या वागीश हय इत्यादि ८ हयों से बना है। इन हयों को प्राप्त कर लेने के पश्चात् ही हयग्रीव की उपलब्धि हो सकती है। हयमुख से मधुविद्या का उपदेश किया जाता है। जिसने यह आवरण नहीं खोला, वह हयग्रीव असुर हो सकता है।

उत्कल– वेद और तैत्तिरीय ब्राह्मण में उत्कूल-विकूल शब्द आता है। उत्कूल-चेतना को ऊर्ध्वमुखी करना, विकूल-चेतना को अधोमुखी करना। उत्कल देश भी है जहाँ इन्द्रनील मणि छिपी है (इन्द्रद्युम्न की कथा, स्कंद पुराण १.२.७)।

ध्रुव की पत्नी इडा से उत्कल नामक एक पुत्र उत्पन्न होता है। उत्कल जन्म से ही शान्तचित्त, आसक्तिशून्य, समदर्शी था। सम्पूर्ण लोकों को अपनी आत्मा में और आत्मा को सम्पूर्ण लोकों में स्थित देखता था। उसके अंत:करण का वासना रूप मल अखण्ड योगाग्नि से भस्म हो गया था। वह अज्ञानियों को मूर्ख, अंधा बहरा, पागल अथवा गूंगा प्रतीत होता था। अत: मंत्रियों ने उसे राजा न बनाकर ध्रुव के अन्य पुत्र को राजा बनाया (भागवत ४.१३)। सम्राट की पत्नी उत्कला से मरीचि का जन्म होता है (भागवत ५.१५.१५)। इल या सुद्युम्न के तीन पुत्र उत्कल, गय और हरिताश्व हैं।

मत्स्य– राजा विराट मत्स्य देश का राजा है। अत: मत्स्य विराट से जुड़ा है। महाभारत शान्ति पर्व १३७ में प्रत्युत्पन्न मति, दीर्घसूत्री आदि मत्स्यों का नाम आता है।

जब आसुरी चेतना (हयग्रीव) की ऊर्ध्वमुखी गति (उत्कल) होती है तो उसे शक्ति (मत्स्य) प्राप्त होती है, उसका उपयोग चेतना के व्यक्त रूप को पुष्ट करने (बक) के लिए होता है। फिर ऊर्ध्वमुखी साधना नहीं चलती। ऐसे बकासुर का वध कृष्ण करते हैं। दूसरे दृष्टिकोण से मत्स्य का अर्थ सोम रस की ऊपर की ओर गति है। उस गति में जो बाधा डाले वह बकासुर है। मत्स्य को योग की ऋद्धि-सिद्धियाँ भी कह सकते हैं। बकासुर को तो इन्हीं सिद्धियों को प्राप्त करने की इच्छा है, ऊपर बढ़ने की नहीं।

वत्सासुर

मुर का पुत्र प्रमीळ ब्राह्मण का रूप धारण कर वसिष्ठ के आश्रम पर पहुँचा और

उनसे कामधेनु की मांग की। वसिष्ठ तो यह जानकर कि यह असुर है, चुप रहे किन्तु कामधेनु ने शाप दिया कि तू वत्स हो जा। द्वापर में कृष्ण द्वारा तेरा उद्धार होगा। इस वत्सासुर को कंस ने हराकर अपना मित्र बना लिया, फिर वृन्दावन में कृष्ण को मारने भेजा। गोप वत्स चरा रह थे और कृष्ण छोटे होने के कारण घुटनों से रेंग कर वहाँ पहुंचे थे। वत्सासुर ने कृष्ण के कंधों पर अपने पिछले पैरों से वार किया। कृष्ण ने उसकी पूँछ और पिछली टाँगे पकड़ कर घुमाया और कपित्थ वृक्ष में पटक कर मारा। इससे वत्सासुर मर गया और कपित्थ वृक्ष भी गिर गया। (गर्ग संहिता)

इस कथा के संदर्भ में मुर कौन है, इसका संकेत कल्याण साधना अंक के पृष्ठ २४७ पर प्राप्त हुआ। वहाँ मार्कण्डेय पुराण का संदर्भ देकर यह कहा गया है कि मनुष्य को बांधने वाले आठ पाशों में से मुर सातवाँ पाश है और यह शील से सम्बन्धित है। मुर के सम्बन्ध में इस कथन की पुष्टि निम्नलिखित कथाओं से होती है—

(क) सत्यभामा पत्नी की मांग पर कृष्ण इन्द्र से पारिजात वृक्ष मांगने गए। इन्द्र ने कहा कि पहले मेरी माता अदिति के कुंडल, जिनका पृथिवी पर प्राग्ज्योतिषपुर के राजा नरकासुर ने अपहरण कर लिया है, वापस दिलाओ। कृष्ण ने प्राग्ज्योतिषपुर के बाहर मुर के छह (छह हजार) पाश और छुरे लगे देखे। उन्होंने सब पाशों को काट कर मुर का वध कर दिया। (हरिवंश २.६३)

(ख) निंबशुच मुनि ने भिक्षा द्वारा अर्जित अपनी सारी सम्पत्ति से स्वर्ण खरीद लिया। किसी ग्राम से कथा के लिए न्यौता मिलने पर वह अपने शिष्य दु:शील के साथ चले। दु:शील ने मुरला नदी के तट पर किसी बहाने से उनके स्वर्ण का अपहरण कर लिया (स्कंद पु० ६.२७४)। अत: मुर से सम्बन्धित स्थान पर दु:शील द्वारा सम्पत्ति नष्ट होने का भय है।)

(ग) बालकृष्ण मुरमाषा नगरी में गए। उस नगरी के राजा कोलक ने अपनी कन्या का कृष्ण से विवाह कर दिया और दिव्य दृष्टि पाई। (लक्ष्मीनारायण संहिता २.१९९)

(घ) पाशों का क्रम इस प्रकार गिनाया जाता है— जाति, कुल, शील। अत: कुल वाले पाश पर नियंत्रण करके मुर की शील वाली नगरी पर नियंत्रण किया जा सकता है।

यह शील क्या है, इस को स्पष्ट करने के लिए निन्मलिखित कथाएँ हैं।

(क) प्रह्लाद से इन्द्र ने शील माँग लिया। इससे शील निकल कर इन्द्र में समा गया। तब प्रह्लाद के शरीर से क्रमश: धर्म, सत्य, वृत्त, बल और श्री भी पलायन कर गए। उन्होंने कहा कि हम तो जहाँ शील हैं, वहीं रहते हैं। (महाभारत शान्तिपर्व १२४)

(ख) अनंत चतुर्दशी व्रत की कथा के संदर्भ में कौण्डिन्य मुनि ने अपनी पत्नी शीला के कहने से अनंत की खोज आरम्भ की। अंत में उसे अनंत के दर्शन हुए।

(भविष्यपुराण ४.९४)

शील, प्रज्ञा और समाधि यह ऊपर की तीन अवस्थाएँ हैं। अपने पापों को जला देने वाले कौण्डिन्य मुनि को शीला प्राप्त हो जाती है। बस यहीं से प्रज्ञा और समाधि रूपी अनंत की खोज आरम्भ होती है।

(ग) शमीक ऋषि की पत्नी शीली से इन्द्र के सारथि मातलि का जन्म होता है।

(द्रष्टव्य-पु० वै० सं० सू० भाग ३)

(घ) नारद मुनि राजा शीलनिधि की पुत्री श्रीमती से विवाह करना चाहते थे। नारद द्वारा मांग करने पर विष्णु ने उन्हें सुंदर रूप के स्थान पर वानर मुख दे दिया। श्रीमती ने स्वयंवर में वानरमुख नारद का वरण न कर विष्णु का वरण किया।

(शिव पु० २.१.३)

वानर— यह ऊपर भी गति कर सकता है और नीचे पृथिवीलोक की ओर भी। यह नारद की विशेषता है। शीलनिधि की पुत्री श्रीमती को यह अभीष्ट नहीं है।

प्रसंगवश मुर के संदर्भ को पूरा करने के लिए निम्नलिखित कथाएँ और दी जाती हैं—

(क) ब्रह्मकल्प में मुर ने, जिसने तप करके ब्रह्मा से किसी से न मरने का वरदान प्राप्त कर लिया था, देवताओं, ब्रह्मा, रुद्र आदि सबको हरा दिया। फिर उसने विष्णु से युद्ध किया। युद्ध से थक कर विष्णु बदरी आश्रम में सिंहमुख गुफा में जाकर सो गए। मुर ने उन्हें ढूँढ निकाला। तब सोते हुए विष्णु के शरीर से विजया नामक सुंदर देवी प्रकट हुई जिसने कहा कि उसकी एकादश कन्याएँ हैं। उसने मुर से विवाह के लिए युद्ध की शर्त रखी। विजया ने हुंकार द्वारा मुर को मार दिया। एकादशी देवी ने विष्णु से वर रूप में तिस्रः वाचः (तीन वाकों) को माँग लिया।

(भविष्य ३.४.१६, पद्म पु० ६.३८, लक्ष्मीनारायण संहिता १.२३४)

छह पाशों में बंधा यह जीवात्मा मुर नामक असुर है। यह ब्रह्मा की, इस संसार में विकसित होने की, वर्धित होने की तपस्या करता है। सत्त्व, रज, तम रूपी तीनों विष्णु, महेश और ब्रह्मा द्वारा इसकी मृत्यु नहीं हो सकती। जब एकादश इन्द्रियों की शक्ति, पराशक्ति, कुंडलिनी शक्ति प्रकट होगी, तभी इसकी मृत्यु हो सकती है। मुर के मरने पर पराशक्ति कारण, सूक्ष्म और स्थूल देह में तीन वाकों के रूप में प्रकट हो जाएगी।

(ख) दनु-पुत्र मुर ने ब्रह्मा की तपस्या से वरदान प्राप्त किया कि वह जिसे अपने हाथ से स्पर्श कर दे, उसकी मृत्यु हो जाए। फिर वह सब देवों को हराकर विष्णु के पास गया। विष्णु ने कहा कि तुम्हारा हृदय क्यों काँप रहा है? मैं ऐसे कायर से नहीं लड़ता। मुर ने कैसे? कहाँ? कहते हुए हृदय पर अपना हाथ रखा। विष्णु ने चक्र से तुरन्त उसके हृदयकमल का मोचन कर दिया। (वामन पु० ६०)

ऋग्वेद के सायण भाष्य में मुर का अर्थ मरणशील, क्षर जीवात्मा किया गया है।

पाशबद्ध जीवात्मा के पुत्र प्रमीळ (विशेष धन या आनन्द) में भी इतनी शक्ति है कि वह ऊर्ध्वमुखी साधना द्वारा वसिष्ठ के आश्रम में पहुँच जाए और कामधेनु से प्राप्त दुग्ध की, परलोक से प्राप्त ऋद्धि--सिद्धि की कामना करे। लेकिन चूँकि वह पाशबद्ध जीव का पुत्र है, अतः कामधेनु का वास्तविक लाभ वह नहीं उठा पाता। वह वत्स नहीं, केवल वत्सासुर बनता है। वत्स कौन है, इसे स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित कथाएँ हैं—

(क) कश्मीर के राजा शौर्यवर्मा ने खेल के बहाने शश-खरगोश के पीछे शुनी दौड़ाई। शश दौड़ते हुए कीचड़ में गिरा जो वत्स ऋषि के पैरों को धोने के जल से बना था। वह शश वहाँ मर गया और स्वर्ग में गया। पीछे से शुनी भी उस कीचड़ में गिरी और स्वर्ग को गई। वत्स ऋषि का शिष्य स्वकंधर यह देखकर हंसा। राजा ने उससे हंसने का कारण पूछा तो उसने बताया कि यह कीचड़ ब्रह्मविद्या सम्बन्धी गीता के १४वें अध्याय का पाठ करने वत्स ऋषि के चरणों को धोने से उत्पन्न हुआ है। अतः यह शश और शुनी, जो पहले जन्म में ब्राह्मण और उसकी पत्नी थे, स्वर्ग गए हैं।

(पद्म पु० ६.१८८)

गीता का १४वां अध्याय गुणों, सत्त्व, रज और तम से ऊपर गुणातीत अवस्था में पहुँचने से संबंधित है। जब तक जीवात्मा को तंद्रा, स्वप्न और निद्रा आदि सताते हैं तब तक वह गुणों से ऊपर नहीं उठा है। शश ध्यान में चंद्रमा के प्रकाश से और शुनी इस शरीर से संबन्धित हो सकती है।

(ख) मेनका अप्सरा पृथिवी पर उतर कर काम्यक वन में भ्रमण कर रही थी। उसे देखकर देवरात ऋषि का वीर्य स्खलित होकर जल में गिर पड़ा। उस जल को एक मृगी ने पी लिया जिससे उसने मृगावती कन्या को जन्म दिया। वत्स नामक ब्राह्मण ने देवरात से उस कन्या को अपनी पत्नी के रूप में प्राप्त कर लिया। कालांतर में मृगावती की सर्पदंश से मृत्यु हो गई। इसके पश्चात् वत्स ब्राह्मण जहाँ भी सर्प देखता, डंडे से मार डालता। एक बार उसने एक वृद्ध सर्प को मारा तो उस सर्प को दिव्य रूप प्राप्त हो गया। वह सर्प पहले जन्म में एक ब्राह्मण था जिसने समाधिस्थ सुप्रभ पर सर्प छोड़ा था। तब उसके शिष्य श्रीवर्धन ने उसे शाप से सर्प ही बना दिया जिसकी मुक्ति वत्स के दंड से हुई। फिर दिव्य रूप प्राप्त सर्प ने वत्स को अहिंसा का उपदेश दिया और शिव का षडक्षर मंत्र सिखाया। इनके प्रभाव से वत्स ऋषि आयु समाप्त होने के पश्चात् भी युवा बने रहते हैं और उन्हें सिद्धियाँ, लोकांतर ज्ञान और खेचरत्व प्राप्त है। (स्कंद पु० ६.२९)

वत्स की पत्नी मृगावती दिव्य जैसी है, उसका जन्म देवरात और मेनका से हुआ है, जैसे मेनका और विश्वामित्र से शकुन्तला का जन्म। मृग— जो मृग्यमाण है, जिसकी खोज है, परमात्मा की शक्ति। लेकिन वत्स इसकी रक्षा नहीं कर पाता। उसके दुर्गुण रूपी सर्प उसे डंस लेते हैं। तब वत्स दुर्गुणों को मारने का उद्योग करता है। जब वह अहिंसा

व्रत ले लेता है, दुर्गुणों को मारने की आवश्यकता नहीं रह जाती, दुर्गुण भी दिव्य रूप धारण कर लेते हैं, तब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

(ग) वसुमान राजा और उसकी पत्नी व्रतपा से वत्सराज पुत्र का जन्म हुआ। वत्सराज के पास सूर्य का दिया हुआ नर स्वर वाला पपीहक हय है। वत्सराज का पुत्र युधिष्ठिर या धर्म का अंश बलखानि है। (भविष्य पु० ३.३.७)

(घ) त्वष्टा ने अपनी पुत्री संज्ञा का स्वयंवर किया। संज्ञा ने सूर्य का वरण किया। तब असुर देवों ने लड़ने लगे। वत्सासुर का युद्ध भग देवता से हुआ। (भविष्य पु० ३.४.१८)

भग ज्योति परमात्मा की ज्योति है जो जीवात्मा में अवतरित होती है। तब जीवात्मा भगवान् बनता है। भग एव भगवान् अस्तु मह्यम्। लेकिन यदि जीवात्मा पाशों में बंधा है तो वह इस भग ज्योति का उपयोग नहीं कर पाएगा। भग की पत्नी का नाम है सिद्धि और उसके पुत्र हैं महिमा, विभु, प्रभु और आशिष्। (भागवत ६.६, ६.१८)

ब्राह्मण ग्रंथों में आता है कि वत्स का ग्रहण कर लेने से गौ अपने आप पीछे-पीछे खिंची चली आती है। वत्स जो धेनु का दुग्ध पीता है, उससे पशुत्व की पुष्टि होती है। जिस दुग्ध का दोहन किया जाता है, उसका यज्ञ कार्य में उपयोग किया जाता है।

जिस समय वत्सासुर का वध होता है, उस समय कृष्ण बहुत छोटे हैं, घुटनों के बल रेंगते हैं। वत्सासुर का पिता मुर भी अभी जीवित है, उसका वध बहुत बाद में, द्वारका बसने के पश्चात् होता है। कृष्ण की इतनी छोटी अवस्था का विकास कर लेने पर भी जीवात्मा को सिद्धियाँ मिलनी आरम्भ हो जाती हैं।

वत्सासुर की वर्तमान कथा का कपित्थ वृक्ष कपि रूपी मन जिसमें स्थित है, ऐसे हमारे अन्नमय, प्राणमय और मनोमय कोशों का प्रतीक है। कपित्थ वृक्ष का गिरना इन कोशों का अतिक्रमण करके मन से परे की अवस्था में पहुँचना है। यह कहा जा सकता है कि वत्सासुर मरेगा तो वास्तविक वत्स का, वत्स ऋषि का जन्म होगा जिसे सिद्धियाँ प्राप्त हैं। गौ का, परमात्मा की शक्ति का आह्वान तो वत्स ही करेगा, उसी के लिए तो गौ दुग्ध देगी. अतः यह आवश्यक है कि साधना में वत्स अवस्था को अधिकतम पुष्ट किया जाए, उसके अंदर ईम् शक्ति को अधिक से अधिक भरा जाए, जो ईम शक्ति सोई पड़ी है, उसे जाग्रत किया जाए। (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.६.१३.१)

अथर्ववेद ८.१३ तथा पुराणों में विराज धेनु का दोहन करते समय प्रह्लाद-पुत्र विरोचन वत्स होता है और द्विमूर्धा दोग्धा। मायामय या सुरासव रूपी दुग्ध का दोहन किया जाता है।

योग में वत्स की स्थिति का चित्रण ब्राह्मणों में (शतपथ १.५.२.२०, काण्व शतपथ २.४.४.९) निम्नलिखित रहस्य और बाह्य यज्ञ द्वारा किया गया है—

यज्ञ में ओश्रावय से विराज गौ का आह्वान करते हैं, अस्तु श्रौषट् से वत्स के बंधन खोलते हैं, यज से स्तनों को वत्स के मुख में देते हैं आदि।

ओश्रावय से देवों ने पुरोवात बनाई, अस्तु श्रौषट से अभ्र उत्पन्न किए और यज से विद्युत उत्पन्न की, ये यजामहे से स्तनयित्नु उत्पन्न किया, वषट्कार से वर्षा की। साधना में अभ्र/बादलों का दिखाई पड़ना वत्स का बंधन ढीला होना है। जब विद्युत उत्पन्न होती है तो वह अभ्रों और पुरोवात का एकीकरण कर देती है।

कंस और विश्वेदेवा

कृष्ण के हाथों कंस की मुक्ति होने के पश्चात् कंस विश्वेदेवों के लोक में गया। इस तथ्य को समझने के लिए निम्नलिखित कथांश उपयोगी होंगे—

(क) देवों पर विजय प्राप्त करने के लिए अंधकासुर के नेतृत्व में असुरों ने देवों से युद्ध किया। अंधक नंदी से लड़ा, कालनेमि विश्वक्सेन आदि विश्वेदेवों से। वामन पु० ६९

(ख) विश्वेदेवा कालेय साम से सम्बन्धित हैं। (जैमिनीय ब्रा० १.३३५, ३.२९४)

(ग) देवों और असुरों की यज्ञ में स्पर्धा हुई। असुरों ने ऐन्द्रआज्य पर कब्जा किया तो देवों ने ऐन्द्राग्न आज्य पर इत्यादि। असुरों ने कालेय पर अधिकार किया। देवों ने उन्हें कालेय द्वारा ही कालेय से हटाया। (जैमिनीय ब्रा० १.१५३)

(घ) सोम ही कालेय राजा है। जिस यज्ञ में कालेय द्वारा स्तुति की जाती है उसमें इन्द्र सोम ग्रहण करने के लिए आता है। (जैमिनीय ब्रा० १.१५५)

(ङ) दस विश्वेदेवों के नाम यह हैं— ऋतु, दक्ष, वसु, सत्य, काल, काम, मुनि, गुरु, विप्र, राम। (लक्ष्मीनारायण संहिता १.२७५)

इनमें एक नाम काल है।

इस प्रकार विश्वेदेवों का सम्बन्ध काल से है और कंस का सम्बन्ध भी कालनेमि के माध्यम से काल से है। अब दूसरे दृष्टिकोण से विचार करते हैं—

(च) समुद्र-मंथन के पश्चात असुरों ने बलि के नेतृत्व में देवों से युद्ध किया। बलि इन्द्र से लड़ा, विश्वेदेवों का युद्ध पौलोमों से हुआ, कालेय वसुओं से लड़े, निवातकवच मरुद्गणों से आदि। (भागवत ८.१०)

पौलोम असुर कौन हैं, इसको समझने के लिए निम्नलिखित कथा है—

(छ) दनु और कश्यप से पुलोमा और कालका, दो कन्याओं का जन्म हुआ। पुलोमा से पौलोम असुर उत्पन्न हुए और कालका से कालकेय व कालेय।

(ज) पुलोमा दानवराज ने अपनी कन्या पुलोमा को रोते देख पुलोमा राक्षस से कहा कि हे राक्षस, इस रोती कन्या को ले जाओ। तब छिद्रान्वेषी पुलोमा राक्षस ने उस कन्या को पकड़ लिया। तब दानवराज पुलोमा ने कन्या को बचाया। दानवराज ने कन्या का विवाह भृगु ऋषि से कर दिया जबकि पुलोमा राक्षस भी उसे चाहता था। एक दिन

भृगु की अनुपस्थिति में पुलोमा राक्षस ने आकर भृगु-पत्नी पौलोमी को पकड़ लिया और अग्नि से बोला कि बताओ पौलोमी किसकी पत्नी है। इसी समय पौलोमी के गर्भ से च्यवन ऋषि बाहर निकल पड़े और उन्होंने पुलोम राक्षस को भस्म कर दिया।

(विष्णुधर्मोत्तर पुराण १.१९९)

इस कथा में पौलोमी से च्यवन का जन्म होता है। च्यवन का अर्थ है रिसना, प्राणों का ऊपर की ओर उत्क्रमण करना। पुलोमा शब्द में पु को पुर या शरीर से सम्बन्धित माना जा सकता है जबकि लोम शब्द को रोमांच से। अतः पुलोमा का आनन्द केवल शरीर तक सीमित है। च्यवन का जन्म होने का अर्थ होगा, शरीर के स्तर से ऊपर भी गति।

(झ) दनु का पुत्र वैश्वानर था। वैश्वानर दानव की पुलोमा और कालका दो कन्याएँ थीं। पुलोमा और कश्यप से हिरण्यपुर में रहने वाले पौलोमों का जन्म हुआ। ब्रह्मा से वरदान प्राप्त होने के कारण वह अवध्य थे। अर्जुन ने इन्द्र से अस्त्र प्राप्त कर उनको समाप्त किया था। (हरिवंश पु० १.३.९३)

(ट) पुलोमा दानव ने अपनी कन्या पुलोमा का विवाह तो भृगु ऋषि से किया और शची, का इन्द्र से। इन्द्र ने अपने श्वसुर पुलोमा का वध कर दिया। हरिवंश १.२०.१३३।

कल्याण साधना अंक पृष्ठ २४५ पर मार्कण्डेय पुराण के आधार पर कालक को जुगुप्सा नामक पांचवाँ पाश और कालकेयों को जाति नामक आठवां पाश कहा गया है।

तंत्रराज तंत्र की भूमिका में आठ पाश काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, और मत्सर, पाप और पुण्य गिनाए गए हैं जिनमें पौलोमी शची का सम्बन्ध मत्सर से है। इसकी पुष्टि ऋग्वेद के सूक्त १०.१५९ से होती है जिसमें शची सब कुछ अपने लिए ही मांग रही है कि मेरा सौभाग्य उदित हो, मेरा पति मेरे वश में हो, मेरे पुत्र शत्रुओं का नाश करें, आदि।

मद शब्द इन्द्रियों अथवा इन्द्रियातीत रस के लिए है। (जैमिनीय ब्राह्मण १.२१५) जबकि मत्सर का अर्थ होगा इन्द्रियों के स्तर का अतिक्रमण करके सोम रस सरण करने लगा है, फैलने लगा है। ऊपर कहा जा चुका है कि विश्वेदेवा कालेय साम या भक्ति से सम्बन्धित हैं। कालेय और पौलोम दोनों गण परस्पर जुड़े हैं। कंस के संदर्भ में, जब तक कंस में भरा सोम रस या भक्ति रस केवल शरीर के स्तर तक ही आनन्द देने वाला रहेगा, तब तक वह आसुरी कंस रहेगा। जब वह भक्ति रस चारों ओर फैलने लगेगा तो वह विश्वेदेवा बन जाएगा। (ऋग्वेद नवम् मंडल में स्थान-स्थान पर सोम के साथ जुड़े शब्द मत्सर का अर्थ मादनशील किया जाता है। यदि उपरोक्त अर्थ किया जाए तो उपयुक्त होगा।

विष्णु के पार्षदों में से एक का नाम विष्वक्सेन है। विष्वक्सेन विश्वेदेवों के एक नेता का नाम भी है। अतः यह संभव है कि वेद के विश्वेदेव पुराणों में विष्णु के पार्षद हों।

इसका दूसरा आभास इस प्रकार मिलता है कि हिरण्यकशिपु, जिसका पुत्र कालनेमि है, विष्णु के द्वारपालों जय-विजय में से एक है। जय-विजय ने सनत्कुमारों को छड़ी लगाकर विष्णु के पास जाने से रोक दिया था। तब सनत्कुमारों ने उन्हें शाप देकर नीचे भेज दिया था।

जैन तीर्थंकर महावीर और सर्प

महावीर एक रात एक ऐसे स्थान पर खड़े रहे जहाँ एक भयंकर सर्प रहता था। वह सर्प सारी रात उनके पैर में काटता रहा, लेकिन महावीर पर उसका प्रभाव नहीं हुआ।

कोई भी विष शरीर में पहुंचने पर शरीर तुरन्त प्रतिरोधी कण (ऐण्टी बाडी) उत्पन्न करता है। लेकिन शरीर में प्रतिरोधी कण उत्पन्न होने की गति या दर सीमित होती है। पूरे विष का प्रतिकार करने में सक्षम प्रतिरोधी कणों की संख्या उत्पन्न होने में समय लगता है। इतनी देर में विष अपना प्रभाव दिखा चुकता है। इस समस्या का उपचार यह है कि घोड़े के शरीर में विष डालकर पहले प्रतिरोधी कण बना लिए जाते हैं और फिर आवश्यकता होने पर उन्हें इंजेक्शन द्वारा शरीर में भेजा जाता है। प्रतिरोधी कणों की जनन दर सीमित होने का कारण यह है कि हमारी चेतना एक इकाई नहीं है। सिर की चेतना अलग, हाथ की अलग, पैर की अलग। महावीर जैसे व्यक्तित्व के लिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि उनकी चेतना एकीकृत है।

चेतना के एकीकरण में सबसे बड़ा बाधक हमारा भोजन है। भोजन हमारे आंतरिक जगत को बाहरी जगत से जोड़ता है। लेकिन चूँकि बिना भोजन जीवित रहना असंभव नहीं तो कठिन तो अवश्य है, अतः यदि कोई चेतना का एकीकरण करना चाहे तो यह आवश्यक है कि भोजन की मात्रा और गुणवत्ता इतनी सीमित हो कि आंतरिक चेतना के प्रवाह में बाधा न आए। शरीर की शक्ति सीमित है। यदि वह अधिक मात्रा में भोजन पचाने में लग गई तो आंतरिक जगत का विकास नहीं हो पाएगा। चेतना के विकास में दूसरा बाधक तथ्य बहिर्मुखी वृत्ति है। जब तक वृत्ति बहिर्मुखी रहेगी, अपने अंदर झांक कर देखने का अभ्यास नहीं होगा, तब तक भोजन पर नियंत्रण भी संभव नहीं है। प्रत्येक कार्य को पूरी तन्मयता से किया जाए, पूरे ज्ञान के साथ किया जाए, इसकी आवश्यकता है। चेतना का विकास करने में जहाँ तक ध्यान की उपयोगिता का प्रश्न है, स्थिर बैठने से शारीरिक शक्ति का व्यय तो बहुत कम होता है, लेकिन ध्यान समस्या का कोई सुचारु हल नहीं है। ध्यान उतना ही उपयोगी कहा जा सकता है जितने से किसी कार्य को करने से पहले उसके बारे में ज्ञान में वृद्धि हो। यही विपश्यना है। विज्ञान भैरव सूत्र सबसे उपयुक्त हैं– जैसे भोजन से पहले जाग्रत होओ, सोने से पहले जाग्रत होओ, चलने से पहले जाग्रत होओ आदि।

जो नियम ब्रह्मचर्य के लिए लागू होते हैं, वह चेतना के विकास के लिए भी लागू होते हैं। अधिक न कहते हुए इतना कहना पर्याप्त होगा कि हनुमान का चरित्र ब्रह्मचर्य का आदर्श है। जिज्ञासु को हनुमान की जीवनचर्या के अंतरंग क्षेत्रों में प्रवेश करना चाहिए।

पुराणों में वैदिक सन्दर्भ

भाग ५

डॉ० फतह सिंह से वार्तालाप के अंश

साम्ब

साम्ब कृष्ण व जाम्बवती का पुत्र था। वह इतना सुंदर था कि प्रजा उसे दूसरा कृष्ण ही समझती थी। एक बार साम्ब रैवत पर्वत पर खेल रहा था। उस समय हर के अवतार दुर्वासा ऋषि कृष्ण से मिलने आए। साम्ब ने उन्हें विरूप देखकर उनका सत्कार नहीं किया। दुर्वासा ने शाप दिया कि उसका अहंकार शीघ्र ही खंडित होगा और वह कुष्ठ रोग से ग्रस्त हो जाएगा। इसके पश्चात् नारद कृष्ण से मिलने आए। खेलते हुए साम्ब ने नारद की भी उपेक्षा कर दी। उसने उन्हें नमस्कार भी नहीं किया। नारद ने उससे कहा कि उसे शीघ्र शाप प्राप्त होगा। साम्ब ने कहा कि नारद में मुनियों का स्वभाव तो लेशमात्र भी नहीं है। ऋषियों को नमस्कार से क्या मतलब? उनके आर्शीवाद देने से तपोहानि होती है। नारद को तो सदा कलह ही प्रिय है, इत्यादि। नारद १६००० रानियों के साथ लीलाग्रह में विहार कर रहे कृष्ण के पास गए और बताया कि उन्होंने स्वर्ग में देवताओं को कहते सुना है कि प्रद्युम्न को देख कर तो कृष्ण की सब स्त्रियाँ लज्ञाशील हो जाती हैं जबकि साम्ब को देखकर अनंग पीड़ित हो जाती हैं। उन्होंने कहा कि इसमें दोष अवश्य ही साम्ब का है। कृष्ण ने साम्ब की परीक्षा की और नारद के कथन में सत्यता पाकर साम्ब को कुष्ठग्रस्त हो जाने का शाप दिया। फिर दुखी साम्ब ने नारद के परामर्श से सूर्य की (विशेष रूप से विष्णु की) उपासना करके कुष्ठ से मुक्ति प्राप्त की।

कृष्ण के लीलासंवरण (महाभारत) से पहले यादवगण साम्ब को स्त्री का वेश धारण कराकर और उसके पेट पर मुसल बांध कर द्वारका के निकट आए कण्व ऋषि के पास ले गए और पूछा कि ऋषि सर्वज्ञ होते हैं, अतः कृपा करके बताएं कि यह बभ्रु की पत्नी पुत्र को जन्म देगी या पुत्री को। कण्व ने कहा कि यह कल मुसल को जन्म देगी और वारुणी के मद से मत्त सारे यादव इस मुसल से मारे जाएंगे। अगले दिन साम्ब ने मुसल को जन्म दिया। राजा उग्रसेन ने यह कांड सुनकर आज्ञा जारी की कि कोई भी यादव वारुणी नहीं पिएगा। उन्होंने मुसल का चूर्ण कराकर उसे समुद्र में फिंकवा दिया। वह चूरा लहरों के साथ तट पर आ लगा और उससे एरका नामक घास उग आई। फिर द्वारका में काल का उपद्रव होता देखकर कृष्ण ने यादवों को प्रभासक्षेत्र जाने का परामर्श दिया। जब वह प्रस्थान कर रहे थे तो उद्धव कृष्ण से अनुमति लेकर तीर्थयात्रा को चले गए। अन्य ब्राह्मणों ने भी उद्धव का अनुगमन किया। तब जो वारुणी ब्राह्मणों के लिए तैयार की गई थी, उसे यादवों ने पी लिया और मदमत्त होकर कुछ यादव कृष्ण को अपशब्द कहने लगे। कृष्ण ने मुष्टि से एरका तृण उखाड़ कर उससे उन पर प्रहार किया।

वह तृण मुसल बन गई। फिर अन्य यादवों ने भी ऐसा ही किया। साम्ब ने प्रद्युम्न पर और प्रद्युम्न ने साम्ब पर प्रहार किया। साम्ब सहित सारे यादव मृत्यु को प्राप्त हुए।

स्कंद पु० ७.१.२३७, ७.१.१०१, ६.२१३, ६.५६, ४.१, ४.८, ७.१.३०५, वराह पु० १७७, लक्ष्मीनारायण सं० १.३५३, भागवत पु० ११.३०, शिव पु० ७.१, ब्रह्मवैवर्त्त ४.६

महाभारत के समय मृत्यु के पश्चात् १७ राजा विश्वेदेवों के लोक में गए जिनमें से साम्ब एक है। (महाभारत स्वर्गारोहण पर्व ५)

दुर्योधन-पुत्री लक्ष्मणा से साम्ब के विवाह की कथा के लिए ब्रह्म पुराण १.९९ द्रष्टव्य है। साम्ब के बारे में अन्य सामग्री गर्ग संहिता ७.२६, ७.३४, ७.२१, ७.२४, १०.४९, १०.३७ में द्रष्टव्य है। प्रद्युम्न का नट और साम्ब का विदूषक वेश धारण करना, फिर प्रद्युम्न का षट्पदी (भ्रमर) बन कर कमल में बैठ कर वज्रनाभ की पुत्री प्रभावती से मिलना और विवाह करना, साम्ब का सुनाभ की पुत्री गुणवती से विवाह होना आदि कथा के लिए हरिवंश पु० २.९४ द्रष्टव्य है।

प्रस्तुत लेखन उपरोक्त कथा के चार शब्दों पर केन्द्रित हैं— साम्ब, कुष्ठ, कण्व और मुसल।

शिव का एक नाम साम्ब सदाशिव है। उन्हें शम्भु भी कहते हैं। साम्ब, शम्भु, शाम्भवी, शम्ब, इन सारे शब्दों का मूल एक ही है। शाम्भवी शब्द को समझने के लिए उपनिषदों से पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती है। वराहोपनिषद ५.५३ के अनुसार साधना दो प्रकार की होती है— शाक्त और शांभव। मूलाधार से आरम्भ करके कंठ तक षट्चक्र स्थान शक्तिस्थान कहा जाता है। मूलाधार में पराशक्ति कुण्डलिनी सोई पड़ी रहती है। कण्ठ से लेकर मूर्धा तक का स्थान शांभव स्थान कहा जाता है। मंडल ब्राह्मण उपनिषद और अद्वय तारकोपनिषद में शांभवी मुद्रा का बहुत सुंदर और पूर्ण वर्णन है जिसका केवल एक अल्प भाग ही यहाँ उद्धृत किया जा रहा है। यह योग दो प्रकार का है— पूर्व और उत्तर। पूर्व में तारक होता है और उत्तर में अमनस्क। तारक दो प्रकार का है— मूर्तितारक और अमूर्ति तारक। इन्द्रियान्त मूर्ति तारक है। भ्रूयुगातीत अमूर्ति तारक है। तालुमूल के ऊर्ध्वभाग में महाज्योति होती है जिसके दर्शन से अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। लक्ष्य पर अंदर-बाहर दृष्टि, निमेष-उन्मेष से रहित अवस्था शाम्भवी मुद्रा होती है। अन्तर्लक्ष्य जल ज्योति स्वरूप होता है, अन्तः-बाह्य इन्द्रियों से अदृश्य है। इसे केवल महर्षि ही जान सकते हैं आदि। पहले अग्नि मंडल, उसके ऊपर सूर्यमंडल, उसके बीच में सुधाचन्द्र मंडल, उसके बीच में अखण्ड ब्रह्मतेजो मंडल है। वह विद्युल्लेखावत्

शुक्राभ स्वर है। वही शांभवी लक्षण है। उसके दर्शन में तीन मूर्तियाँ हैं– अमा, प्रतिपदा, पूर्णिमा। निमीलित दर्शन अमा दृष्टि, अर्धोन्मीलित प्रतिपदा, सर्वोन्मीलित पूर्णिमा आदि।

योगशिखोपनिषद ६.१८ के अनुसार सुषुम्ना शांभवी शक्ति है।

यह वर्णन संकेत करता है कि कृष्ण के पुत्र साम्ब से तात्पर्य शांभवी मुद्रा के वर्णन से है। साम्ब जिस कुष्ठ से ग्रस्त होता है, वह कौन सा कुष्ठ है? अथर्ववेद १९.३९.५ (कुष्ठ सूक्त) में कहा गया है कि कि यह कुष्ठ (कु-दुर्गम स्थान, षष्ठ-स्थित होना, साधारण अर्थ में कूठ नामक औषधि) कहां से आया है? यह देवताओं के अमृत चखने से उत्पन्न हुआ है। यह तीन शाम्बों से आया है। यह तीन शाम्ब एक दूसरी समस्या हैं। वनदुर्गोपनिषद में कहा गया है कि शाम्बरीत्रय विद्या सर्वलोकों को मोहित करने वाली है। अभीष्ट फलदा उस देवी को नमस्कार। जाबाल उपनिषद के अनुसार तथा अन्य उपनिषदों के अनुसार शांभवी व्रत में भस्म से शरीर के ललाट, भुजा आदि स्थानों पर तीन रेखाएँ बनाई जाती हैं जो गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आहवनीय अग्नियों की प्रतीक हैं। फिर शरीर के विभिन्न अंगों में अलग-अलग संख्या में रुद्राक्ष धारण किए जाते हैं। फिर साम्ब सदाशिव की आराधना की जाती है। निघंटु में शम्ब पदानामों के अंतर्गत है, अर्थात् शम्ब के कई पद या स्तर हैं। यह बल नामों के अंतर्गत भी है। शम्ब शब्द के साथ जुड़े यह तीन पद साम्ब की कथा में भी अभिलक्षित होने चाहिएं। यह कहा जा सकता है कि साम्ब की चंचलता, उसका रैवत पर्वत पर खेलना एक स्तर है। दूसरा स्तर उसका कृष्ण के लीलागृह में प्रवेश करना है जहाँ कृष्ण की सारी स्त्रियाँ उसे देखकर अनंग पीड़ित हो जाती हैं और तीसरे स्तर पर वह कृष्ण के शाप से कुष्ठ प्राप्त करता है।

कुष्ठ प्राप्त होने के पश्चात् साम्ब ६ ऋतु रूपी ६ आदित्यों की आराधना करता है। भविष्य पुराण १.४८ में साम्ब की आदित्य उपासना का विस्तार से वर्णन है। साम्ब ने जिस आदित्य को प्रसन्न किया उसे साम्बादित्य कहा जाता है।

कण्व– कण्व ऋषि को समझने के लिए निम्नलिखित कथाएँ उपलब्ध हैं–

(क) मेनका व विश्वामित्र से उत्पन्न कन्या का पालन कण्व ऋषि के आश्रम में होता है। चूँकि कन्या की रक्षा शकुन्तों/पक्षियों ने अपने पंखों से की थी, अतः कन्या का नाम शकुंतला रखा गया। एक दिन राजा दुष्यंत ने पहले शून्य स्थान पार किया, फिर कण्व के आश्रम में आकर शकुंतला से विवाह किया। शकुंतला-दुष्यंत से उत्पन्न पुत्र का नाम भरत है (आदिपर्व ७३)। कण्व भरत के अश्वमेध यज्ञ के आचार्य बनते हैं और भरत इन्हें १००० स्वर्ण पद्म भेंट करता है (द्रोण पर्व ६८)।

(ख) कण्व महाभारत युद्ध से ने दुर्योधन को पाण्डवों से शांति करने के लिए समझाते हैं और इस संदर्भ में कथा सुनाते हैं कि जब इन्द्रसारथि मातलि ने अपनी कन्या

गुणवेशी का विवाह नागकुमार सुमुख के साथ किया तो विष्णु ने नाग को गरुड़ से अभय प्रदान किया। इस पर गरुड़ नाराज हो गया। विष्णु ने उसके ऊपर एक अंगुलि रखी तो गरुड़ उसका भार सहन नहीं कर सका। उसका अहंकार नष्ट हो गया। ऐसे ही कृष्ण के सामने दुर्योधन का अहंकार तुच्छ है (उद्योगपर्व ९७)

(ग) व्याध और शंख के बीच संवाद में शंख ने प्राण की महिमा सुनाई कि देवों में प्रतिस्पर्धा हुई कि कौन श्रेष्ठ है। सभी देवता शरीर से निकले लेकिन शरीर पात नहीं हुआ। जब प्राण शरीर से निकले तो शरीर एक दम गिर गया। व्याध ने कहा कि पुराणों में देवों, ऋषियों आदि की महिमा का वर्णन तो बहुत किया जाता है लेकिन प्राण का नहीं। ऐसा क्यों? शंख ने बताया कि पहले समय में प्राण नारायण की उपासना अश्वमेध द्वारा करने के लिए गंगा तीर पर गया। वहाँ उसने हल चलाकर भूशुद्धि की। वहाँ कण्व समाधिस्थ होकर वल्मीक के अंदर बैठे थे। हल द्वारा खींचे जाने पर वह बाहर निकल पड़े और प्राण को शाप दिया कि अब से तेरी तीन भुवनों में, विशेष रूप से भूलोक में प्रतिष्ठा नहीं होगी। अपितु तेरे जगत्त्रय में अवतार प्रतिष्ठा प्राप्त करेंगे। प्राण/वायु ने कहा कि मुझे विना अपराध शाप मिला है, अत: कण्व गुरुद्रोही हो जाएं। लोक में उनकी निन्दित वृत्ति हो। कण्व शाप से गुरु को जग्ध करके सूर्य के शिष्य बने।

(स्कंद पु० २.७.१९)

एक बार निचले स्तर पर प्राण कण्व को देख लें तो फिर निचले स्तर के प्राणों की प्रतिष्ठा नहीं रहती, प्राण ऊर्ध्वमुखी हो जाते हैं। इस कथा में हल चलाने के संदर्भ में शम्ब शब्द का अर्थ हल चलाना भी है।

(घ) कलि के हजार वर्ष बीतने पर कश्यप पुत्र-कण्व अपनी पत्नी देवकन्या आर्यावती के साथ भूतल पर आए। वह शक्र की आज्ञा से शारदा तट पर आए। उन्होंने चतुर्वेद स्तोत्रों द्वारा सरस्वती को तुष्ट किया। सरस्वती ने आर्य सृष्टि समृद्ध होने का वर दिया। आर्या ने दस पुत्र उपाध्याय, शुक्ल, मिश्र आदि उत्पन्न किए। फिर कण्व सरस्वती की आज्ञा से मिश्रदेश में आए। वहाँ उन्होंने म्लेच्छों को सं[illegible]कृत करके शूद्र बनाया आदि। (भविष्य पुराण ३.४.२१)

निघंटु में कण्व मेधावि नामों के अंतर्गत आता है। महाभारत शान्तिपर्व २०८ में इन्हें मेधातिथि का पुत्र और पूर्व दिशा में रहने वाले ऋषि बताया गया है। ऋग्वेद १०.११५.५ की ऋचा— वह यह अग्नि कण्वतम कण्व सखा है— के भाष्य में कण्व का अर्थ स्तुति योग्य किया गया है। यह कण्व शब्द कनि धातु से बना प्रतीत होता है जिससे कनक, सोना शब्द बना है। कन् धातु दीप्ति, कान्ति, गति के अर्थों में प्रयुक्त होती है। कन्या शब्द भी कन् धातु से बना है। कण धातु शब्द के अर्थ में है। कण और अण धातु साथ-साथ आती हैं। अण धातु से अणु शब्द बना है जिसका तात्पर्य होता है अल्प परिधि का द्रव्य। लोकोक्ति है कि कण का या अणु का प्रतिपादन कणाद ऋषि ने किया।

इस सबसे यह संकेत मिलता है कि योग साधना में छोटे-छोटे कणों के रूप में जब ज्योति प्रकट हो वह कण्व ऋषि है। अथर्ववेद २.२५ में कण्व को गर्भ को खाने वाला, पाप कहा गया है। यह स्थिति (ग) कथा के अंतर्गत प्राणों के ऊर्ध्वमुखी होने पर बन सकती है। तब इस लोक में प्रकट होने वाला कण्व अहंकार युक्त होने के कारण अवांछनीय रह जाएगा।

मुसल- (क) यज्ञ कार्य में उलूखल-मुसल के कुछ प्रतीकात्मक उपयोग किए जाते हैं। उनमें से एक यह है कि उलूखल को कृष्णाजिन पर रखकर उसमें धान कूटते हैं। कूटने से कण, तण्डुल और भूसी प्राप्त होते हैं। उन्हें शूर्प/छाज द्वारा अलग-अलग किया जाता है। यह कार्य देवी अदिति, मनुष्य की अखंडित चेतना शक्ति, देवों के लिए बार्हस्पत्य नाम का ओदन तैयार करने के लिए करती है। इस कार्य में दिति, चेतना की खंडित शक्ति छाज बनती है, अदिति छाज को पकड़ती है। चक्षु मुसल और काम उलूखल बनते हैं, जो कण प्राप्त होते हैं वह अश्व रूप हैं, जो तुण्डुल (पूरे चावल) प्राप्त होते हैं वह गौ रूप (अथर्ववेद ११.३) हैं। कण का निहितार्थ कण्व के संदर्भ में दीप्ति से किया जा चुका है। अश्व पशु में सब पशु समाहित हो जाते हैं। अश्व विश्वेदेवों के लिए है (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.९.२.४)। उलूखल उदुम्बर का बनता है। उदुम्बर सब औषधियों का रस है। यह ओंकार की शक्ति है। उलूखल में सारी शक्ति छिपी पड़ी है। यह परमात्मा की योनि है। इस शक्ति को भूसी से, आवरण से अलग करने के लिए मुसल का आश्रय लेना पड़ता है। हमें मुसल की साधना करनी है। यह अग्नि का स्वरूप है (शतपथ १.१.१.२२, ७.५.१.२५)। कृष्ण की बाल लीला में उलूखन-मुसल साधना गोपियाँ करती हैं। गोप विज्ञानमय कोश के स्तर पर होते हैं।

(ख) अश्वमेध यज्ञ के पहले अश्व को नदी में स्नान कराया जाता है। उस समय के कर्मकाण्ड में एक चार आँख वाले कुत्ते को भी स्नान कराते हैं और जब वह कुत्ता इतने गहरे जल में पहुँच जाता है कि उसके पैर पृथिवी पर न लगें तो यज्ञ का अध्वर्यु यह मंत्र बोलते हुए कि जो यह हमारे अश्व को मारने की इच्छा करता है उस श्वान का जलाधिपति वरुण नाश करें— दासीपुत्र को आज्ञा देता है कि चार आँखों वाले श्वान को मारो। जो मरणशील है वह परे हो। दासीपुत्र श्वान को मुसल से मारता है। मुसल सैध्रक है। सैध्रक का अर्थ सायण भाष्य में सिध्र या महासार वृक्ष, जिसके बीच में काले-लाल रंग का लोहे जैसा सार होता है, किया है। सिध्र सिध् धातु से बना है, सिद्ध करना, साधना करना (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.८.४.१)। यहाँ चार आँख वाला मर्त्य स्तर का श्वान हमारे अन्नमय, प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय कोशों का प्रतीक हो सकता है। चौथा विज्ञानमय कोश सह बल से सम्बन्धित है। यहाँ एकता भी है, अनेकता भी है। एकता होते हुए भी अनेकता है। इसी कोश से अश्व का आरम्भ कह सकते हैं। अश् धातु व्याप्ति के अर्थ में है। यहाँ से चेतना ब्रह्माण्ड में व्याप्त होने लगती है।

निघंटु में मूषः पदनामों के अंतर्गत और मुषीवान् स्तेन नामों के अंतर्गत है। अतः स्तेन का नाश करने वाली मुसल के कई स्तर होने चाहिएं। यह संभव है कि चार आँख वाले श्वान रूपी स्तेन का नाश मुसल के चार स्तरों द्वारा होता हो।

(ग) शब्दकल्पद्रुम में वैशम्पायन-कथित धनुर्वेद से उद्धृत किया गया है कि मुसल अक्षि, शीर्ष, कर, पाद से रहित है। इसके मूल और अन्त का सम्बन्ध पातन और पोथन दो क्रियाओं से है। नारदीय संहिता १३.३१६ के अनुसार मुसल कृष्ण वर्ण की और हेति परिवार की (जो हित भी कर सकती है, अहित भी) है। पाद्मसंहिता २.३१.८९ के अनुसार मुसल गोपन युक्त, श्वसन, ककुभ, अमृत, पीतवर्णाभ, हुम्फटकार, ठठान्तिक है। पाद्म संहिता २.३१.२९४ में मुसल को भुवन में चार प्रकार गति करने वाली, सुमुख (अर्थात् ऊपर से क्षरित सारी शक्ति को पी पाने वाली), मधु से द्वेष करने वाली इत्यादि बताया गया है। सात्वत संहिता १३.१४ में मुसल को कृशोदर, रश्मिज्वाला से आवृत्त कहा गया है। सात्वत संहिता १३.३२ में हल को औषधि, शंख को खं या परम शून्य और मुसल को नागनायक कहा गया है। (जब मुसल की चोट होती है तो ठ ठ शब्द होता है, अतः यह ठठान्तक है।)

(घ) मार्कण्डेय पुराण में राजा विदूरथ की पुत्री मुदावती सुनन्दा नामक मुसल को हाथ से स्पर्श कर देती है। इससे उस मुसल की शक्ति कुछ समय के लिए निष्क्रिय हो जाती है जिससे जम्भ असुर उसका उपयोग नहीं कर पाता। अंत में विश्वकर्मा की बनाई वह मुसल अनन्त भगवान् के पास चली जाती है और फिर बलराम के पास। (पुराणों में वैदिक संदर्भ सूत्र भाग २)। बलराम की माता रोहिणी है। यह शक्ति के आरोहण-अवरोहण का प्रतीक है। हो सकता है कि मुसल का चलना भी शक्ति का आरोहण-अवरोहण ही हो।

(ङ) साम्ब की कथा के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि पहले स्तर पर मुसल की कल्पना यादवों ने साम्ब के पेट पर मुसल बांध कर की है। इस कृत्रिम मुसल ने छिपी हुई, जमी हुई शक्ति में से स्वर्ण कण रूपी कण्व ऋषि को प्रकट कर दिया है। अब कण्व ऋषि के कारण दूसरी लोहे की मुसल प्रकट होगी। यह दूसरा स्तर है। तीसरे स्तर पर क्षत्रिय राजा उग्रसेन इस मुसल का चूर्ण करके समुद्र में फेंक देता है। यह मनुष्य व्यक्तित्व सारा समुद्र कह सकते हैं। चौथे स्तर पर यह मुसल ऐरका तृण के रूप में प्रकट होती है। तृण के बारे में पुराणों में वैदिक संदर्भ सूत्र भाग ४ में तृणावर्त के संदर्भ में लिखा जा चुका है। जब तृण में ऊपर की शक्ति का, सोम का प्रवेश होता है तब वह औषधि बनता है, ऊं की शक्ति को धारण करने वाला बनता है। अतः यह ऐरका तृण औषधि है। हमारे मर्त्य स्तर के प्राणों को इरा प्राण कहा जाता है जिससे ऐरावत शब्द बना है। यह ऐरका तृण इस मर्त्य स्तर का प्रतीक है। पांचवे स्तर पर कृष्ण इसको मुष्टि में लेते हैं, इस तृण के रूप में फैली शक्ति को संग्रथित करते हैं, एकत्रित करते हैं। तब

यह यादवों का नाश करने वाली मुसल बन जाती है। छठे स्तर पर कृष्ण भी मुसल द्वारा मुक्ति पा जाते हैं। जरा व्याध के तीर में मुसल का टुकड़ा लगा था।

इस मुसल युद्ध में साम्ब (कार्तिकेय का अंश) प्रद्युम्न (ऊर्ध्वमुखी काम के अंश) को मारता है। काम को ऊपर (क) में उलूखल कहा जा चुका है। अतः यहाँ भी उलूखल-मुसल का ही रूपांतर है। जहाँ यादव रूपी सारी अनेकता समाप्त हो जाती है वहाँ विश्वेदेवों का आरम्भ होता है। विश्वेदेव कौन? जब हमारी पितर शक्तियों, हमारा पालन करने वाली शक्तियों में दिव्यता आ जाती है तो वे विश्वेदेव बनती हैं। विश्वेदेवों को विष्णु के पार्षद कहा जा सकता है।

(च) एक हाथ की मुठ्ठी का अंगूठा दूसरे हाथ की मुठ्ठी में, दूसरे हाथ का अंगूठा ऊपर की ओर, यह मुसल मुद्रा है (विश्वामित्र संहिता तथा अन्य)। यह संकेत ऊपर के वर्णन से समझना सरल हो जाता है।

अष्टावक्र

बहुत सी कथाएँ ऐसी होती हैं जिनका परिश्रम के अभाव में एक अंश ही सार्थक बन पाता है। उन कथाओं का प्रकाशन बहुत समय तक स्थगित रखा गया है लेकिन अंत में यह विचार कर दिया जा रहा है कि अध्ययनशील पाठकवर्ग उन कथाओं का सर्वांश हल निकालेंगे।

अष्टावक्र के बारे में एक अंश पुराणों में वैदिक संदर्भ सूत्र भाग २ में भी प्रकाशित हो चुका है। दूसरा अंश यहाँ प्रस्तुत है।

(क) अष्टावक्र के पिता कहोड (कहिकः = कहोड-शिरोवस्त्र या टोपी) को जनक के पुरोहित बंदी ने शास्त्रार्थ में हराकर जल में डुबा दिया था। जब अष्टावक्र १२ वर्ष का हुआ तो वह अपने मामा श्वेतकेतु के साथ जनक के यज्ञ में गया। वहाँ उसने जनक से और बंदी से शास्त्रार्थ किया। बंदी ने १ की महिमा बताई तो अष्टावक्र ने २ की। बंदी ने ३ की तो अष्टावक्र ने ४ की। इस तरह चलते-चलते बंदी ने ११ की महिमा बताई तो अष्टावक्र ने १२ की। तब बंदी ने कहा कि त्रयोदशी तिथि उत्तम है। यह पृथिवी १३ द्वीपों से युक्त है। इस प्रकार आधा श्लोक कहकर कर बंदी चुप हो गया। तब अष्टावक्र ने शेष श्लोक इस प्रकार पूरा किया कि केशी ने विष्णु से १३ दिन तक युद्ध किया। अतिच्छन्द में १३ अक्षर होते हैं। तब बंदी हार गया। उसने बताया कि उसने जिन ब्राह्मणों को हरा कर जल में डुबाया है, वह उसके पिता वरुण के १२ वर्ष चलने वाले यज्ञ में गए हैं और अब लौट रहे हैं। अष्टावक्र का अपने पिता कहोड से मिलन हुआ और पिता के परामर्श पर अष्टावक्र ने समंगा नदी में स्नान किया जिससे उनके सारे अंग सीधे हो गए। (वनपर्व १३४)

जीवात्मा अपने लक्ष्य को तभी प्राप्त कर सकता है जब वह ब्रह्म की शक्ति को लेकर आगे बढ़े। ब्रह्मशक्ति दो प्रकार से चलती है— सूक्ष्म से स्थूल की ओर और स्थूल से सूक्ष्म की ओर। ऊपर से नीचे आने वाली शक्ति प्रकाश है, मित्र रूप है। नीचे से ऊपर जाने वाली शक्ति छाया रूप है, वरुण रूप है। वेद में मित्र और वरुण का अलग-अलग तरह से वर्णन आता है। बारह में उतरता है, बारह में चढ़ता है। यह द्वादशी व्रत है। इसे अष्टावक्र और बन्दी दोनों जानते हैं। (यहाँ दो १२ वर्ष के यज्ञ चल रहे हैं— एक जनक का, नीचे वरुण का)। १३ को दोनों आधा-आधा जानते हैं। जब यह दोनों मिल जाते हैं, वह त्रयोदशी व्रत है। इससे परे चतुर्दशी का ज्ञान है। तब न मित्र रहता है, न वरुण। यह आत्मा की द्वैत से ऊपर अद्वैत की अवस्था है। पंद्रहवीं तिथि से सविकल्प समाधि होती है। सोलहवीं अवस्था में निर्विकल्प समाधि होती है। अष्टावक्र की वक्रता तभी दूर होती है जब वह अपने पिता, उच्च स्थिति को मिलता है।

ऋग्वेद १०.१११ से आरम्भ करके कुछ सूक्तों के ऋषि अष्टदंष्ट्र वैरूप, नभ प्रभेदन वैरूप, शतप्रभेदन वैरूप, सध्रीची वैरूप हैं। यह संभव है कि अष्टावक्र की कथा इन सूक्तों के किसी गूढांश को प्रस्तुत करती हो।

(ख) असित-देवल ऋषि ने अपनी पत्नी रत्नमाला की उपेक्षा करके तप आरम्भ किया। उसके सामने रंभा अप्सरा प्रकट हुई लेकिन देवल ने उस में रुचि नहीं ली तो रम्भा ने उसे शाप देकर विकृत बना दिया। देवल ने हरि की भक्ति की तो उन्होंने प्रकट होकर उसकी विकृति को आठ वक्रों में रूपान्तरित कर दिया। अष्टावक्र ने पुनः राधा-कृष्ण की आराधना की और उनके सामने प्राण त्याग कर मुक्ति प्राप्त की। (ब्रह्मवैवर्त ४.२९)

(ग) अष्टावक्र ने वदान्य ऋषि की कन्या सुप्रभा से विवाह करना चाहा। वदान्य ने शर्त रखी कि वह पहले उत्तर दिशा में जाकर वृद्धा के दर्शन करके आए। अष्टावक्र उत्तर में हिमालय पर गए और वृद्धा के दर्शन किए। रात्रि में वृद्धा युवती रूप में पदल गई और अष्टावक्र को आकर्षित करना चाहा। अष्टावक्र निर्विकार रहे। वृद्धा ने कहा कि वह स्वयं उत्तर दिशा है। लौटकर अष्टावक्र ने सुप्रभा से विवाह कर लिया।

यहाँ उत्तर से तात्पर्य उच्चतर स्थिति से है।

अष्टावक्र की शेष कथाओं के लिए विष्णुधर्मोत्तर ३.२२४, ब्रह्म पु० १.१०३, स्कंद पु० ३.१.२३, गर्ग संहिता १०.१७, ४.२३, २.६ देखने चाहिएं।

गोतम

(क) गोतम ऋषि शतशृङ्ग पर्वत पर तपस्या कर रहे थे। तभी १२ वर्ष का दुर्भिक्ष पड़ा। गोतम के आश्रम पर दुर्भिक्ष का प्रभाव नहीं पड़ा। सभी ऋषि गोतम के आश्रम में

आकर रहने लगे। गोतम ने वरुण की आराधना की और वरुण के कहने से एक हस्तप्रमाण गर्त बनाया जिनसे वरुण ने जल से पूरित कर दिया। तब ऋषियों ने गोतम के शिष्यों को उस गर्त से जल भरने से रोक दिया और गणेश की आराधना करके उन्हें प्रसन्न किया और यह वर माँगा कि किसी प्रकार गोतम को उसके आश्रम से निकाल दिया जाए। गणेश ने मायामयी गौ का रूप धारण करके गोतम के आश्रम की सस्य को चरना आरम्भ किया। गोतम ने तृण मुठ्ठी में लेकर हुंकार की जिससे गौ गिर पड़ी और मूर्छित हो गई। तब गौहत्या के प्रायश्चित्त स्वरूप गोतम अपने आश्रम से दूर जाकर रहने लगे और ऋषियों से परामर्श कर शिव की आराधना की। शिव ने उन्हें गोदावरी गंगा प्रदान की जिससे गौ पुन: जीवित हो गई। (शिव पु० ४.२४, देवीभागवत १२.९, वराह पु० ७१, नारद पु० २.७२, ब्रह्म पु० २.५)

इस कथा का एक रूपांतर यह है कि रोधन विप्र ने पर्णशाला में बैठे गौतम के अंतर्हृदय में प्रवेश किया। तभी ऋषियों द्वारा छोड़ी गई मायामयी गौ ने भी पर्णशाला में प्रवेश किया। रोधन ऋषि उस गाय में भी प्रवेश कर गया और उसके प्राणों का रोधन कर दिया जिससे गाय मूर्छित होकर गिर पड़ी। (लक्ष्मी नारायण संहिता १.५५१)

ऋग्वेद १.७४ से आरम्भ करके कुछ सूक्त गोतम राहूगण अर्थात् रहूगण के पुत्र गोतम के हैं। रह अर्थात् रहस्यपूर्ण। ऋग्वेद में गौतम अर्थात् गोतम के वंशज बहुत से सूक्तों के ऋषि हैं, जैसे कक्षीवान गौतम, वामदेव गोतम आदि, लेकिन गोतम के सूक्त एकमात्र यहीं पर हैं। पुराणों में गोतम और गौतम में भेद नहीं किया गया है। ऋग्वेद के सूक्तों में मरुत गण गोतम के लिए जलपूर्ण गर्त को तिरछा कर देते हैं जबकि पुराणों में यह जल वरुण देते हैं। यह दिव्य जल व्यक्तित्व के हिरण्ययकोश से, या आनन्दमय कोश से अवतरित होता है लेकिन नीचे के स्तरों पर आते-आते दूषित हो जाता है। जल का देवता वरुण मनुष्य के निचले स्तर पर, मनोमय कोश के स्तर पर जल प्रदान करता है (मरुद्गण सभी स्तरों पर होते हैं)। अत: तप से प्राप्त इस दिव्य आप: से हमारे व्यक्तित्व के काम, क्रोध, अहंकार आदि ऋषि भी नवजीवन प्राप्त करते हैं और यह ऋषि दिव्य आप: का लाभ गोतम को मिलने से रोक देते हैं। यही मायामयी गौ का भी निर्माण कर देते हैं। प्राणायाम रूपी रोधन ऋषि के कारण मायामयी गौ मूर्छित हो जाती है। गोतम के पुन: तपस्या करने पर गंगा प्रकट होती है। इस कथा का उपयोग ऋग्वेद १.७४ के गोतम के सूक्तों को समझने के लिए किया जा सकता है। कथा की छोटी-छोटी घटनाएँ वेद के सूक्तों के क्रमिक विकास की ओर संकेत करती हैं।

गोतम और अहल्या

अहल्या और इन्द्र की कथा पुराणों में वैदिक संदर्भ सूत्र भाग १ में दी जा चुकी है। कुछ कथाएँ यहा प्रस्तुत हैं—

(क) विभिन्न ऋषियों की अलग-अलग कामनाएँ हैं, जैसे वसिष्ठ की कामना है कि मेरी प्रजा अग्रणी बने, विश्वामित्र की कामना है कि उसकी प्रजा को राज्य मिले। इसी तरह गोतम की कामना है कि उसकी प्रजा श्रद्धावान और ब्रह्मवर्चस्वी बने।

(जैमि० ब्रा० २.२१८)

(ख) ब्रह्मा ने कौतुकवश एक कन्या का निर्माण किया और उसे पालने के लिए गौतम को दे दिया। गौतम ने उसे पालकर निर्विकार भाव से ब्रह्मा के सामने प्रस्तुत कर दिया। उसे पाने के लिए सभी देव लालायित थे। ब्रह्मा ने शर्त रखी कि जो पृथिवी की परिक्रमा सबसे पहले कर लेगा उसे ही अहल्या प्राप्त हो जाएगी। गौतम ने अर्धप्रसूता सुरभि गौ की परिक्रमा करके कन्या को जीत लिया। चूँकि कन्या ने सभी देवों के धैर्य और मति का मंथन कर दिया था, अत: वह अहल्या कहलाई। इंद्र के साथ समागम करने पर गौतम ने उसे त्याग दिया और गोमती के रूप में पुन: प्राप्त किया।

(ब्रह्म पु० २.१५)

इस कथा में अर्धप्रसूता गौ को समझने के लिए पु० वै० सं० सू० भाग ३ देखना चाहिए।

(ग) ब्रह्मा ने सब प्रजाओं के सारभूत सौंदर्य विशिष्ट से एक नारी का निर्माण किया। हल नाम है विरूपता का और हल्य उसका प्रभाव है। जिसमें हल्य नहीं है वह अहल्या है। इन्द्र ने अहल्या को प्राप्त करने की कामना की लेकिन ब्रह्मा ने कन्या गौतम को प्रदान की। इन्द्र द्वारा अहल्या से समागम के पश्चात् गौतम ने इन्द्र को शाप दिया कि अब से जो भी सुरेन्द्र होगा वह ध्रुव नहीं होगा। अहल्या को शाप प्राप्त हुआ कि उसका सौंदर्य भ्रष्ट हो जाए। अब से अकेली अहल्या ही नहीं, अन्य प्रजा भी रूपवती होगी।

(रामायाण ७.३०)

(घ) गौतम द्वारा हिमालय पर तपस्या करते समय वहाँ भारी वृष्टि हुई। अहल्या ने सब देवों को क्रमश: बुला-बुला कर वृष्टि बंद करने को कहा। अंत में इन्द्र की बारी आई। तब इन्द्र अहल्या को देखकर मुग्ध हो गया। फिर वह अहल्या से समागम की कामना रखकर कई बार आया, लेकिन अहल्या अपने पातिव्रत्य व्रत के प्रभाव से दिखाई ही नहीं देती थी। तब चंद्रमा की सलाह से इन्द्र ने गौतम का रूप धारण किया और चंद्रमा ने कुक्कु ट का रूप धारण करके आधी रात के समय गौतम के आश्रम में बांग दी। गौतम प्रात:काल समझ कर उठ गए और स्नान करने चले गए। इंद्र-अहल्या का समागम हुआ। अंत में गौतम ने अहल्या को शाप देकर उपल (सिल, शिला) बना दिया। लेकिन अहल्या गौतम से अलग नहीं हुई। अब गौतम इस शिला पर बैठकर तपस्या करते थे। अंत में शिला का उद्धार राम ने किया। (लक्ष्मीनारायण सं० १.३७५)

(ङ) वध्र्यश्व और मेनका के समागम से दिवोदास और अहल्या का जन्म हुआ।

अहल्या और शरद्वान गौतम से शतानंद का जन्म हुआ जो जनक का पुरोहित बना। शतानंद से सत्यधृति, सत्यधृति से कृप और कृपी/गौतमी का जन्म हुआ। कृप और कृपी का पालन शंतनु ने किया। कृपी द्रोणाचार्य की पत्नी बनी। (मत्स्य पु० ५०, हरिवंश १.३२)

(च) बालक गौतम ने गायत्री का अभ्यास करके ही ब्राह्मणत्व प्राप्त किया। फिर शीतगिरि में गुहा में एक वृद्धा को देखा। वृद्धा ने बताया कि वह राजा ऋतध्वज और अप्सरा के संयोग से उत्पन्न हुई है। उसने गौतम को अपना पति बना लिया। अन्य ऋषियों ने इस बेमेल विवाह का उपहास किया। गौतम ने अगस्त्य ऋषि से परामर्श करके गोतमी नदी के तट पर तपस्या की। गोतमी में स्नान करने से वृद्धा युवती बन गई और वहाँ एक वृद्धा नदी प्रकट हुई। गौतम को विद्या प्राप्त हो गई। (ब्रह्म० पु० २.३७)

(छ) यज्ञ में उत्कर (गर्त, जहाँ सोम का रस निकालने के पश्चात् नीरस लता को फेंका जाता है) में बैठकर यज्ञ का एक ऋत्विक् पुकारता है— सुब्रह्मण्यो३म् (तीन बार)। इन्द्र आओ हरि आओ। इन्द्र मैत्रेयी अहल्या का जार है। उसने गौर बन कर अर्णव/समुद्र को पार किया (अवचस्कन्द)। (तैत्तिरीय आरण्यक १.१२.४, शतपथ ३.३.४.१९, जैमिनीय ब्रा० २.७९, षडविंश ब्रा०)

इस वाक्य समूह की ब्राह्मण ग्रंथों में पर्याप्त रूप से व्याख्या करने का प्रयास किया गया है। इस वाक्य में वाक् ही सुब्रह्मण्या है। स्कंद का एक नाम भी सुब्रह्मण्य है। इस वाक् को ओम के साथ जोड़ना है। विशेष ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि यहाँ अहल्या को मित्र की पुत्री कहा गया है। दूसरी ओर गोतम को श्रद्धा प्राप्त करने की कामना है। श्रद्धा मित्र की पत्नी भी है। (तैत्तिरीय आरण्यक ३.९.२)। अत: अहल्या और श्रद्धा परस्पर सम्बन्धित हैं। श्रद्धा क्या है? तैत्तिरीय अरण्यक ८.४.१ में कहा गया है कि आत्मा का जो पक्ष विज्ञानमय कोश में रहता है, श्रद्धा उसका शिरोभाग है। शांखायन आरण्यक ७.१८ के अनुसार प्रज्ञा पूर्वरूप है, श्रद्धा उत्तर रूप है। श्रद्धा-कामायनी मनु की पत्नी भी है जिसके लिए वसिष्ठ ने यज्ञ करके इला/सुद्युम्न को उत्पन्न किया (देवीभागवत माहात्म्य ०.३)। इस प्रकार गौतम के पास जो अहल्या है वह मित्र की शक्ति है। मित्र की शक्ति व्यक्तित्व के ऊर्ध्वमुखी पक्ष में, मनोमय कोश से ऊपर के कोशों में रहती है। मनोमय और उसके नीचे के कोशों में मित्रा वरुण की शक्ति इला रूप में या प्रज्ञा रूप में रहती है। अहल्या शब्द को अहर्या कहा जा सकता है। यह ऐसी शक्ति है जिसका हरण नहीं किया जा सकता। यदि इन्द्रियों के स्वामी इन्द्र को, हमारे निचले व्यक्तित्व को अहल्या की कामना हो तो वह गौतम का रूप धारण करने पर ही मिल सकती है। लेकिन यह ब्रह्मशक्ति नीचे आने पर शिथिल होकर शिला बन जाती है। शीर्षक (च) के अनुसार आरम्भ में यह ब्रह्म की शक्ति वृद्धा होती है, यह नीचे आते-आते बूढ़ी हो जाती है। यदि इसे युवती बनाना हो तो गोतमी में स्नान करना पड़ेगा।

आचार्य पं० रमेश चतुर्वेदी ने अहल्या की व्याख्या अह-लया, दिन को लुलय करने वाली के रूप में करने का प्रयास किया है।

गौतम के बारे में उपरोक्त लेखन पूर्ण नहीं है। कुछ महत्त्वपूर्ण कथाएँ जैसे गौतम द्वारा पाँच प्रेतों का उद्धार (स्कंद पु० ७.१.२२३) आदि प्रस्तुत नहीं की गई है। गौतम के गौ से सम्बन्ध के लिए अनुशासन पर्व ९३.९० द्रष्टव्य है। इसके अतिरिक्त गौतम से सम्बन्धित कथाओं के लिए रामायण ७.५५ (निमि का यज्ञ), स्कंद पु० ३.१.३२) ध्यानकाष्ठ मुनि-सिंह कथा), स्कंद पु० ३.३.२ (राजा मित्रसह-गोकर्ण कथा), स्कंद पु० २.४.२ (गौतम के तीन शिष्यों की कथा), स्कंद १.३.१.४ (गौतम का अरुणाचल पर गौरी को परामर्श) शान्तिपर्व १२९ (गौतम द्वारा लोकपाल यम से अनृण होने के सम्बंन्ध में प्रश्न), अनुशासन पर्व २५ (अंगिरा से तीर्थों के विषय में प्रश्न), अनुशासन पर्व ९३.४२ (वृषादर्भि राजा से प्रतिग्रह के दोष बताना), अनुशासन पर्व ९३.१२ (अगस्त्य के कमल नालों की चोरी होने पर कसम खाना), अनुशासन पर्व ९४.१९ (अगस्त्य के पुष्करों की चोरी होने पर कसम खाना), कथासरित्सागर ३.३.१३७ (इन्द्र-अहल्या प्रसंग), रामायाण १.४८ (इन्द्र को पितरों के मेष के वृषण जोड़ना), रामायण ०.२ (सौदास का गौतम की अवहेलना से राक्षस बनना), ब्रह्मवैवर्त ४.४७ (इन्द्र-अहल्या कथा), पद्म पु० ५.११४ (गौतम के आश्रम में बाणासुर का प्रवेश), स्कंद पु० ७.३.२ (गौतम-शिष्य उत्तंक द्वारा कुंडल लाने की कथा), स्कंद पु० ५.३.१३६ (अहल्येश्वर शिव की स्थापना), स्कंद पु० ७.१.२१६ (गौतम द्वारा गौतमेश्वर लिंग की स्थापना), स्कंद पु० ७.१.८० (शल्य द्वारा गौतमेश्वर लिंग की उपासना), शतपथ १४.६.७.६) (याज्ञवल्क्य द्वारा गौतम के प्रश्न का उत्तर), भविष्य पु० ३.४.१३ (गौतम से हनुमान माता अंजना का जन्म), वज्रसूचिकोपनिषद (गौतम का शशपृष्ठ से जन्म), छांदोग्य उपनिषद् ५.३ आदि द्रष्टव्य हैं।

यह उल्लेख करना उचित होगा कि गौ तत्त्व को समझे बिना गोतम के बारे में कुछ कहने की यह अनधिकार चेष्टा ही है।

परीक्षित और शिल्प

याज्ञिक कर्मकाण्ड में एक यूप (खूंटा) जमीन में ठोका जाता है जिससे यज्ञ में बलि दिए जाने वाला पशु बांधा जाता है। यह यूप एक पेड़ का, विशेष रूप से उदुम्बर या खदिर का, तक्षण करके बनाया जाता है। कुछ यूप ऐतिहासिक होते हैं जो पत्थर के या धातु के होते हैं। यह यूप मनुष्य शरीर का एक प्रतिबिम्ब है। यूप का अग्र, जिसे चषाल कहते हैं, मनुष्य के सिर का प्रतीक है और ऐतिहासिक यूपों में स्तंभ या यूप के शीर्ष पर कोई आकृति, जैसे मिथुन वृष की, बनी होती है। वास्तुसूत्रोपनिषद तथा अन्य ब्राह्मण ग्रंथों के अनुसार यज्ञ में जो यूप है, प्रतिमा निर्माण में वह रूप है। यूप तेज है।

यूप का तक्षण करके उसे एक विशेष आकृति दी जाती है। पेड़ को काटने से जो अन्य टुकड़े बचते हैं, उनसे छोटे-छोटे यूप बनाए जाते हैं। प्रतिमा निर्माण में जब शिल्पी शिला का या लकड़ी का तक्षण करता है तो शिला से कट कर गिरे टुकड़े हानि न पहुँचाएं, इसके लिए अथर्ववेद के पाठा सूक्त का पाठ किया जाता है और शिल्पी पाठामूल औषधि का कवच गले में पहनता है। प्रथम दृष्टि में ऐसा प्रतीत होता है कि एक स्थिति में साधक का पूरा शरीर ज्योतिर्मय हो जाता है। तब उस ज्योति को एक विशेष आकार देने की, एक विशेष प्रतिमा के निर्माण करने की आवश्यकता होती है। कौन सी प्रतिमा बनाई जाए, इसका निर्णय उसी समय हो सकता है, पहले नहीं। वास्तुसूत्रोपनिषद् के अनुसार शिल्पी पहले शिला पर कुछ क्षैतिज, ऊर्ध्व, तिर्यक रेखाएँ बना लेता है और उन्हीं रेखाओं के अनुदिश प्रतिमा के अंगों का निर्माण करना होता है। साधक की स्थिति में हो सकता है कि पहले यह ज्योतिपुंज गोलाकार हो, फिर उस ज्योतिपुंज से कुछ किरणें विशेष दिशाओं में निकलती हों और उन्हें शिल्प में रेखाएँ नाम दिया गया है। इस विकास की तुलना एक गर्भ के विकास से भी कर सकते हैं जिसके वर्णन से तंत्र शास्त्र भरा पड़ा है, कि पहले गर्भ एक कलल अवस्था में होता है, फिर दूसरे मास में बुदबुद रूप में, फिर चौथे मास में उसके अंग निकलने आरम्भ होते हैं आदि।

यह प्रतीत होता है कि परिक्षित शिला से कटे हुए परितः बिखरे हुए टुकड़े हैं जिन्हें वास्तुसूत्रोपनिषद में बताया गया है कि यह शिल्पी को हानि पहुँचा सकते हैं। (किस प्रकार ?)। पुराणों की परीक्षित की कथा यह संकेत करती है कि परितः बिखरी हुई इस ऊर्जा की सदुपयोग इस शक्ति से पहले व्यास व्यक्तित्व का निर्माण करके और फिर शुक व्यक्तित्व का निर्माण करके करना है। जो शक्ति शुक अवस्था, शांत स्थिति में पहुंचने से रह जाएगी, उसे तक्षक अपने विष से भस्म कर देगा। तक्षक द्वारा भस्म करने से पूर्व जितनी अधिक शक्ति शुक अवस्था में समाहित हो जाएगी, तक्षक के विष से उतना ही कम कष्ट होगा। यह तक्षक या तक्षण किस प्रकार शिल्प के तक्षण से सम्बन्धित है, यह अस्पष्ट है। यह तक्षक खाण्डव वन में मनुष्य के खण्डित व्यक्तित्व में निवास करता है और जब अर्जुन-कृष्ण ने खाण्डव वन जलाया तो तक्षक वहाँ से कुरुक्षेत्र गया हुआ था। उसका पुत्र अश्वसेन भी बच निकला (महाभारत)। वेद में कुछ स्थानों पर पूर्वपितरों के लिए, हमारी पालन करने वाली मूलभूत शक्तियों के लिए परिक्षिताः विशेषण आया है। अन्य स्थान (कुन्ताप सूक्त २०.१२७) में जाया, ऊपर से अवतरित शक्ति, राष्ट्र के राजा परीक्षित से पूछती है कि कितना दधि-मन्थ एकत्र किया है। पुराणों में भी परीक्षित को अपने राज्य की कलि से रक्षा करते दिखाया गया है।

जनमेजय का सर्पसत्र तक्षक को भस्म करने के लिए है। लेकिन जब तक्षक इन्द्र के सिंहासन के नीचे जाकर छिप गया तो बृहस्पति ने जनमेजय से कहा कि अब तक्षक को मारने की आवश्यकता नहीं है, अब यह इन्द्र की शरण में चला गया है। इधर जनमेजय

के यज्ञ में आस्तीक रूपी आस्तिक्य बुद्धि उत्पन्न हो जाती है और यज्ञ अब हिंसा रहित हो जाता है। विशेष ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि जनमेजय का सर्पसत्र तक्षशिला पर सिन्धु या वितस्ता के तट पर होता है।

ऐसा संभव है कि कारु, तक्षा आदि वेद के शब्द जो तक्षण से संबंध रखते हैं, साधना के प्रत्येक स्तर से, अन्नमय कोश से लेकर हिरण्यय कोश तक फैले हों जिसके लिए विशेष अध्ययन की आवश्यकता है।

साधना में शिल्प की क्या आवश्यकता है? तीन शिल्प ब्राह्मण ग्रंथो में बताए गए हैं– नृत्य (तांडव?), गीत (गायत्री) और वाद्य। अर्थात् यह एक आनन्ददायक आंतरिक आर्केष्ट्रा, सामूहिक संगीत है। अतः वांछनीय है। पुराणों में साधना की एक विशेष स्थिति में देवता अपनी-अपनी शक्ति देकर एक देवी का निर्माण करते हैं, फिर उस देवी को देवता अपनी-अपनी शक्ति से विभिन्न आभूषण, आयुध आदि भेंट करते हैं। यह भी शिल्प है। शिल्प विश्वेदेवों का है। परीक्षित के बारे में पु० वै० सं० सूत्र भाग २ में भी लिखा जा चुका है।

उपवास

किसी भी धर्म में उपवास एक अभिन्न अंग होता है। भोजन हमारे आंतरिक जगत को बाहरी जगत से जोड़ता है। लेकिन गलत अभ्यास के कारण हम केवल बाहरी जगत पर ही आश्रित हो गए हैं, आंतरिक जगत को बिल्कुल भूल ही गए हैं। भूख लगी कि भोजन किया। लेकिन यदि कोई चाहता है कि आंतरिक जगत में प्रवेश हो तो भूख उसके लिए उपयुक्त मार्ग है। बौद्ध ध्यान साधना के समय साधक गुरु से पूछते थे कि किस का ध्यान करें। गुरु उत्तर देता था कि ध्यान की विषय वस्तु, आब्जेक्ट, अपने आप पता लग जाएगी। भूख ध्यान की विषय वस्तु है। ध्यान किस बात का? ध्यान इसलिए कि यह भूख क्यों लगी है? कहाँ से लगी है? क्या भूख इसलिए लगी है कि पहले खाए हुए भोजन का साबुनीकरण होने से पहले उसमें अम्लता बन रही है जो पेट को काट सा रही है। प्रत्येक क्रिया या घटना के पीछे एक कारण है और फिर घटना के आगे उसका एक उपाय है। यह दो सिद्धांत सदा याद रखने चाहिएं। सामान्य उपाय तो यह है कि भूख चाहे किसी भी कारण से हो, भोजन द्वारा उसको शान्त कर लिया जाए। लेकिन अनुभव बताता है कि यह उपाय बहुत अच्छा नहीं है। अतः यह उपयुक्त होगा कि एक बार हमें यदि यह निश्चित रूप से पता चल जाए कि हमारी भूख वास्तविक नहीं है, अपितु पहले किए गए भोजन में अम्लता उत्पन्न होने के कारण है, तो हम अपने भोजन में सुधार करें। तो उपवास का उद्देश्य यह नहीं है कि हम उपवास रखेंगे तो हमें ईश्वर की प्राप्ति हो जाएगी, अथवा हमारे पाप कम हो जाएंगे, अपितु उद्देश्य यह है कि उपवास का कष्ट हमें भूख के वास्तविक कारणों को पहचानने को बाध्य कर दे। जहाँ कष्ट होता है वहीं उपाय भी निकलता है।

मानव धर्म में यह माना जाता रहा है कि किसी दूसरे मनुष्य के कष्ट का कारण मैं स्वयं ही हूँ। किसी मनुष्य के जीवन में जो व्यक्ति जितनी निकटता से जुड़ा होता है, वह व्यक्ति उतना ही अधिक दूसरे को प्रभावित करता है, जैसे पिता, माता, पुत्र इनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। ज्योतिष और तंत्र में शरीर के विभिन्न अंगों को रिश्तों के अनुसार विभाजित कर दिया गया है। जैसे हृदय का क्षेत्र माता का स्थान है, घुटनों का क्षेत्र पिता का स्थान है आदि। अत: यदि किसी व्यक्ति की माता को कष्ट है तो पुत्र का माता का स्थान निश्चय ही अशुद्ध है। इस प्रकार धर्म के क्षेत्र में दूसरे व्यक्ति के कष्टों का कारण स्वयं अपने व्यक्तित्व को ही माना जाता है। यदि निकट के किसी सम्बन्धी की मृत्यु होती है तो उससे सम्बन्धित शरीर का केन्द्र दूषित हो जाता होगा और इस पातक को दूर करने के लिए लम्बे समय का उपवास आवश्यक माना जाता रहा होगा।

भूख लगने पर सारा ध्यान, सारी ऊर्जा सांस पर और पेट पर, पेट के अन्दर केन्द्रित होनी चाहिए। यह देखना चाहिए कि सांस की गति के साथ पेट के कौन से अंग, कौन सा भाग, सांस के साथ छन्दोबद्ध गति करते हैं। भूख बढ़ने के साथ-साथ यह छन्दोबद्ध गति पेट में गहरी होती चली जाएगी। यदि अम्लीयता बढ़ेगी तो कष्ट भी बढ़ता जाएगा। आदर्श स्थिति वह होगी जब पेट के साथ-साथ हाथ और पैर भी छन्दोबद्ध गति करने लगें। लेकिन व्यक्तिगत अनुभव के अनुसार ऐसा होना कठिन पड़ता है। हमारा पेट हमसे जितने ध्यान की अपेक्षा रखता है, वह उसे प्राप्त होनी ही चाहिए और आज की कृत्रिम सभ्यता से, जहाँ शरीर पर, विशेष रूप से पेट पर ध्यान करना समय की बर्बादी समझा जाएगा, पेट को मुक्ति मिलनी ही चाहिए।

पेट में अम्लता के कारण भूख लगने पर कौन सा उपाय किया जाए, यह व्यक्तिगत अनुभव पर निर्भर करेगा। हो सकता है उस समय कच्चा दूध, या जल मिश्रित कच्चा दूध या खीरा, शाक आदि हरी सब्जियां या कच्चे चावल उपयुक्त रहें। वैष्णव पद्धति में चरणामृत के स्वरूप से लगता है कि इस पद्धति में जलमिश्रित दूध का प्रचलन उपवास काल में है। तिब्बती लामाओं में सम्भवत: चाय के पानी का प्रचलन है।

भूख पर ध्यान केन्द्रित करने पर, या भूखा रहने पर एक गर्मी नीचे से सिर में पहुँचती है। यह नित्य का क्रम है। यदि नित्य भूख पर ध्यान केन्द्रित न किया जाए तो हो सकता है उपवास के दिन यह गर्मी कुछ उपद्रव जैसे सिर दर्द आदि उत्पन्न कर दे। भूख लगने पर शरीर की नाड़ियाँ रस से रिक्त हो जाती हैं। तब ऊर्जा को शरीर में फैलने का अवसर मिलता है। अन्यथा शरीर की सूक्ष्म ऊर्जा व्यर्थ चली जाती है। उपवास करने पर जो शरीर की काम करने की शक्ति समाप्त हो जाती है, वह कोई असामान्य अवस्था नहीं है। वह शरीर की नाड़ियों के रस हीन होने की अवस्था है जो सबसे अधिक लाभदायक है। यदि ऐसी स्थिति नित्य प्राप्त की जा सके तो बहुत श्रेयस्कर होगा।

बौद्ध साधकों और साधुओं में एक सिद्धान्त बहुत प्रचलित है। वह जिस वस्तु को भी छुएंगे, जो भी खाएंगे, उसको शरीर की तरंगों द्वारा आत्मसात् करने का प्रयत्न करेंगे। भोजन करने के बाद जितनी जल्दी भोजन हमारे सांस की तरंगों का अंग बन जाए उतना ही श्रेयस्कर होगा। अत: भोजन करने के पश्चात् पेट पर सम्पूर्ण ध्यान की आवश्यकता है। गांधी जी की मां सूर्य का दर्शन करने पर ही भोजन करती थीं। यदि कई दिनों तक सूर्य उदित नहीं हुआ तो उनका उपवास होता था। यह बाहर का सूर्य अंदर के सूर्य का केवल प्रतीक है। अंदर का सूर्य उदित हो, तब भोजन करें।

पराशक्ति के जाग्रत होने के पश्चात् भोजन की आवश्यकता नहीं रहती। कहा जाता है कि उस शक्ति का थोड़ा सा ही आरोहण महीनों तक प्रसादयुक्त रखता है।

भूख और भोजन में यह सम्बन्ध होना चाहिए कि २४ घन्टे में एक बार शरीर बाहरी वस्तुओं से पूरी तरह खाली हो जाए। न कोई मल, न मूत्र। उस समय ऊर्जा का आरोहण बहुत अधिक होता है।

व्यवहारिक विषयों के बारे में कुछ कहना बहुत दुविधापूर्ण होता है क्योंकि एक के अनुभव आवश्यक नहीं कि दूसरे के लिए भी उपयुक्त हों।

विपश्यना– विपश्यना के बारे में पु० वै० सं० सू० के पहले भाग में भी लिखा जा चुका है। चूँकि विषय महत्त्वपूर्ण है और केवल संक्षिप्त वर्णन से प्रत्येक व्यक्ति लाभ नहीं उठा सकता, अत: यहाँ कुछ विपश्यनाएँ दी जा रही हैं। जैसा कि पहले भी लिखा जा चुका है, केवल बैठकर अपने मन को शरीर के अंगों पर केन्द्रित करना ही विपश्यना नहीं है, अपितु विपश्यना का एक अल्पांशमात्र है।

(क) **भोजन की विपश्यना–** भोजन की विपश्यना भारत के साधु-संन्यासियों में बहुत प्रचलित है। साधुओं को केवल एक बार ही भोजन-पानी करना होता है। यदि भोजन में नमक-मिर्च हुआ, भोजन अग्नि द्वारा पकाया गया हुआ, तो वह खाने के पश्चात् पेट में जलन उत्पन्न करने लगता है। साधारण व्यक्ति के लिए जो भोजन के पश्चात् प्यास लगती है, वह विपश्यी साधक के लिए पेट में जलन उत्पन्न होना है। उस समय किसी उपाय की आवश्यकता होती है जैसे जलनशांति के लिए त्रिफला-घृत मिश्रण आदि का सेवन करना। जो व्यक्ति केवल कार्य के माध्यम से ध्यानस्थ होना चाहते हैं, उनके लिए भोजन की विपश्यना अनिवार्य है। दूसरी ओर भोजन में द्रव पदार्थों के सेवन करने में द्रव में मुख का रस नहीं मिल पाता, अत: द्रव पदार्थों का अधिक सेवन भी उपयुक्त नहीं है। द्विदल धान्य को यद्यपि आजकल के विज्ञान के अनुसार अधिक प्रोटीन युक्त कहा जाता है, लेकिन अध्यात्म शास्त्र (भागवत महात्म्य आदि) में सात्विक भोजन में दाल त्याज्य है। दही भी त्याज्य है। गेहूं सबसे उत्तम है। जैन परम्परा के अनुसार हरी सब्जियाँ त्याज्य हैं। हरी चीजों में सभवत: भोजन के पश्चात् चेतना का शीघ्र

प्रवेश नहीं हो पाता। आलू इत्यादि कंद का सेवन तो त्याज्य है ही। हो सकता है इन सब तथ्यों को ध्यान में रखकर ही सत्यनारायण आदि की कथा में किंचित भुने आटे सहित फल का विधान किया गया हो।

स्थूल शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति होने के पश्चात् फिर सूक्ष्म शरीर के लिए अपेक्षित भोजन की चिंता करनी पड़ती है।

भागवत, संवत्सर और यज्ञ

भारत में श्रीमद्भागवत के सप्ताह पारायण का अति विशिष्ट महत्त्व माना जाता है। यह मोक्ष प्रदायक माना जाता है। लेकिन एक सामान्य साधक या भक्त यह समझने में असफल रहता है कि भागवत में कथाओं के अतिरिक्त और क्या निहित है। वर्तमान लेख में भागवत को समझने के लिए इसके १२ स्कन्धों को संवत्सर के १२ मास तथा १२ दिन के यज्ञ (द्वादशाह) के १२ दिनों से तुलना करके समझने का प्रयत्न किया गया है।

भारतीय पद्धति में संवत्सर का बहुत महत्त्व है। यह कह सकते हैं कि पूरा का पूरा वैदिक और पौराणिक लेखन संवत्सर पर ही आधारित है। संवत्सर का महत्त्व बताने के लिए कहा जाता है कि गर्भ विकास के लिए एक संवत्सर अर्थात् १२ मासों की आवश्यकता होती है। यह सर्वविदित है कि गर्भ का जन्म दसवें मास में होता है। दिव्य गर्भ की पूर्णता के लिए, दिव्य ज्योति जो साधक के भीतर अवतरित होती है, उसकी पूर्णता के लिए तो १२ मासों की अर्थात् १२ अलग-अलग प्रकार के प्रकाशों की आवश्यकता होती है। और १२ मास पूर्ण होने पर फिर एक नया संवत्सर आरम्भ हो जाता है। फिर उस गर्भ को पकाना होता है। इस क्रम से मुक्ति तो तभी मिल सकती है जब कभी साधक के सामने १३वां मास, अधिक मास प्रकट हो। उसका नाम है पुरुषोत्तम मास, मोक्ष प्राप्ति होने का मास। चूँकि भारतीय कर्मकाण्ड में बाहरी संवत्सर की तिथियों, ऋतुओं आदि को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है, इसलिए ऐसा संभव है कि साधक के भीतर विकास और बाहर के ऋतु, तिथि परिवर्तन आदि साथ-साथ चलते हों। एक दृष्टिकोण जिसके द्वारा भागवत को समझा जा सकता है, यह है कि १२ स्कंध दिव्य गर्भ की पूर्णता के १२ मास हैं जिनमें कृष्ण जन्म १०वें मास (स्कंध) में होता है। इन १० मासों में प्रत्येक मास में गर्भ की क्या अवस्था होती है, यह भी शास्त्रों में वर्णन किया गया है, जैसे पहले मास में गर्भ बुदबुद रूप में, दूसरे में पिण्ड रूप में, तीसरे या चौथे में अंगों का विकास आदि आदि। इन सबको आध्यात्मिक रूप में समझना चाहिए। बुदबुद की स्थिति ऐसे ही है जैसे एक साधक शिल्पी किसी देवता की मूर्ति निर्मित करने के लिए शिला लेता है। फिर शिला को धीरे-धीरे काट-छांट कर उसमें अंगों का निर्माण करता है। फिर मूर्ति में विभिन्न भाव प्रदर्शित करता है (वास्तुसूत्रोपनिषद्)

एक अन्य माध्यम जिसकी सहायता से भागवत को समझा जा सकता है, वह है द्वादशाह, १२ दिन का यज्ञ। ऐसा प्रतीत होता है जैसे द्वादशाह को समझाने के लिए ही भागवत का निर्माण किया गया हो। (और केवल भागवत का ही नहीं, देवीभागवत का भी, जिसे भागवत प्रसंग पर दृष्टि रखते हुए यहाँ छोड़ा जा रहा है)। ऐतरेय ब्राह्मण में इस १२ दिन के यज्ञ के लक्षण दिए हैं। १२ दिनों को तीन-तीन के समूहों में बांटा गया है। प्रथम तीन के जो अलग-अलग लक्षण हैं, उन्हीं की आगे के दिनों में पुनरावृत्ति होती है, साथ ही कुछ नए लक्षण भी जुड़ जाते हैं। जो लक्षण प्रथम दिन का होगा, वही चौथे और सातवें दिन का भी होगा। दूसरे दिन के लक्षण पांचवे और आठवें दिन के भी लक्षण होंगे। इसी प्रकार तीसरे दिन के लक्षणों की पुनरावृत्ति छठे और नवें दिन होगी। इस द्वादशाह में छठा दिन बड़े महत्त्व का है। उस दिन साधक के अंदर एक विशेष आनन्द की वर्षा होती है, एक कंपन होता है। (फिर इससे आगे के दिनों में साधक अतीन्द्रिय स्थिति में जाने लगता है और ऐतरेय ब्राह्मण कहता है कि दसवें दिन साधक पूर्ण रूप से अतीन्द्रिय स्थिति में चला जाता है। उससे आगे के दो दिनों के लक्षण बताने में ऐतरेय ब्राह्मण अपने को असमर्थ पाता है)। यह यज्ञ का छठा दिन भागवत का छठा स्कंध है जिसमें वृत्र के मारने की कथा है। हमारी जीवात्मा को ढँकने वाला हमारा अज्ञान, अहंकार रूपी वृत्र मरा कि हम अतीन्द्रिय स्थिति में जाने लगेंगे। रामायण आदि बहुत से ग्रन्थों में सात काण्ड मिलते हैं। छठे काण्ड तक तो रावण वध की, वृत्र को मारने की कथा है। सातवां काण्ड उत्तर काण्ड कहलाता है, इसमें अन्य सभी दिनों का समावेश कर लिया गया है। यह मनुष्य व्यक्तित्व का उत्तर पक्ष, उच्चतर पक्ष है।

प्रथम दिन- प्रथम दिन के लक्षणों में से कुछ हैं— आना और जाना। युक्त होना, रथ वत् होना, आशुमत् होना। ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णित यह लक्षण प्रथम दिन के यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों के लक्षण हैं। लेकिन यदि वेद मन्त्रों के आधार पर, उन मन्त्रों के लक्षणों के आधार पर प्रथम दिन के यज्ञ के महत्त्व को समझना चाहें तो हम असमर्थ अनुभव करते हैं। यहाँ यदि हम भागवत के प्रथम स्कंध की सहायता लें तो यह सरलता से समझ में आ जाता है। यह युक्तवत् लक्षण नारद का क्रमिक रूप से विभिन्न जन्मों में भक्ति से युक्त होना हो सकता है। इस युक्तवत् लक्षण का विकास चौथे स्कंध में दक्ष यज्ञ में दक्ष द्वारा नये सिर से युक्त होने के रूप में हो सकता है। यह नये सिर वाला दक्ष शिव की भक्ति से युक्त है। फिर सातवें स्कंध में युक्तवत् लक्षण का विकास प्रह्लाद की भक्ति के माध्यम से हो सकता है। यह अपेक्षित है कि कथाओं के माध्यम से हम भक्ति के इस क्रमिक विकास के अंतरंग रहस्यों को जानें। आने और जाने का लक्षण तो तीनों स्कंधों द्वारा समझ में सरलता से आ सकता है, वर्णन की आवश्यकता नहीं। यज्ञ में यह आना-जाना देवों के आह्वान और हमारी शक्ति के ऊपर जाने से सम्वन्धित है। आशुमत् लक्षण (अश्-व्याप्ति) प्रथम स्कंध में व्यास (विस्तीर्ण व्यक्तित्व) के जन्म के रूप में,

चतुर्थ स्कंध में पृथु के जन्म के रूप में और सप्तम में संभवतः त्रिपुर दहन के रूप में हो सकता है। इसी प्रकार रथवत् लक्षण को भी समझा जा सकता है।

प्रथम स्कंध व्यास के जन्म से आरम्भ होता है। द्वादशाह करने वाले प्रत्येक यजमान के लिए अथवा भागवत पारायण करने वाले प्रत्येक भक्त के लिए आरम्भ में ही व्यास बनना संभव नहीं है। इसलिए हो सकता है कि द्वादशाह से पूर्व अन्य यज्ञों को करने की आवश्यकता पड़ती हो।

द्वितीय दिन– दूसरे दिन के यज्ञ के लक्षणों में से कुछ हैं— न आना है, न जाना है, स्थिरवत्। अन्तर्वत्, वृधन्वत्। अन्तर्वत् लक्षण के अन्तर्गत भागवत के दूसरे स्कंध में न्यास का आश्रय लिया गया है। न्यास में मनुष्य के विभिन्न अंगों नाक, कान, हाथ आदि में विभिन्न देवताओं की स्थिति की कल्पना करनी होती है। यह चित्तवृत्तियों को अन्तर्मुखी करने की दिशा में प्रथम प्रयास है। किसी भी ग्रन्थ का, जैसे दुर्गा सप्तशती का अध्ययन करने से पूर्व इस प्रकार का अंगन्यास आवश्यक माना जाता है। यह बौद्ध विपश्यना ध्यान का एक रूप माना जा सकता है। यह धारणा है। इस अन्तर्वत् लक्षण का विकास पांचवे स्कंध में जड़भरत की मृग शावकों में आसक्ति के कारण साधना में बाधा के रूप में आता है। फिर आठवें स्कंध में इस लक्षण का विकास गज-ग्राह के रूप में होता है जो लोभ और मोह के रूप हैं। अंत में गज अन्तर्मुखी होकर विष्णु की स्तुति करता है। साथ ही मन को अंतर्मुखी करने वाले साधक के समक्ष मन्वन्तर प्रकट होते हैं। वृधन्वत् लक्षण के रूप में दूसरे स्कंध में विराट पुरुष की कल्पना की गई है, पाँचवे स्कंध में भुवनकोश का वर्णन किया गया है, और आठवें स्कंध में वामन अवतार का विराट रूप प्रकट होता है।

तृतीय दिन– तृतीय दिन के लक्षणों में से कुछ हैं— अन्तवत् और पुनरावृत्त। भागवत के तृतीय स्कंध में कर्दम का देवहूति से विवाह, जीवात्मा रूप कर्दम, (कीचड़, पंक) में देवों का आगमन होना, यह अन्तवत लक्षण कहा जा सकता है। इसी अन्तवत लक्षण को इस स्कंध की अन्य कथाओं में भी दर्शाया गया है, जैसे विभिन्न प्राणों ने शरीर में प्रवेश किया लेकिन विराट पुरुष गतिशील नहीं हुआ। जब क्षेत्रज्ञ ने प्रवेश किया तो वह उठ खड़ा हुआ। फिर छठे स्कंध में इस अन्तवत लक्षण का विकास वृत्र वध के रूप में होता है। नवम स्कंध में विभिन्न राजर्षियों की कथाएँ हैं। यह हो सकता है कि नवम दिन की स्थिति में राजर्षि बन जाना अन्तवत् हो। पुनरावृत्त लक्षण को इस प्रकार समझाया गया है कि जिस मन्त्र में एक शब्द की पुनरावृत्ति हुई हो, वह मन्त्र है। जैसे अहः च कृष्णम् अहः अर्जुनं च। यहाँ अह की पुनरावृत्ति है। भागवत की कथाओं में यह लक्षण कैसे प्रस्फुटित हुआ है, यह अन्वेषणीय है। हो सकता है यह अद्वैत की स्थिति हो।

शब्दसूची